कक्षा 11

मनोविज्ञान

कक्षा 11

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान

कक्षा – 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : मनोविज्ञान

कक्षा – 11

संयोजक :– प्रो. (डॉ.) विजया लक्ष्मी चौहान
गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राज.कृषि विवि., बीकानेर

लेखकगण :–

1. प्रो. (डॉ.) कल्पनाजैन
गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राज.कृषि विवि., बीकानेर

2. डॉ. दैवेन्द्र सिंह सिसोदिया
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

3. डॉ. एल.एन. बुनकर
गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राज.कृषि विवि., बीकानेर

4. डॉ. मधु जैन
राजकीय महिला महाविद्यालय, अजमेर

5. डॉ. तरूण कुमार शर्मा
राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, सबलपुरा, सीकर

6. डॉ. विश्वा चौधरी
राजकीय महिला महाविद्यालय, अजमेर

7. डॉ. सुमनबाला
राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, सबलपुरा, सीकर

दो शब्द

विद्यार्थी के लिए पाठ्यपुस्तक क्रमबद्ध अध्ययन, पुष्टिकरण, समीक्षा और आगामी अध्ययन का आधार होती है। विषय–वस्तु और शिक्षण–विधि की दृष्टि से विद्यालयीय पाठ्यपुस्तक का स्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। पाठ्य पुस्तकों को कभी जड़ या महिमामण्डित करने वाली नहीं बनने दी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तक आज भी शिक्षण–अधिगम–प्रक्रिया का एक अनिवार्य उपकरण बनी हुई है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों का प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा–9 से 12 के विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान द्वारा अपना पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016–17 से कक्षा–9 व 11 की पाठ्यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर ही तैयार कराई गई हैं। आशा है कि ये पुस्तकें विद्यार्थियों में मौलिक सोच, चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करेंगी।

प्रो. बी.एल. चौधरी
अध्यक्ष
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक मनोविज्ञान ज्ञान की वह शाखा है, जिसके अर्न्तगत मानवीय व्यवहार का वातावरणीय परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है । मानव व्यवहार जीवन को जीने की कला, सीखने का अध्ययन–अध्यापन का एक उपागम है । प्रस्तुत मनोविज्ञान की पुस्तक में विभिन्न अध्यायों के माध्यम से मानव व्यवहार को विश्लेषित करने का सांगोपांग रूप से प्रयास विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल किया गया है ।

मनोविज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र उन आयामों को समझाने का प्रयास है, जिसके द्वारा मनोविज्ञान के उद्धेश्य, इसका इतिहास और भारतीय परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान का विकास तथा अन्य विषयों से सम्बन्ध का आलेखन है ।

मनोविज्ञान की विधियॉ जिनका उपयोग विभिन्न मानवीय व्यवहार का मूल्यांकन हेतु उपयोग में लाई जाने वाली विधियॉ है, जिनके द्वारा प्रदत्त संकलन का मात्रात्मक विश्लेषण, विभिन्न सांख्यिकीय प्रविधियों और रेखीय प्रदर्शन द्वारा समझाया गया है ।

मानवव्यवहार के आधार ईकाई जैविकीय कारको की भूमिका को प्रदर्शित करती है तथा तंत्रिका तंत्र के विभिन्न आयामों को समझाने में उल्लेखित है ।

मानव विकास उस प्रक्रिया और कारकों का विवरण है, जिसके अर्न्तगत विभिन्न सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है

मानव व्यवहार का ज्ञानात्मक पक्ष संवेदना, प्रत्यक्षीकरण एवंअवधान के रूप में विद्यार्थियों को समझााने का प्रयास जो बाहरी उत्तेजनाओं को कैसे प्राणी अपने अंतः में ग्रहण करता है और मस्तिष्क पटल पर स्पंदित और संवेदित होताहै ।

व्यवहार में परिवर्तन और परिमार्जन मूलभूत आवश्यकता है , जिसे हम अधिगम अथवा सीखना कहते हैं । कोई व्यक्ति कैसे सीखता है ? क्यों सीखता है ? और क्या सीखता है ? इस परिकल्पना को विभिन्न सिद्धान्तों एवं आकृतियों के माध्यम से समझाया गया है । हम स्वयं अपने व्यवहार संपादन को समझने का प्रयास नहीं करते लेकिन लक्ष्योन्मुख व्यवहार निरन्तर अग्रेशित होता रहता है ।

जीवन जीने के लिए स्मरण और विस्मरण अत्यन्त आवश्यक है । प्रस्तुत पुस्तक में स्मृति एवं स्मृति प्रकार तथा विस्मरण के स्वरूप और कारण पर भी अध्याय सन्निहित है जो विद्यार्थियों को स्मृति वृद्धि के लिए उद्वेगित करता है । जैसे याद करना आवश्यक है , ठीक उसी तरह से विस्मरण भी आवश्यक है । यह उच्च स्तरीय मानसिक क्रिया है जो स्मृति–कौशलों का अंकन या तो स्थायी रूप में अथवा अस्थायी रूप में विद्यमान होता है ।

ज्ञानात्मकता की उच्च स्तरीय कड़ी चिन्तन एवं भाषा है , जो हमें जीवन में आने वाली समस्याओं , उनके समाधान, तर्कना एवं मानसिक प्रतिमा, निर्णयन आदि को निष्पादित करने की विद्यार्थियों में समझ विकसित करता है । इस हेतु भाषा एवं उसका उपयोग अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में पुस्तक में समन्वित किया है जो प्याजे एवं अन्य विचारधाराओं को उल्लेखित करता है ।

व्यवहार के क्रियात्मक पक्ष / निष्पादन पक्ष के अन्तर्गत अभिप्रेरण का महत्वपूर्ण स्थान है , जो व्यवहार को अग्रेशित, उद्वेगित एवं अनुकूलित करने में मदद देती है । इस हेतु मूल प्रवृतियॉ, लक्ष्य–निर्दिष्ट व्यवहार, पुरस्कार–दण्ड एवं अभिप्रेरणा के प्रकारों का एक विस्तृत आलेखन पुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रस्तुत किया

गया है ।

जीवन में चंचलता, चपलता, चातुर्य कैसे आवाप्त होती है, यह निर्भर करता है संवेगों के कार्य–नियोजन पर । भावात्मक उद्वेगन, सकारात्मक–नकारात्मक , संवेगों के रूप में प्रस्तुत है । जो इस ओर इंगित करता है कि संवेग कैसे व्यवहार को प्रबंधित करते है और '' जीवन ही समायोजन है तथा समायोजन ही जीवन है '' की धारणा को संपादित करता है ।

कुल मिलाकर निष्कर्ष यह है कि मनोविज्ञान व्यवहार को सम्पूर्णता से समझने का उद्गम स्थल है , जो अपने जीवन –दर्शन एवं सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने में एक लम्बी दूरी तय करताहै । यद्यपी इन क्रिया–प्रक्रिया में बहुत कुछ ओर निहित है, जो अगली कक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है । विद्यार्थी पुस्तक को सह्रदय और पूर्णमनोयोग से पढ़ेगा तो जीवन में जीवंतता काअनुभव प्राप्त होगा, जो कि स्व प्रबन्धन में मील का पत्थर साबित होगा ।

मैं उन समस्त लेखकों के प्रति अपना आभार प्रस्तुत करना चाहूंगी , जिन्होने विषय को सारगर्भित रूप से सरल शब्दों के माध्यम से अपने विचारों को विद्यार्थियों तक पहुॅचाने का प्रयास किया है । मैं उन्हें साधुवाद एवं शुभकामनाएॅ, उनके मंगलमय सृजन हेतु प्रस्तुत करती हूॅ और पूर्णविश्वास रखती हूॅ व सदैव विद्यार्थियों को मनोविज्ञान विशय के प्रति आकर्शित और प्रेरित करते रहेंगे । मैं उन समस्त पुस्तक–लेखकों का भी आभार व्यक्त करूंगी जिनका उपयोग इस पुस्तक के लेखन में किया है । माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के प्रति विशेष आभारी है , जिन्होंने पुस्तक सृजन, सम्पादन एवं वित्तीय प्रबन्धन कर हम सबको अपने विषय मनोविज्ञान को उन विद्यार्थियों तक पहुॅचाने का अवसर प्रदान किया जिनकी रूचि मनोविज्ञान में निहित है।

–प्रो. (डॉ.) विजया लक्ष्मी चौहान

विषय सूची

इकाई – 1	मनोविज्ञान का परिचय	1
इकाई – 2	मनोविज्ञान की विधियाँ	8
इकाई – 3	मानव व्यवहार के आधार	26
इकाई – 4	मानव विकास	32
इकाई – 5	संवेदना, प्रत्यक्षीकरण एवं अवधान	47
इकाई – 6	अधिगम	54
इकाई – 7	स्मृति एवं विस्मरण	68
इकाई – 8	चिन्तन एवं भाषा	79
इकाई – 9	अभिप्रेरणा	88
इकाई – 10	संवेग	95

इकाई–1

मनोविज्ञान की प्रकृति और क्षेत्र

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप :

- मनोविज्ञान की परिभाषा एवं इसके लक्ष्य की व्याख्या कर सकेंगे;
- मनोविज्ञान के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत में मनोविज्ञान के विकास का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे; तथा
- मनोविज्ञान एवं अन्य विद्याशाखाएँ के संबंध को जान सकेंगे।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
मनोविज्ञान की परिभाषा एवं लक्ष्य
मनोविज्ञान का इतिहास
पूर्व वैज्ञानिक काल
वैज्ञानिक काल
भारत में मनोविज्ञान का विकास
मनोविज्ञान एवं अन्य विषय
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

मनोविज्ञान में प्राणियों का अध्ययन किया जाता है। प्राणी कैसे प्रत्यक्षण करता है, सीखता है, सोचता है, याद करता है, समझता है तथा साथ–ही–साथ अपने पर्यावरण (environment) के वस्तुओं एवं घटनाओं के साथ किस तरह से अन्तःक्रियाएँ (interactions) करता हे, आदि का अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। इसके अलावा मनोवैज्ञानिक कुछ इन प्रश्नों का भी उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं – व्यक्ति क्यों किसी चीज को आसानी से याद कर लेता है तथा दूसरी चीज को काफी प्रयासों में भी नहीं याद कर पाता है? व्यक्ति में चिन्तन (thinking) का विकास कैसे होता है? भिन्न–भिन्न व्यक्तियों का प्रत्यक्षण भिन्न क्यों होता है? व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है, आदि–आदि। इस उत्सुकता एवं जिज्ञासा के कारण ही हम ये सोचने के लिये भी बाध्य हो जाते हैं कि किस प्रकार लोग एक दूसरे से बुद्धि, अभिक्षमता तथा स्वभाव में भिन्न है : वे कभी प्रसन्न तो कभी दुःखी क्यों होते हैंत्र किस प्रकार वे एक दूसरे के मित्र या शत्रु हो जाते हैं? कुछ लोग किसी कार्य को जल्दी सीख लेते हैं, जबकि दूसरे उसी कार्य को सीखने में अपेक्षाकृत अधिक समय क्यों लगाते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर एक अनुभवहीन व्यक्ति भी दे सकता है, तथा वह व्यक्ति भी जिसे मनोविज्ञान का ज्ञान है। एक अनुभवहीन व्यक्ति सामान्य ज्ञान के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर देता है, जबकि एक मनोवैज्ञानिक इन क्रियाओं के पीछे छिपे कारणों का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करने के बाद इन प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तर देता है।

प्रस्तुत पाठ में हम मनोविज्ञान के स्वरूप एवं क्षेत्र को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

1.1 मनोविज्ञान की परिभाषा और लक्ष्य

मनोविज्ञान (Psychology) दो ग्रीक शब्दों, 'Psyche' तथा 'Logos' के मिलने से बना है। 'Psyche' का अर्थ 'आत्मा' तथा 'Logos' का अर्थ 'विवेचना' करना होता है। अतः इस शाब्दिक अर्थ के अनुसार मनोविज्ञान को आत्मा का अध्ययन करने वाला (study of soul) विषय माना गया है। आरंभिक ग्रीक दार्शनिकों जैसे अरस्तू (Aristotle) तथा प्लेटो (Plato) ने मनोविज्ञान को आत्मा का ही विज्ञान कहा। 17वीं शताब्दी के दार्शनिकों जैसे लिविनिज (Leibinitz), लॉक (Locke) आदि ने 'Psyche' शब्द का अधिक उपयुक्त अर्थ 'मन' (mind) से लगाया। और इस तरह से इन लोगों ने मनोविज्ञान को मन के अध्ययन (study of mind) का विषय माना। परन्तु आत्मा या मन ये दोनों ही कुछ पद ऐसे थे जिनका स्वरूप अप्रेक्षणीय (unobservable) तथा अदर्शनीय था। अतः इन दोनों तरह की परिभाषाओं को वैज्ञानिक अध्ययन के लिए स्वीकार्य नहीं माना गया। इसके बाद लोगों ने मनोविज्ञान को चेतना (consciousness) या चेतन अनुभूति (conscious

experience) के अध्ययन को विज्ञान कहा। विलियम वुण्ट (Wilhelm Wundt) तथा उनके शिष्य टिचेनर (Titchener) इस परिभाषा के प्रमुख समर्थक थे। परन्तु इस परिभाषा को भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए स्वीकार्य नहीं माना गया क्योंकि यह वैज्ञानिक ढंग से प्रेक्षणीय करने एवं समझने में कोई खास मदद नहीं मिलती थी। विलियम वुण्ट को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का जनक (Father of experimental psychology) कहा जाता है क्योंकि इन्होंने लिपजिंग विश्वविद्यालय में 1879 में पहला मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला खोला था।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोविज्ञान को अधिक वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ रूप से परिभाषित करने की कोशिश की गयी। इन लोगों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का अध्ययन (study of behaviour) का विज्ञान माना है। मनोविज्ञान को व्यवहार के अध्ययन के विज्ञान के रूप में परिभाषा जे.बी. वाटसन (J.B. Watson) ने सर्वप्रथम दिया था। व्यवहार को एक ठोस एवं प्रेक्षणीय (observable) पहलू के रूप में परिभाषित किया गया। अतः यह आत्मा, मन तथा चेतना आदि से काफी भिन्न था क्योंकि ये सभी कुछ ऐसे थे जो आत्मनिष्ठ (subjective) थे तथा जिनका प्रेक्षण (observation) भी नहीं किया जा सकता था। इसका विषय–वस्तु व्यवहारात्मक प्रक्रियाएँ (behaviour processes) माना गया जिसे आसानी से प्रक्षेण किया जा सकता है। सीखना, प्रत्यक्षण, हाव–भाव आदि जिनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव है, उसका ही अध्ययन मनोविज्ञान करता है। साथ–ही–साथ मनोविज्ञान उन मानसिक प्रक्रियाओं (mental processes) का भी अध्ययन करता है जिनका सीधे प्रेक्षण तो नहीं किया जाता है परन्तु उसके बारे में आसानी से व्यवहारात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आँकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर मनोविज्ञान की एक उत्तम परिभाषा सैनट्रोक (Santrock, 2000) के अनुसार, ''मनोविज्ञान व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

बेरोन (Baron, 2001) के अनुसार, ''मनोविज्ञान संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार के विज्ञान के रूप में उत्तम ढंग से परिभाषित किया जाता है।''

सिस्सरेल्ली एवं मेअर (Ciccarelli & Meyer, 2006) के अनुसार, ''मनोविज्ञान व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।''

मनोविज्ञान के लक्ष्य (Goals of Psychology)

मनोविज्ञान मानव एवं पशु के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। ऐसे अध्ययन के पीछे उसके कुछ छिपे लक्ष्य (goals) होते हैं। मनोविज्ञान के मुख्य लक्ष्य निम्नांकित तीन हैं

(i) मापन एवं वर्णन (Measurement and description)

(ii) पूर्वानुमान एवं नियंत्रण (Prediction and control)

(iii) व्याख्या(Explanation)

(i) मापन एवं वर्णन– मनोविज्ञान का सबसे प्रथम लक्ष्य प्रणाली के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वर्णन करना तथा फिर उसे मापन करना होता है। प्रमुख मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे – चिंता, सीखना, मनोवृत्ति, क्षमता, बुद्धि आदि का वर्णन करने के लिए पहले उसे मापना आवश्यक होता है। इसे मापने के लिए कई तरह के परीक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिए मनोविज्ञान का एक मुख्य लक्ष्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को मापने के लिए परीक्षण या विशेष प्रविधि का विकास करना है। किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण या प्रविधि में कम–से–कम दो गुणों का होना अनिवार्य है – विश्वसनीयता (reliability) तथा वैधता (validity) विश्वसनीयता से तात्पर्य इस तथ्य से होता है कि बार–बार मापने से व्यक्ति के प्राप्तांक में कोई परिवर्तन नहीं आता है। वैधता से तात्पर्य इस बात से होता है कि परीक्षण वही माप रहा है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया है। मापने के बाद मनोवैज्ञानिक उस व्यवहार का वर्णन करते हैं। जैसे – बुद्धि परीक्षण द्वारा बुद्धि मापने पर यदि किसी व्यक्ति का बुद्धि लब्धि (intelligence quotient) 150 आता है तो मनोवैज्ञानिक यह समझते हैं कि व्यक्ति तीव्र बुद्धि का है और वह विभिन्न परिस्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार कर सकता है।

(ii) पूर्वानुमान एवं नियंत्रण– मनोविज्ञान का दूसरा लक्ष्य व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करने से होता है ताकि उसे ठीक ढंग से नियंत्रित किया जा सके। जहाँ तक पूर्वकथन का सवाल है, इसमें सफलता, मापन (measurement) की सफलता पर निर्भर करता है। सामान्यतः मनोवैज्ञानिक व्यवहार के मापन के आधार पर ही यह पूर्वकथन करते हैं कि व्यक्ति अमुक परिस्थिति में क्या कर सकता है तथा कैसे कर सकता है? जैसे अगर हम किसी छात्र के सामान्य बौद्धिक स्तर का मापन करके उसके बारे में सही–सही जान लें तो हम स्कूल में उसके निष्पादन (performance) के बारे में पूर्वकथन आसानी से कर सकते हैं। जैसे व्यक्ति की अभिरुचि को मापकर मनोवैज्ञानिक यह पूर्वानुमान लगाते हैं कि व्यक्ति को किस तरह के कार्य (job) में लगाना उत्तम होगा ताकि उसे अधिक–से–अधिक सफलता प्राप्त हो सकें। पूर्वकथन तथा नियंत्रण साथ–साथ चलता है और मनोवैज्ञानिक जब भी किसी व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करता है तो उसका उद्देश्य उस

व्यवहार को नियंत्रित भी करना होता है।

(iii) व्याख्या– मनोविज्ञान का अंतिम लक्ष्य मानव व्यवहार की व्याख्या करना होता है। व्यवहार की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिक कुछ सिद्धान्त का निर्माण करते हैं ताकि उनकी व्याख्या वैज्ञानिक ढंग से की जा सके। ऐसे सिद्धान्त ज्ञात स्त्रोतों से तथ्यों को संगठित करते हैं और मनोवैज्ञानिक को उस परिस्थिति में तर्कसंगत अनुमान लगाने में मदद करते हैं जहाँ वे सही उत्तर नहीं जान पाते हैं। मानव व्यवहार की व्याख्या करना मनोविज्ञान का सबसे अव्वल लक्ष्य हैं क्योंकि जब तक मनोवैज्ञानिक यह नहीं बतला पाते हैं कि व्यक्ति अमुक व्यवहार क्यों कर रहा है, अमुक मापन प्रविधि क्यों काम कर रहा है तो वे सही ढंग से न तो उस व्यवहार के बारे में पूर्वकथन ही कर सकते हैं और न ही ठीक ढंग से नियंत्रण ही संभव है।

1.2 मनोविज्ञान का इतिहास
(History of Psychology)

मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों तथा व्यक्त व अव्यक्त दोनों प्रकार के व्यवहारों का एक क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन है। 'मनोविज्ञान' शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों ''साइके'' तथा 'लॉगस' से हुई है। ग्रीक भाषा में 'साइके' शब्द का अर्थ है 'आत्मा' तथा 'लॉगस' का अर्थ है 'शास्त्र' या 'अध्ययन'। इस प्रकार पहले समय में मनोविज्ञान को 'आत्मा के अध्ययन' से सम्बद्ध विषय माना जाता है।

आधुनिक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान, जो पाश्चात्य विकास से एक बड़ी सीमा तक प्रभावित है, का इतिहास बहुत छोटा है। इसका उद्भव मनोवैज्ञानिक सार्थकता के प्रश्नों से संबद्ध प्राचीन दर्शनशास्त्र से हुआ है। मनोविज्ञान के इतिहास को मूलतः दो भागों में बाँटा जा सकता है :

1) पूर्व वैज्ञानिक काल (Prescientific Period)

2) वैज्ञानिक काल (Scientific Period)

1. पूर्व वैज्ञानिक काल

पूर्व वैज्ञानिक काल की शुरुआत ग्रीक दार्शनिकों (Greek Philosophers) जैसे प्लेटो (Plato), अरस्तु (Aristotle), हिपोक्रेट्स (Hippocrates) आदि के अध्ययनों एवं विचारों से प्रारंभ होकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक विशेषकर 1878 तक माना जाता है। इस काल में हिपोक्रेट्स (Hippocrates) ने 400 B.C. में शरीर–गठन प्रकार का सिद्धान्त (Theory of Constitutional Types) दिया था। जिसका प्रभाव आने वाले मनोवैज्ञानिकों पर काफी पड़ा और शेल्डन (Sheldon) ने बाद में चलकर व्यक्तित्व के वर्गीकरण के एक विशेष सिद्धांत जिसे 'सोमैटोटाईप सिद्धांत' (Somatotype theory) कहा गया, का निर्माण हिपोक्रेट्स के ही विचारों से प्रभावित होकर किये।

ग्रीक दार्शनिक जैसे अगस्टाईन (Augustine) तथा थोमस (Thomas) का विचार था कि मन (mind) तथा शरीर (body) दोनों दो चीजें हैं और इन दोनों में किसी प्रकार का संबंध नहीं होता है। परन्तु देकार्ते (Descartes) लिबनिज (Leibnitz) तथा स्पिनोजा (Spinoza) आदि ने बतलाया कि सचमुच में मन और शरीर दोनों ही एक–दूसरे से संबंधित हैं और एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं।

ग्रीक दार्शनिक जैसे देकार्ते (Descartes) का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही कुछ विशेष विचार (ideas) होते हैं। परन्तु अन्य दार्शनिक जैसे लॉक (Locke) का मत था कि व्यक्ति जन्म के समय 'टेबूला रासा' (tabula rasa) होता है अर्थात् उसका मष्तिष्क एक कोरे कागज के समान होता है और बाद में उसमें नये–नये अनुभवों से नये–नये विचार उत्पन्न होते हैं। बाद में इस वाद–विवाद द्वारा एक नये संप्रत्यय का जन्म हुआ जिसे मूलप्रवृत्ति (instinct) की संज्ञा दी गयी है और ऐसा समझा जाने लगा कि प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस मूलप्रवृत्ति के रूप में ही हो सकती है।

रूसो (Rousseau) जैसे दार्शनिकों का कहना था कि मनुष्य जन्म से अच्छे स्वभाव का होता है परन्तु समाज के कटु अनुभव उसके स्वभाव को बुरा बना देता है। दूसरी तरफ, स्पेन्सर (Spencer) जैसे दार्शनिक का मत था कि मनुष्य में जन्म से ही स्वार्थता (selfishness) आक्रमणशीलता (aggressiveness) आदि जैसे गुण मौजूद होते हैं जो समाज द्वारा नियंत्रित कर दिये जाते हैं। फलतः व्यक्ति का स्वभाव असामाजिक से सामाजिक हो जाता है।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में दो प्रमुख क्षेत्रों में जो अध्ययन किया गया उसका आधुनिक मनोविज्ञान पर सबसे गहरा असर पड़ा। पहला क्षेत्र दर्शनशास्त्र का था, जिसमें ब्रिटिश दार्शनिकों जैसे जेम्स मिल (James Mill) और जॉन स्टुअर्ट मिल (J.S. Mill) का योगदान था जिसमें लोग चेतना (consciousness) तथा उसमें उत्पन्न विचारों (ideas) का अध्ययन करते थे तथा दूसरा क्षेत्र भौतिक (physical) तथा जैविक विज्ञान (biological sciences) का था जिसमें ज्ञानेन्द्रियों (sense organs) के कार्य के अध्ययन पर अधिक बल डाला गया। इस क्षेत्र में वेबर (Weber) ए फेकनर (Fechner) आदि का योगदान अधिक महत्वपूर्ण था।

2. वैज्ञानिक काल

मनौविज्ञान का वैज्ञानिक काल (scientific period)

1879 से शुरु हुआ है। इसी वर्ष विलियम वुण्ट (Wilhelm Wunelt) ने जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान का पहला प्रयोगशाला खोला था। वुण्ट सचेतन अनुभव (conscious experience) के अध्ययन में रुचि ले रहे थे और मन के अवयवों अथवा निर्माण की इकाइयों का विश्लेषण करना चाहते थे। वुण्ट के समय में मनोवैज्ञानिक अंतर्निरीक्षण (introspection) द्वारा मन की संरचना का विश्लेषण कर रहे थे इसलिए उन्हें संरचनावादी कहा गया। अंतर्निरीक्षण एक प्रक्रिया थी जिसमें प्रयोज्यों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग में कहा गया था कि वे अपनी मानसिक प्रक्रियाओं अथवा अनुभवों का विस्तार से वर्णन करें।

मनोविज्ञान का विकास विभिन्न 'स्कूल' (school) में कैसे हुआ और उन स्कूल पर बुन्ट के मनोविज्ञान का क्या प्रभाव पड़ा। मनोविज्ञान के ऐसे पाँच प्रमुख स्कूल हैं जिनका वर्णन निम्नांकित है–

1. संरचनावाद (Structuralism)

संरचनावाद जिसे अन्य नामों जैसे अन्तर्निरीक्षणवाद (introspectionism) तथा अस्तित्वाद से भी जाना जाता है। संरचनावाद स्कूल को विल्हेल्म वुण्ट के शिष्य टिचेनर (Titchener) द्वारा अमेरिका के कोर्नेल विश्वविद्यालय (Corucle University) में 1892 में प्रारंभ किया गया। संरचनावाद के अनुसार मनोविज्ञान की विषय–वस्तु चेतन अनुभूति (conscious experience) थी। टिचेनर ने चेतना (consciousness) तथा मन (mind) में अन्तर किया। चेतना से उनका तात्पर्य उन सभी अनुभवों (experiences) से था जो व्यक्ति में एक दिये हुए क्षण में उपस्थित होता है, जबकि मन से तात्पर्य उन सभी अनुभवों से होता है जो व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद होते हैं। टिचेनर के अनुसार चेतना के तीन तत्व (elements) होते हैं – संवेदन (sensation), भाव या अनुराग (feeling or affection) तथा प्रतिमा या प्रतिबिम्ब (images)। टिचेनर ने अन्तर्निरीक्षण को मनोविज्ञान की प्रमुख विधि माना है।

2. प्रकार्यवाद या कार्यवाद (Functionalism)

प्रकार्यवाद की स्थापना अनौपचारिक ढंग से विलियम जेम्स (William James) ने 1890 में अपनी एक पुस्तक लिखकर जिसका शीर्षक 'प्रिंसिपुल्स ऑफ साइकोलॉजी' (Principles of Psychology) कर दी थी। उनका मानना था कि मनोविज्ञान का संबंध इस बात से है कि चेतना क्यों और कैसे कार्य करते हैं (Why and how the consciousness functions?) न कि सिर्फ इस बात से है कि चेतना के कौन–कौन से तत्व हैं?अतः जेम्स के अनुसार मनोविज्ञान का विषय–वस्तु तो चेतना अवश्य थी, परन्तु उन्होंने इसमें चेतना की कार्यात्मक उपयोगिता (functional utility) पर अधिक बल डाला था। प्रकार्यवाद की औपचारिक स्थापना के संस्थापक के रूप में डिवी (Dewey), एंजिल (Angell) तथा कार्र (Carr) को जाना जाता है। प्रकार्यवाद के अनुसार मनोविज्ञान का संबंध मानसिक प्रक्रियाओं (mental processes) या कार्य (functions) के अध्ययन से होता है न कि चेतना के तत्वों (elements) के अध्ययन से होता है।

3. व्यवहारवाद (Behaviourism)

व्यवहारवाद की संस्थापना वाटसन (Watson) द्वारा 1913 में की गई। उनका मानना था कि मनोविज्ञान एक वस्तुनिष्ठ (objective) तथा प्रयोगात्मक (experimental) मनोविज्ञान है। अतः इसका विषय–वस्तु सिर्फ व्यवहार (behaviour) हो सकता है चेतना नहीं क्यों कि सिर्फ व्यवहार का ही अध्ययन वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक ढंग से किया जा सकता है। वाटसन के व्यवहारवाद ने उद्दीपक अनुक्रिया (stimulus-response) को जन्म दिया।

वाटसन ने अन्तर्निरीक्षण को मनोविज्ञान की विधि के रूप में अस्वीकृत किया और उन्होंने मनोविज्ञान की चार विधियाँ बताई, जैसे : प्रेक्षण (observation) अनुबन्धन (conditioning), परीक्षण (testing) ंदक शाब्दिक रिपोर्ट (verbal report)।

4. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology)

गेस्टाल्ट स्कूल की स्थापना मैक्स बरदाईमर (Max Wertheimer) ने 1912 में किया। कोहलर (Kohler) तथा कौफ्का (Koffka) इस स्कूल के सह–संस्थापक (co-founders) थे। 'Gestalt" एक जर्मन शब्द है जिसका हिन्दी में रुपान्तर 'आकृति' (form), आकार (shape) तथा 'समाकृति' (configuration) किया गया है। गेस्टाल्ट स्कूल का मानना था कि मनोविज्ञान मानसिक क्रियाओं के संगठन (organization) का विज्ञान है।

5. मनोविश्लेषण (Psychoanalysis)

मनोविश्लेषण को एक स्कूल के रूप में सिगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने स्थापित किया। फ्रायड के अचेतन (unconscious) का सिद्धान्त काफी महत्वपूर्ण माना गया है और उन्होंने सभी तरह के असामान्य व्यवहारों (abnormal behaviour) का कारण इसी अचेतन में होते दिखलाया। अचेतन के बारे में अध्ययन करने की अनेक विधियाँ बतलाई जिनमें मुक्त साहचर्य विधि (free association method), सम्मोहन (hypnosis) तथा स्वप्न की व्याख्या (dream interpretation) सम्मिलित हैं।

1.3 भारत में मनोविज्ञान का विकास (Development of Psychology in India)

भारतीय दार्शनिक परम्परा इस बात में धनी रही है कि वह

मानसिक प्रक्रियाओं तथा मानव चेतना, स्व, मन–शरीर के संबंध तथा अनेक मानसिक प्रकार्य; जैसे – संज्ञान, प्रत्यक्षण, भ्रम, अवधान तथा तर्कना आदि पर उनकी झलक के संबंध में केन्द्रित रही है। भारत में आधुनिक मनोविज्ञान के विकास को भारतीय परम्परा की गहरी दार्शनिक जड़े भी प्रभावित नहीं कर सकी हैं।

भारतीय मनोविज्ञान का आधुनिक काल कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में 1915 में प्रारंभ हुआ जहाँ प्रायोगिक मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम आरंभ किया गया तथा प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1916 में प्रथम मनोविज्ञान विभाग तथा 1938 में अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान का विभाग प्रारंभ किया। प्रोफेसर एन.एन. सेनगुप्ता, जो वुण्ट की प्रायोगिक परम्परा में अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त थे, और उनसे बहुत प्रभावित थे। 1922 में प्रोफेसर गिरिन्द्र शेखर बोस मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष बने जो फ्रायड के मनोविश्लेषण में प्रशिक्षण प्राप्त थे।

प्रोफेसर बोस ने 'इंडियन साइकोएनालिटिक सोसाइटी' (Indian Psychoanalytic Society) की स्थापना 1922 में की थी। 1924 में 'इंडियन साइकोलॉजिकल एशोसिएशन' (Indian Psychological Association) की स्थापना की गई। 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग में एक अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान (Applied Psychology) की शाखा भी खोली गई। इसके पश्चात् मैसूर विश्वविद्यालय एवं पटना विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के अध्यापन एवं अनुसंधान के प्रारंभिक केन्द्र प्रारम्भ हुए। 1960 के दशक के दौरान भारत में कई विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान का विश्वविद्यालयविभाग (University Department) की स्थापना की गई। विश्वविद्यालय के प्रांगण से हटकर मनोविज्ञान विभिन्न तरह के संस्थानों जैसे प्रबंधन संस्थान, शिक्षा संस्थान, रक्षा सेवा आदि में भी काफी लोकप्रिय हुआ और भारतीय मनोवैज्ञानिक की सक्रियता इसमें काफी अधिक रही है। 1986 में दुर्गानन्द सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'साइकोलॉजी इन ए थर्ड वर्ल्ड कन्ट्री : दि इंडियन एक्सपीरियन्स' में भारत में सामाजिक विज्ञान के रूप में चार चरणों में आधुनिक मनोविज्ञान के इतिहास को खोजा है।

अतः भारत में मनोविज्ञान का अनुप्रयोग अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों में किया जा रहा है।

1.4 मनोविज्ञान एवं अन्य विषय (Psychology and other Disciplines)

कोई भी विद्याशाखा, जो लोगों का अध्ययन करती है, वह निश्चित रूप से मनोविज्ञान के ज्ञान की सार्थकता को मानेगी। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक भी मानव व्यवहार को समझने में अन्य विद्याशाखाओं की सार्थकता को स्वीकारते हैं। अनुसंधानकर्ताओं एवं विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी में विद्वानों में एक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान की सार्थकता के अनुभव किए। मस्तिष्क एवं व्यवहार का अध्ययन करने में मनोविज्ञान अपने ज्ञान को तंत्रिका विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, जीवविज्ञान, आयुर्विज्ञान तथा कम्प्यूटर विज्ञान के साथ बाँटता है। एक सामाजिक–सांस्कृतिक के संदर्भ में मानव व्यवहार को समझने के लिए (उसका अर्थ, संवृद्धि, तथा विकास) मनोविज्ञान अपने ज्ञान को मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, समाजकार्य विज्ञान, राजनीति विज्ञान एवं अर्थशास्त्र के साथ भ्झी मिलकर बाँटता है। यही कारण है कि मनोविज्ञान में अंतर्विषयक उपागम (interdisciplinary approach) का जन्म हुआ है जिसका सहर्ष स्वागत सभी मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। कुछ प्रमुख विद्याशाखाएँ जो मनोविज्ञान से जुड़ी हैं उनकी चर्चा नीचे की जा रही हैं :

दर्शनशास्त्र : कहा जाता है कि मनोविज्ञान की जनक दर्शनशास्त्र है। उन्नीसवीं सदी के अंत तक कुछ चीज़ें जो समसामयिक मनोविज्ञान से संबंधित है, जैसे मन का स्वरुप क्या है अथवा मनुष्य अपनी अभिप्रेरणाओं एवं संवेगों के विषय में कैसे जानता है, वे बातें दार्शनिकों की रुचि की थी। उन्नीसवीं सदी में आगे चलकर वुण्ट एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रश्नों के लिए प्रायोगिक उपागम काउपयोग किया तथा समसामयिक मनोविज्ञान का उदय हुआ। विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान के उदय के बाद भी यह दार्शनशास्त्र से बहुत कुछ लेता है, विशेषकर ज्ञान की विधि तथा मानव स्वभाव के विविध क्षेत्रों से संबंधित बातें।

अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान एवं समाजशास्त्र : सहभागी सामाजिक विज्ञान विद्याशाखाओं के रूप में इन तीनों ने मनोविज्ञान से बहुत कुछ प्राप्त किया है तथा उसको भी समृद्ध किया है। मनोविज्ञान ने उपभोक्ता व्यवहार (consumable behaviour) तथा बचत व्यवहार को समझने की उत्तम पृष्ठभूमि तैयार किया है जिसका उपयोग कर अर्थशास्त्री इन क्षेत्रों में व्यक्ति के आर्थिक व्यवहार के बारे में उत्तम निर्णयन (decision) एवं नियंत्रण पर अधिक सफलता प्राप्त कि है। आर्थिक व्यवहार में सहयोग एवं द्वन्द्व(conflicts) जैसे तत्वों की सराहनीय भूमिका थॉमस शेलिंग (Thomas Schelling) द्वारा किया गया जिसके लिए उन्हें अर्थशास्त्र में 2005 में नोबेल पुरस्कार (Nobel Prize) भी प्रदान किया गया। अर्थशास्त्र की तरह, राजनीति विज्ञान भी मनोविज्ञान से बहुत कुछ ग्रहण करता है, विशेष रूप से शक्ति एवं प्रभुत्व के उपयोग, राजनैतिक द्वन्द्व के स्वरूप एवं उनके समाधान, तथा मतदान आचरण को समझने में। मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र एक दूसरे के साथ मिलकर विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में

व्यक्तियों के व्यवहारों को समझने एवं उनकी व्याख्या को व्यक्त करते हैं।

आयुर्विज्ञान : मनोविज्ञान का संबंध आयुर्विज्ञान से भी है। आजकल बहुत से चिकित्सकों या मेडिकल अस्पताल में चिकित्सक रोगियों के उपचार के पहले या बाद मनोवैज्ञानिक परामर्श की आवश्यकता महसूस करते हैं। चिकित्सक कैंसर रोगियों, एड्स रोगियों तथा बड़े–बड़े शल्यक्रिया करने के पहले तथा बाद में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं मॉडलों का उपयोग करते हैं और इस कार्य के लिए वे स्थायी तौर पर परामर्श मनोवैनिक की नियुक्ति भी करते हैं।

कम्प्यूटर विज्ञान : प्रारंभ से ही कम्प्यूटर मानव स्वभाव का अनुभव करने का प्रयास करता रहा है। कम्प्यूटर की संरचना, उसकी संगठित स्मृति, सूचनाओं के क्रमवार एवं साथ–साथ प्रक्रमण आदि में ये बातें देखी जा सकती हैं। कम्प्यूटर वैज्ञानिक तथा इंजीनियर केवल बुद्धिमान से बुद्धिमान कम्प्यूटर का निर्माण नहीं कर रहे हैं बल्कि ऐसी मशीनों को बना रहे हैं जो संवेद एवं अनुभूति को भी जान सकें। इन दोनों विद्याशाखाओं में हो रहे विकास संज्ञानात्मक विज्ञान के क्षेत्र में सार्थक योगदान कर रहे हैं।

विधि एवं अपराधशास्त्र : एक कुशल अधिवक्ता तथा अपराधशास्त्री को मनोविज्ञान के ज्ञान की जानकारी ऐसे प्रश्नों – कोई गवाह एक दुर्घटना, गली की लड़ाई अथवा हत्या जैसी घटना को कैसे याद रखता है? न्यायालय में गवाही देते समय वह इन तथ्यों का कितनी सत्यता के साथ उल्लेख करता है?झूठ एवं पश्चाताप के क्या विश्वसनीय लक्षण हैं? किसी आपराधिक कार्य के लिए दंड की किस सीमा को उपयुक्तमान जाए? मनोवैज्ञानिक ऐसे प्रश्नों का उत्तर देते हैं। आजकल बहुत से मनोवैज्ञानिक ऐसी बातों पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं जिसके उत्तर देश में भावी विधि व्यवस्था की बड़ी सहायता करेंगे।

संगीत एवं ललित कला : प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक संचार–साधन हमारे जीवन में बहुत ही वृहत्तर स्तर पर प्रवेश कर चुके हैं। वे हमारे चिंतन, अभिवृत्तियों एवं संवेगों को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित कर रहे हैं। यदि वे हमें निकट लाए हैं तो साथ ही साथ सांस्कृतिक असमानताएँ भी कम हुई है। मनोविज्ञान संचार को अच्छा एवं प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक युक्तियों के निर्माण में सहायता करता है। समाचार कहानियों को लिखते समय पत्रकारों को पाठकों की रुचियों को ध्यान रखना चाहिए। चूँकि अधिकांश कहानियाँ मानवीय घटनाओं से संबंधित होती हैं, अतः उनके अभिप्रेरकों एवं संवेगों का ज्ञान आवश्यक होता है।

वास्तुकला तथा अभियांत्रिकी : एक वास्तुकार हमेशा यह कोशिश करता है कि उसकी कोई भी संरचना ऐसी नहीं है जिससे व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक असंतुष्टि हो। वह इस बात की हमेशा कोशिश करता है कि उसकी संरचनाओं से व्यक्ति की अभिरुचि (interest), आदत (habit) तथा जिज्ञासा आदि का सम्पूर्ण तुष्टि हो। जहाँ अभियांत्रिकी (engineering) के क्षेत्र का प्रश्न हे, इस पर भी मनोविज्ञान का काफी प्रभाव पड़ा है। अभियंता किसी भी मशीन के रूप तथा उसके कार्यरूप का निर्धारण करते समय मानवीय जरुरतों, आदतों एवं सुविधाओं का पूरा–पूरा ख्याल रखते हैं। अतः मनोविज्ञान इन दो विद्याशाखाओं के साथ भी पूरी तरह घुली मिली हुई है।

प्रमुख पद

संरचनावाद, अस्तित्ववाद, अर्न्तनिरीक्षण, प्रकार्यवाद, व्यवहारवाद, प्रेक्षण, अनुबन्धन, मनोविश्लेषण

महत्वपूर्ण बिन्दु

- प्रस्तुत अध्याय मनोविज्ञान को व्यवहार को मनोविज्ञान मानते हुए उसकी परिभाषा, प्रकृति एवं लक्ष्यों को निरूपित करता है
- वस्तुतः प्राणी के व्यवहार का अध्ययन लक्ष्योन्मुख होता है , इस हेतु मनोविज्ञान के लक्ष्य मापन एवं पूर्वानुमान एवं नियंत्रण तथा व्याख्या के रूप में प्रस्तुत किया है
- मनोविज्ञान का इतिहास, मनोविज्ञान के उद्‌गम जो कि पूर्व वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक काल के रूप में व्याखित है ।
- मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय, संरचनावाद, गेस्टाल्टवाद एवं प्रकार्यवाद, मनोविश्लेषणवाद व्यवहारवाद को समझाया गया है ।
- भारत में मनोविज्ञान की उत्पति एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है तथा मनोविज्ञान का विभिन्न विशयों से सम्बन्ध एक रीढ़ की हड्डी के रूप में प्रस्तुत किया है क्योंकि जहॉ इन्सान है, वहीं विकास सम्भव है इसीलिए इसे जैव सामाजिक विज्ञान (Bio-social science) कहा गया है ।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. 'मनोविज्ञान' शब्द की उत्पत्ति .... शब्दों से हुई है।

    (क) ग्रीक (ख) लेटिन

    (ग) हिन्दी (घ) अंग्रेजी

2. विलियम वुण्ट ने प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना ... .में की थी।

    (क) कॉरनेल विश्वविद्यालय, 1992

    (ख) हार्वर्ड विश्वविद्यालय, 1892

(ग) लिपज़िंग विश्वविद्यालय, 1879

(घ) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं

3. 'Psyche' साइके का अर्थ .... है।

(क) विवेचना (ख) अध्ययन

(ग) आत्मा (घ) चेतना

4. इनमें से कौन सा मनोविज्ञान के लक्ष्य में नहीं आता?

(क) मापन एवं वर्णन (ख) व्याख्या

(ग) पूर्वानुमान एवं नियंत्रण (घ) परीक्षण

5. ''मनुष्य जन्म से ही स्वार्थता, आक्रमणशीलता जैसे गुण मौजूद होते हैं, जो समाज द्वारा नियंत्रित कर दिए जाते हैं'', यह कथन किसका है।

(क) रुसो (ख) स्पेन्सर

(ग) फ्रॉयड (घ) जे.बी. वाटसन

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान के इतिहास को कितने भागों में बाँटा जा सकता है?
2. संरचनावाद स्कूल की शुरुआत किसने की है?
3. प्रिंसिपुल्स ऑफ साइकोलॉजी (Principles of Psychology) पुस्तक किसने लिखी है?
4. सिगमंड फ्रायड ने किस स्कूल को स्थापित किया?
5. 'इंडियन साइकोलॉजिकल एशोसिएशन' की स्थापना कब की गई है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिए।
2. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान क्या है?
3. व्यवहारवाद क्या है?
4. मनोविज्ञान के कौन–कौन से लक्ष्य हैं?
5. मनोविश्लेषण में फ्रायद ने कौन सी विधियाँ बताई हैं?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिए। इस परिभाषा के विभिन्न कारकों की उदाहरणों की सहायता से व्याख्या कीजिए।
2. मनोविज्ञान के लक्ष्य को विस्तार से समझायें।
3. मनोविज्ञान के इतिहास में पूर्व वैज्ञानिक काल को समझाएं।
4. संरचनावाद और प्रकार्यवाद के अंतर को समझाएं।
5. भारत में मनोविज्ञान के विकास का विस्तृत वर्णन करें।6. मनोविज्ञान का संबंध दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र के साथ समझाएं।
7. वे कौन सी समस्याएँ होती हैं जिनके लिए मनोवैज्ञानिकों का अन्य विद्याशाखा के लोगों के साथ सहयोग लाभप्रद हो सकता है? किन्हीं दो समस्याओं की व्याख्या कीजिए।
8. मनोविज्ञान के प्रमुख पाँच स्कूल का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर– (1)क (2) ग (3) ग (4) घ (5) क

इकाई–2

मनोविज्ञान की विधियाँ

इस अध्याय को पढ़ने के बाद

- मनोविज्ञान की विधियों को जान सकेंगे
- प्रदत्तों का मात्रात्मक विश्लेषण कर सकेंगे ।
- आवृति वितरण को समझते हुए मूल्यांकन की केन्द्रीय प्रवृति एवं आलेलिखय प्रदर्शन को समझ सकेंगे ।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
मनोविज्ञान की विधियॉ
निरीक्षण विधि
केस अध्ययन विधि
साक्षात्कार विधि
सर्वे विधि
प्रयोगात्मक विधि
अन्तदर्शन विधि
केन्द्रीय प्रकृति के माप
आवृति वितरण
रेखीय प्रदर्शन
बहुभुज
स्तंम्भाकृति
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

निरीक्षण विधि

निरीक्षण विधि को प्रेक्षण विधि भी कहा जाता हैएसन् 1913 में जब वाटसन (Watson) ने व्यवहारवाद (Behaviourisn) की स्थापना की तो मनोवैज्ञान को नये ढंग से परिभाषित करते हुए यह कहा गया कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। जिसका अध्ययन विधि अन्तर्निरीक्षण (Introspection) न होकर प्रेक्षण विधि (Observation Method) है ।

इस विधि में अध्ययनकर्ता प्राणी या जीव के व्यवहारों को निष्पक्ष भाव से प्रेक्षण या अवलोकन करता है। अपने अवलोकन के आधार पर वह एक विशेष रिपोर्ट तैयार करताहै। जिसका विश्लेषण कर वह उस प्राणी के व्यवहार के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है। प्रेक्षण (Observation) को वस्तुनिष्ठ (Objective) बनाने के लिए प्राणी के व्यवहारों का अवलोकन वह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में करता है। कई प्रेक्षक मिलकर प्राणी या जीव के व्यवहारों का अवलोकन एक साथ करते हैं। शायद ही यह कारण है कि इस विधि के वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि (Objective Observation Method) कहा गया है। अध्ययनकर्ता प्राणी के दोनों तरह के व्यवहारों यानी बाहय व्यवहार (External Behaviour) जैसे– दौड़ना, रोना, खेलना तथा आंतरिकव्यवहार (Internal Behaviour) जैसे रक्त चाप में परिवर्तन, हृदय की धड़कन में परिवर्तन आदि का प्रेक्षण करते हैं ।

वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण (Objective Observation) की मुख्य दो विशेषताऐं होती है–

(i) प्रेक्षण हमेशा उद्देश्यपूर्ण तथा सूक्ष्म होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षक किसी उद्देश्य से प्राणी के व्यवहार के किसी खास पहलू पर अधिक ध्यान देते हुए प्रेक्षण करता है।

(ii) प्रेक्षण का उद्देश्य अध्ययन नियमों से सम्बन्धित चरों (Variables) के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगाना होता है ।

प्रेक्षण निम्नांकित तीन प्रकार के होते हैं–

(क) सहभागी प्रेक्षण (Participant Observation)
(ख) असहभागी प्रेक्षण (Non- Participant Observation)
(ग) स्वाभाविक प्रेक्षण (Naturalistic Observation)

इन तीनों तरह के प्रेक्षण का वर्णन निम्नांकित है–

(क) सहभागी प्रेक्षण (Participant Observation)

प्रेक्षण की इस विधि में प्रेक्षक उन व्यवहारों में हाथ बंटाते हुए प्रेक्षण करते हैं जिनका उन्हें अध्ययन करना होता है। यहाँ प्रेक्षक भी लोगें के काम को उनके साथ

मिलकर करते हैं तथा उनके व्यवहार का प्रेक्षण भी करते जाते हें । जैसे–उद्योग या किसी व्यवसाय में कार्यरत श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए संम्भव है कि मनोवैज्ञानिक इस उद्योग का व्यवसाय में एक श्रमिक के रूप में अपने आप को नामांकन कराकर उनके साथ मिलकर कार्य करें तथा साथ ही साथ उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता जाए ।

(ख) असहभागी प्रेक्षण (Non- Participant Observation)

प्रेक्षण की इस विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के उन व्यवहारों में हाथ नहीं बंटाता है जिनका उसे प्रेक्षण करना होता है। प्रेक्षक दूर से ही व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करता है। नैदानिक, शैक्षिक, सामाजिक तथा औद्योगिक परिस्थितियों में व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण प्रायः इस विधि से किया जाता है ।

(ग) स्वाभाविक प्रेक्षण (Naturalistict Observation)

जब प्रेक्षण का उपयोग एक स्वाभाविक परिस्थिति में विशेषकर पशुओं के व्यवहारों का अध्यन करने के लिए किया जाता है, तो इस तरह के प्रेक्षण को स्वाभाविक प्रेक्षण कहा जाता है। जैसे मनोवैज्ञानिक प्रायः बन्दरों, मधुमक्खियों, चीटियों आदि के व्यवहारों को उनके स्वाभाविक रूप से रहने के स्थानों में जाकर अध्ययन करते हैं ।

गुण (Merits) .प्रेक्षण विधि के प्रमुख गुण निम्नांकित है–

(I) इस विधि ने मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र काफी विस्तृत कर दिया है। अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रयोग सिर्फ वयस्क व्यक्तियों पर ही किया जाता था, फलस्वरूप मनोविज्ञान में सिर्फ इन्हीं व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता था। परन्तु प्रेक्षण विधि का प्रयोग छोटे–छोटे बच्चों, वयस्कों, पागलों, अपाहिजों, पशुओं आदि पर भी आसानी से किया जाता है। फलस्वरूप, इस विधि के उपयोग से मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है।

(ii) इस विधि द्वारा एक समय में एक से अधिक प्राणियों के व्यवहारों का निरीक्षण आसानी से किया जा सकता है। जैसे– यदि अध्यनकर्ता भीड़ व्यवहार (Crow Behaviour) का अध्ययन करना चाहता है तो इस विधि का प्रयोग काफी आसानी से करके उस तरह के व्यवहार के बारे में जाना जा सकता है ।

(iii) इस विधि से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical analysis) काफी आसानी से किय जा सकता है क्योंकि प्रायः आँकड़े आवृत्ति (Frequency) प्रतिशत (Percentage) आदि में प्राप्त होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रेक्षण विधि से प्राप्त निष्कर्ष की वैधता (Validity) काफी बढ़ जाती है ।

दोष (Demerits) – इस विधि के प्रमुख दोष निम्नांकित है–

(I) प्रायः यह देखा गया है कि प्रेक्षण करते समय प्रेक्षक की अपनी पूर्वाग्रह (Prejudice), (Needs) मनोवृत्तियाँ आदि का भी प्रभाव उनके प्रेक्षण पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षक द्वारा किया गया प्रेक्षण वस्तुनिष्ठ (Objective) न होकर आत्मनिष्ठ हो जाता है । ऐसी परिस्थिति में प्राप्त निष्कर्ष बहुत अधिक विश्वसनीय तथा वैध (Valid) नहीं रह जाता ।

(ii) इस विधि में प्राणी के व्यवहारों का प्रेक्षण कर उसके मानसिक क्रियाओं के बारे में जानने की कोशिश की जाती है। परन्तु इस दिशा में हमेशा सफलता प्रेक्षक को नहीं भी मिल सकती है। एक उदाहरण लीजिए– गाँव में अभी भी जब दो स्त्रियाँ एक–दूसरे से काफी दिन पर मिलती है तो अपनी खुशी प्रकट करने के लिए रोती है। कोई भी प्रेक्षक रोने के इस व्यवहार का प्रेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि दोनों स्त्रियों किसी कारण से दुःखी है जबकि सच्चाई यह है कि ये दोनों स्त्रियाँ रोकर अपनी खुशी प्रकट कर रही है। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण के आधार पर हमेशा मानसिक प्रक्रियाओं का सही–सही अर्थ निकालना संभव नहीं है ।

(iii) इस विधि में प्रेक्षण स्वाभाविक एवं अनियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्राप्त निष्कर्ष की व्याख्या उचित कारण–परिणाम सम्बन्ध (Cause effect relationship) के रूप में नहीं की जा सकती है। जैसे– उपर में जोन्स तथा जोन्स (Jones & Jones 1928) के ही अध्ययन को लें । कॉलेज के छात्र साँप देखकर डर जाते हैं। यहाँ डरने की सांवेगिक प्रक्रिया किस कारण हुई, कहना मुश्किल है। साँप के आकार से भी छात्रों में डर हो सकता है, उसके भयावह रूप से भी डर हो सकता है, उसके चाल से भी डर उत्पन्न हो सकता हे, आदि–आदि । अतः परिणाम (डर) कि कारण से उत्पन्न हुआ, नहीं कहा जा सकता। दूसरे शब्दों में, इस विधि में कारण–परिणाम सम्बन्ध का पता लगाना कठिन है क्योंकि प्रेक्षण अनियंत्रित एवं स्वाभाविक परिस्थिति में की गयी थी ।

केस विधि (Case Study Method)

मनोविज्ञान की यह एक प्रमुख विधि है। इस विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिको a(Clinical Psychologist) द्वारा व्यक्तियों के रोगात्मक लक्षणा (Pathological Symptom) को पहचान करने तथा उसके कारणों को पता लगाने में काफी किया जाता है। यही कारण है कि इसे नैदानिक विधि (Clinical Method) भी कहा जाताहै ।

इस विधि में मनोवैज्ञानिक किसी एक व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए उसके जीवन के सभी तरह की घटनाओं जो उसके साथ माँ के गर्भ में आने के समय से ही घटित हो रहा है, का एक विस्तृत इतिहास तैयार करते हैं। इसलिए इस विधि को केस विवरण विधि (Case History Method) भी कहा जाता है।

इसके प्रमुख गुण निम्नलिखित है–

(I) नैदानिक विधि में मनोवैज्ञानिक चूंकि प्रत्येक अध्ययन किये जाने वाले व्यक्ति का एक अलग विस्तृत इतिहास तैयार करके उसके कारणों का पता लगाते हैं, इसलिए इस विधि द्वारा व्यक्ति का गहन अध्ययन संभव है।

(ii) नैदानिक विधि द्वारा व्यक्ति के मानसिक तथा शारीरिक विकासक्रम को अच्छी तरह जांच जा सकता है। इस विधि द्वारा अध्ययन करने में मनोवैज्ञानिकों को इस बात की भरपूर जानकारी हो जाती है कि व्यक्ति किन–किन वैयक्तिक अवस्थाओं से गुजर चुका है तथा उनका प्रभाव उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास पर क्या पड़ता है।

(iii) नैदानिक विधि में चूकि अध्ययन का आधार केस विवरण होता है, अतः इस विधि में

व्यक्ति की समस्याओं एवं उनके संभावित कारणों पर सीधा प्रकाश डालने का सुनहरा अवसर मनोवैज्ञानिक को प्राप्त होता है।

इन गुणों के बावजूद इस विधि के कुछ प्रमुख अवगुण (Demerits) है जिनमें निम्नांकित प्रमुख है–

(I) नैदानिक विधि में व्यवहार के अध्ययन का आधार व्यक्ति का गत इतिहास (Past History) होता है जो व्यक्ति के माता–पिता, दोस्त तथा पड़ौसियों द्वारा दिये गये सूचनाओं पर आधारित होता है। अक्सर देखा गया है कि माता–पिता, दोस्त या पड़ौसी व्यक्ति की सच्ची घटनाओं या तथ्यों को विशेषकर वैसी घटनाओं या तथ्यों को जिनका सम्बन्ध नैतिकता से होता है, छिपा लेते हैं। फलस्वरूप उनके द्वारा प्रदत्त सूचनाऐं दोषपूर्ण हो जाती है और उनके आधार पर जो अध्यन किया जाता है, वह अधिक निर्भर योग्य नहीं रह जाताहै ।

(ii) व्यक्ति के बारे में पूर्ण विवरण तैयार करने में जो सूचनाऐं प्राप्त होती है या जो इतिहास तैयार होता है उसकी सत्यता की जांच करने का कोई उपयुक्त तरीका नैदानिक विधि में नहीं है ।

(iii) नैदानिक विधि द्वारा व्यक्ति की समस्या का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक काफी प्रशिक्षित हो तथा उन्हें साक्षात्कार तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उत्तम ज्ञान हो। प्रायः देखा गया है कि इस विधि का उपयोग एक साधारण मनोवैज्ञानिक भी करने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में इनसे प्राप्त तथ्यों पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता है।

(iv) केस अध्ययन विधि में यदि अध्ययन में सम्मिलित किया गया व्यक्ति का स्वरूप कुछ अनोखा है, तो इससे प्राप्त निष्कर्ष का सामान्यीकरण ;ळमदमतंसप्रंजपवदद्ध में नहीं किया जा सकता है ।

साक्षात्कार

साक्षात्कार की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Meaning & Characteristics of Interview)

सामान्यतः दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी विशेष उद्देश्य से आमने–सामने की गयी बातचीत को साक्षात्कार कहा जाता है।

'डेजिन '(Denzen, 1970) ने "साक्षात्कार को कुछ इसी अर्थ में परिभाषित करते हुए कहा है, "साक्षात्कार आमने–सामने किया गया एक संवादोचित आदान–प्रदान है जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कुछ सूचनाएँ प्राप्त करता है"

क्रलिंगर (Kerlinger, 1985) ने के अनुसार, "साक्षात्कार एक सामने–आमने की अन्तरवैयक्तिक भूमिका परिस्थिति होती है जिसमें एक व्यक्ति (अर्थात् भेंटकर्त्ता) साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति (अर्थात् प्रत्यर्थी) से शोध समस्या से सम्बन्धित उत्तरों की प्राप्ति के लिए प्रश्न करता है।"

साक्षात्कार के प्रकार (Types of Interview)

कार्य (Function) या उद्देश्य (Purpose) के आधार पर साक्षात्कार (Interview) के मुख्य निम्नांकित प्रकार बताए गए हैं–

1. नैदानिक साक्षात्कार (Clinical Interview)
2. शोध साक्षात्कार (Research Interview)
3. निदानात्मक साक्षात्कार (Diagnostic Interview)
4. चयनसाक्षात्कार (Selection Interview)
5. केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)

रचना (Structure) के अनुसार साक्षात्कार (Interview) के निम्नांकित दो प्रकार बतलाये गए हैं ।

1. संरचित साक्षात्कार (Structured Interview) तथा
2. असंरचित साक्षात्कार (Unstructured Interview)

इन सभी प्रकार के साक्षात्कारों की व्याख्या निम्नांकित है–

1. नैदानिक साक्षात्कार (Clinical Interview)

इसे गहन साक्षत्कार (Depth Interview) भी कहा जाता है तथा यह ऐसा साक्षात्कार है जिसमें भेंटकर्ता साक्षात्कार किये जाने वाले व्यक्ति की अन्तर्निहित भावनाओं, प्रेरणाओं एवं संघर्षों के अध्ययन में अधिक रूचि दिखलाता है। इस तरह के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता (Interviewer) को यह पहले से पता होता है कि साक्षात्कार किये जाने वाले व्यक्ति से उसे किन–किन भावनाओं, संघर्षों, घटनाओं आदि के बारे में बातचीत करना है।

2. शोध साक्षात्कार (Research Interview)

इस तरह के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता किसी शोध समस्या (Research Problem) के बारे में विस्तृत रूप से विषयी (Interviee) से पूछताछ कर आंकड़ों का संग्रहण करता है। इस तरह के साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य शोध समस्याओं के प्रस्तावित समाधान के बारे में विस्तृत ब्यौरा तैयार करना होता है। यंग (Young, 1949) के अनुसार " इस तरह का शोध अधिकतर उन वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है जो किसी विशेष समस्या का उत्तर तुरन्त पा लेना चाहते हैं"।

3. निदानात्मक साक्षात्कार (Diagnostic Interview)

इस तरह के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता किसी खास रोग के सम्भावित कारणों का पता लगाने के लिए विषयी (Interviwee) से पूछताछ करता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग अधिकतर नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) में होता है जहाँ मनोवैज्ञानिक और रोगी आमने–सामने होता है तथा मनोवैज्ञानिक रोग के छिपे कारणों का पता लगाने के लिए रोगी से कुछ बातचीत करता है। समाज शास्त्रियों द्वारा इस ढंग के साक्षात्कार का उपयोग समाज की समस्याओं का निदान (Diagnose) करने में भी किया जाता है।

4. चयन साक्षात्कार (Selection Interview)

चयन साक्षात्कार से तात्पर्य वैसे साक्षात्कार से होता है जिसमें साक्षात्कारकर्ता (Interviewer) किसी पद (Position) या नौकरी (Job) के लिए चयन (Selection) करने के खयाल से विषयी (Interviwee) से कुछ पूछताछ करता है। यहाँ प्रायः साक्षात्कारकर्ता कुछ ऐसे

प्रश्न पूछता है, जिसके आधार पर विषयी की मनोवृत्ति (Attitude) , अभिक्षमता (Aptitude), क्षमता (Abilities), आचरण (Conduct) आदि के बारे में आसानी से जाना जा सकता है। इस तरह के साक्षात्कार मूल उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि विषयी कहाँ तक अपनी मनोवृत्ति, अभिक्षमता, क्षमता, अनुभव (Experience) एवं योग्यता के आधार पर अमूक पद या नौकरी के लिए योग्य होगा । इस ढंग का साक्षात्कार औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) तथा प्रशासन मनोविज्ञान (Psychology of administration) में काफी लोकप्रिय है ।

5. केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)

केन्द्रित साक्षात्कार का सम्बन्ध वैसे लोगों या विषयी (Interviewee) से होता है जिसने स्वयं किसी घटना विशेष जैसे दुर्घटना (Accident) या कोई विशेष चलचित्र (Movie) देखा हो या कोई विशेष कमेन्ट्री सुनी हो । इस प्रकार के साक्षात्कार में सिर्फ उन्हीं परिस्थितियों पर प्रकाश डाला जाता है जिनका विश्लेषण साक्षात्कार के पहले किया जा चुक होता है। इस तरह के साक्षात्कार में एक साक्षात्कार निर्देशिका (Interview Guide) भी होती है जिसमें दो बातों का उल्लेख होता है। पहला, उन सभी क्षेत्रों (Regions) का उल्लेख इसमें होता है। जिनमें जांच प्रश्नों (Prode) को पूछा जाना है तथा दूसरा उनमें उन सभी प्राक्कल्पनाओं (Hypothesis) का भी उल्लेख होता है जिनके लिए साक्षात्कार के आधार पर आंकड़े (data) एकत्रित करना है। केन्द्रित साक्षात्कार पूर्णरूपेण अध्ययन किये जाने वाली विशेष परिस्थिति से सम्बन्धित विषयी (Interviwee) की आत्मगत अनुभूतियों, मनोवृत्तियों तथा सांवेगिक अनुक्रियाओं पर केन्द्रित होते हैं। इन समस्त पूर्व योजनाओं के होने पर भी केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview) में साक्षात्कार की परिस्थिति के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता विषयी या प्रत्यर्थी को होता है ।

6. संरचित साक्षात्कार (Structured Interview)

संरचित साक्षात्कार वैसे साक्षात्कार को कहा जाता है, जिसमें साक्षात्कारकर्ता विषयी (Interviwee) से पूर्व निर्धारित प्रश्नों को एक निश्चित क्रम (Fixed Sequence) में पूछता है तथा विषयी द्वारा दिए गए उत्तरों को एक मानकीकृत फार्म (Standardized Form) में रिकार्ड किया जाता है। इस तरह इस साक्षात्कार में साक्षात्कार देने वाले सभी व्यक्तियों से एक तरह का प्रश्न एक निश्चित क्रम में पूछकर साक्षात्कारकर्ता एक खास निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। इस तरह के साक्षात्कार को अन्य नामों जैसे औपचारिक साक्षात्कार (formal Interview) या प्रतिकृत साक्षात्कार (Patterned Interview) से भी जाना जाता है।

7. असंरचित साक्षात्कार Unstructured Interview)

असंरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता (Interviewer) साक्षात्कार देने वाले व्यक्तियों से जो प्रश्न पूछता है, पूर्व निर्धारित (Predetermined) नहीं होता है। और न तो वह किसी एक खास क्रम (Definite Order) में ही इन प्रश्नों को पूछता है। सच्चाई यह है की इस तरह के साक्षात्कार में साक्षात्कतारकर्ता किस ढंग का प्रश्न किस क्रम (Sequence) में किस विषयी (Interviwee) से पूछेगा यह पहले से निर्धारित नहीं होता है। इन सभी चीजों को साक्षात्कारकर्ता की मरजी पर छोड़ दिया जाता है और वह जैसा उचित समझता है, वैसा ही करता है। इस तरह के साक्षात्कार में कोई समय सीमा भी नहीं होती है। किसी विषयी से कई मिनटों तक प्रश्नों को पूछा जाता है तो किसी–किसी विषयी से चन्द मिनटों में ही निबट लिया जाता है। असंरचित साक्षात्कार (Unstructured Interview) पर टिप्पणी करते हुए ,ब्लैक तथा चैम्पियन (Black & Champion, 1976) ने इस प्रकार कहा है, "साक्षात्कार संदर्भ किसी तरह के नियंत्रण (Regulation) तथा चेतन प्रतिबन्ध (Conscious Constraint) से जहाँ तक सम्भव हो मुक्त या स्वतंत्र रहता है।"

साक्षात्कार के लाभ तथा परिसीमाएँ

साक्षात्कार का चाहे जिस प्रकार का प्रयोग क्यों न किया जाए, उसके कुछ सामान्य लाभ एवं सीमाएँ हैं जिन पर प्रकाश डालना अपेक्षित हैं। साक्षात्कार के सहारे किए गए अनेकों अध्ययनों की समीक्षा (Review) करने के बाद गोडर्न (Gorden, 1969) ने साक्षात्कार के कुछ लाभों (Advantages) का उल्लेख किया है जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं।

(I) साक्षात्कार द्वारा साक्षात्कारकर्त्ता कम समय में ही वांछित सूचनाओं (Desired Informations) को प्राप्त कर लेता है ।

(ii) साक्षात्कार ही एक ऐसी विधि है जिसमें शोधकर्त्ता (Researcher) पूर्णतः यह आश्वस्त हो जाता है कि प्रत्यर्थी (Respondent) ने पूछे गए प्रश्नों की व्याख्या ठीक ढंग से की है ।

(iii) साक्षात्कार में प्रश्नों में लचीलापन (Flexibility) होने के कारण शोधकर्त्ता के लिए कम समय में गहन जानकारी प्राप्त करना संभव हो पाता है। इसके अन्तर्गत प्रश्न नहीं समझ में आने पर उसे पुनः दोहरा कर या कुछ परिवर्तन कर पूछा जा सकता है। इस ढंग की सुविधा प्रश्नावली विधि में नहीं है ।

(iv) साक्षात्कार में शोधकर्त्ता के लिए परिस्थिति पर नियंत्रण रखना काफी आसान होता है जिसका परिणाम यह होता है कि साक्षात्कारकर्ता उचित प्रश्नों को पूछ पाता है तथा साथ–ही–साथ प्रत्यर्थी उसका उत्तर सही–सही ढंग से दे पाता है।

(v) साक्षात्कार में शोधकर्त्ता या साक्षात्कारकर्त्ता को प्रत्यर्थी (Respondent) से कुछ अशाब्दिक संकेत (Non- Verbal cues) भी प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में शोधकर्त्ता प्रत्यर्थी की भाव–भंगिमा काभी अवलोकन कर पाता है जो अन्यथा सम्भव नहीं है। इससे मिलने वाले संकेतों के आधार पर प्रत्यर्थी द्वारा दिये गये उत्तरों क अर्थ सही–सहीं ढंग से समझा जाता है ।

इन लाभों के बावजूद साक्षात्कार की कुछ सीमाएँ (Limitations) है जो निम्नांकित है–

(i) साक्षात्कार में विषयी या प्रत्यर्थी (respondent) द्वारा दी गई शाब्दिक अनुक्रिया (Verbal Responses) की वैधता (Validity) को शोध वैज्ञानिकों (Research Scientist) ने चुनौती देते हुए कहा कि चूँकि साक्षात्कार में कही गई बातों के अनुसार शायद ही कभी प्रत्यर्थी अपने वास्तविक जिन्दगी में अन्तःक्रिया (Interaction) करता है, अतः साक्षात्कार में की गई शाब्दिक अनुक्रिया (Verbal Responses) के आधार पर लिया गया कोई भी निर्णय को अधिक वैध (Valid) नहीं माना जा सकता है ।

(ii) कई कारणों से ऐसा देखा गया है कि साक्षात्कारकर्ता का ध्यान साक्षात्कार के दौरान प्रत्यर्थी द्वारा की गई अनुक्रियाओं (Responses) पर ठीक ढंग से नहीं जा पाता है। जैसे, यदि साक्षात्कारकर्त्ता काफी थका हुआ है तो वह प्रत्यर्थी की अनुक्रियाओं (Responses) को ठीक ढंग से रिकार्ड नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कार के आधार पर कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचना संभव नहीं है ।

(iii) साक्षात्कार में आत्मनिष्ठता (Subjectivity) का गुण पाया जाता है। अक्सर देखा गया है कि साक्षात्कारकर्ता पहले से ही कुछ पूर्वनिश्चित धारणाओं, आशाओं पूर्वकल्पनाओं को लेकर साक्षात्कार में पहुँचता है। इस आत्मनिष्ठता (Subjectivity) के कारण साक्षात्कारकर्ता प्रत्यर्थी के बारे में कुछ आवश्यक अनुमान, व्याख्या आदि करना प्रारम्भ कर देत है, जिससे साक्षात्कार से प्राप्त आँकड़ों की विश्वसनीयता (Reliability) समाप्त हो जाती है ।

(iv) सिकोऊरेल (Cicourel, 1964) ने यह बतलाया कि साक्षात्कार संदर्भ (Interview Context) एक साक्षात्कार से दूसरे साक्षात्कार तक समान ;ब्वदेजंदजद्ध नहीं रहता है । कभी–कभी देखा गया है कि साक्षात्कार एक नम्र माहौल में सम्पन्न हो जाता है तो कभी–कभी साक्षात्कार एक सख्त माहौल में पूरा किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि साक्षात्कार संदर्भ (Interview Context) में भिन्नता आ जाती है और साक्षात्कारकर्ता द्वारा अलग–अलग किए गए साक्षात्कार के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर संभव नहीं हो पाता है ।

(v) ब्लैक तथा चैम्पियन (Black & Champion, 1976) ने यह बतलाया कि साक्षात्कार में अन्तरसाक्षात्कारकर्ता भिन्नता (Inter-viewer variability) पाया जाता है जिसके कारण भी इसके परिणाम दोषपूर्ण हो जाते है। जब कई साक्षातकारकर्ता एक साथ मिलकर किसी समस्या का अध्ययन करते हैं तो अक्सर देखा गया है कि वे एक ही प्रत्यर्थी का प्रत्यर्थी के समूह से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अलग–अलग अर्थ निकालते हैं। कुछ लोग प्रत्यर्थी का धनात्मक रेटिंग (Positive Rating) करते हैं तो कुछ लोग प्रत्यर्थी का ऋणात्मक रेटिंग करते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि साक्षात्कार के आधार पर किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुंचना असंभव सा हो जाता है ।

सर्वे विधि (Survey Method)

मनोविज्ञान में कुछ ऐसी समस्याएँ है जिनका ठीक ढंग से अध्ययन यदि कोई अध्ययनकर्ता एक छोटा प्रतिदश (Sample) (व्यक्तियों की संख्या जिन्हें अध्ययन में शामिल किया जाता है, प्रतिदर्श कहा जाता है) लेकर करना चाहे, तो ठीक एवं वैज्ञानिक ढंग से वह नहीं कर पाता है । इस तरह की समस्याओं के अध्ययन के लिए प्रतिदर्श (Sample) का बड़ा होना तथा समाज के भिन्न–भिन्न वर्गों से व्यक्ति को लेना अनिवार्य हो जाता है। समाज में बच्चों के पालन–पोषण के अभ्यास (Child rearing practices) के प्रति मनोवृत्ति (Attitude) का अध्ययन, शादी से पहले होने वाले लैंगिक सम्बन्धों का अध्ययन करना, किशोरों में विशेष औषध (Drug) का प्रयोग से सम्बन्धित समस्या आदि कुछ ऐसी ही समस्याएँ है जिनका अध्ययन के लिए प्रतिदर्श (Sample) को बड़ा तथा सभी वर्गों से प्रतिनिधित्व (Representation) कका होना अनिवार्य है और इसी तरह की समस्याओं के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्वे विधि को अपनाया जाता है।

सर्वे विधि के कुछ गुण (Merits) तथा दोष (Demerits) हैः–

गुण (**Merits**)- इस विधि के प्रमुख गुण निम्नांकित है

(i) इस विधि का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके द्वारा कम समय में अधिक से अधिक व्यक्तियों से आँकड़े संग्रह किये जा सकते हैं ।

(ii) चूंकि इस विधि में समाज में भिन्न–भिन्न वर्गों से व्यक्तियों का चयन करके उन्हें अध्ययन में शामिल किया जाता है, अतः इससे प्राप्त निष्कर्ष में सामान्यीकरण (Generalization) का गुण अधिक होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष को अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिए सही माना जा सकता है, यानी सर्वे विधि (External Valdity) का गुण काफी अधिक होता है।

अवगुण (Demerits)– सर्वे विधि के प्रमुख अवगुण निम्नांकित है–

(i) इसका प्रयोग शिशुओं (Infants) पर नहीं किया जा सकता है ।

(ii) इस विधि में समस्या से सम्बन्धित जो आँकड़े संग्रह किये जाते हैं,उसकी वैधता (Validity) पर लोगों को शक बना होता है। उदाहरणार्थ, डाक प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएँ या आँकड़े सही ही है, इसे निश्चिततापूर्वक कैसेकहा जा सकत है। हो सकता कि इस प्रश्नावली के प्रश्नों को उचित व्यक्ति जवाब न देकर कोई दूसरे ही दिया हो। ऐसा भी संभव है कि व्यक्ति कुछ ही प्रश्नों का जवाब देकर प्रश्नावली को लौटा दें। अतः यह कहा जाता है कि सर्वे विधि द्वारा प्राप्त आँकड़ों की वैधता बहुत अधिक नहीं होती है। इस विधि में कुछ दोष होने के बावजूद भी इसका प्रयोग मनोवैज्ञानिक द्वारा काफी किया जाता है ।

प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

मनोविज्ञान का सबसे प्रमुख एवं वैज्ञानिक विधि प्रयोगात्मक विधि है। प्रयोगात्मक विधि उस विधि को कहा जाता है जिसका आधार प्रयोग होता है। साधरतया किसी व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया (Mental Process) को किसी नियंत्रित अवस्था में क्रमबद्ध अध्ययन या प्रेक्षण करना ही प्रयोग (Experiment) कहलाता है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रयोग में व्हारों का अध्ययन किसी नियंत्रित अवस्था में की जाती है। व्यवहारों का अध्ययन चरों (Variable) के माध्यम से किया जाता है। शाब्दिक अर्थ में चर (Variable) किसी भी ऐसी घटना (Event), परिस्थिति या

व्यक्ति का गुण होता है जिसका मान परिवर्तनशील होता है। वैज्ञानिक अर्थ में चर जैसी घटना परिस्थिति या व्यक्ति का गुण होता है जिसे मापा जा सकता है । तथा जो परिमाणात्मक रूप से (Quantitatively) परिवर्तित होता है । जैसे– उम्र, वृद्धि, थकान आदि चर के उदाहरण है, जिन्हें माप भी जा सकता है तथा जो परिमाणात्मक रूप से परिवर्तित भी होते हैं।

किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग (Psychological experiment) में मुख्यतः तीन तरह के चर होते हैं– स्वतंत्र चर (Independent variabl) आश्रित चर (Depednent Variable) तथा संगत चर (Relevant variable) या नियंत्रण चर (Control variable) स्वतंत्र चर (Independent variable) वैसे चर के कहा जाता है जिससे प्रयोगकर्ता जोड़–तोड़ (Manipulation) करता है तथा जिसके प्रभाव को दूसरे चर पर अध्ययन भी किया जाता है इसे नियंत्रित चर (Controlled Variable) भी कहा जाता है ।

आश्रित चर (Depenent Variable) वैसे चर को कहा जाता है जिसके बारे में प्रयोगकर्ता प्रयोग करके पूर्वकथन (Prediction) करना चाहता है। इसे आश्रित चर इसलिये कहा जाता है क्योंकि होने वाला परिवर्तिन स्वतंत्र चर में किये गये जोड़–तोड़ पर निर्भर करता है।

प्रायः मनोविज्ञान के प्रयोग में कुछ ऐसे भी चर होते हैं जिनके प्रभाव को प्रयोगकर्ता नियंत्रित करके रखता है क्योंकि वह आश्रित चर पर उन चरों के प्रभाव को अध्ययन नहीं करना चाहता है। इस तरह के चर को संगत चर (Relevant variable) या बहिरंग चर (Extraneous variable) या नियंत्रण चर (Contrtolled variable) कहा जाता है । आश्रित चर (Dependent variable) स्वतंत्र चर (Independent variabl) तथा नियंत्रण चर (Controlled Variable) के आपसी सम्बन्ध को एक उदाहरण द्वारा हम इस प्रकार समझा सकते हैं। मान लिजिए कि एक प्रयोगकर्ता प्रयोग कर यह देखना चाहता है कि सीखने की प्रक्रिया पर पुरस्कार का प्रभाव क्या पड़ता है। इस प्रयोग में वह स्पष्टतः सीखने की प्रक्रिया के बारे में पूर्वकथन (Prediction) करना चाहता है। अतः सीखना यहाँ एक आश्रित चर (Dependent variable) का उदाहरण है। पुरस्कार यहाँ एक स्वतंत्र चर का उदाहरण है क्योंकि वह परस्कार में जोड़–तोड़ (Manipulation) करेगा और इस जोड–तोड़ के प्रभाव को आश्रित कर यानी सीखने की प्रक्रिया पर देखेगा ।

गुण (Merits)-प्रयोगात्मक विधि के प्रमुख निम्नांकित है–

(I) प्रयोगात्मक विधि में प्राणी या जीव (Organism) के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं से सम्बद्ध चरों का अध्ययन एक नियंत्रित अवस्था (Controlled Condition) में (यानी सामान्यतः प्रयोगशाला में) की जाती है। परिणामस्वरूप इससे प्राप्त निष्कर्ष की आन्तरित वैधता (Internal Validity) काफी अधिक होती है। अपने इसी गुण के कारण प्रयोगात्मक विधि अन्य विधियों से भिन्न है क्योंकि इतना अधिक नियंत्रित परिस्थिति दूसरी विधि में नहीं मिल पाती है। एटकिन्सन, एटकिन्सन तथा हिलगार्ड (Atkinson, Atkinson & Hilgard 1983) ने ठीक ही कहा है, "चरों पर सख्त (Precise) नियंत्रण करने की क्षमता ही प्रयोगात्मक विधि को प्रेक्षण के अन्य विधियों से अलग करता है।"

(ii) प्रयोगात्मक विधि में पुनरावृत्ति (Replication) का गुण होता है। प्रयोगकर्ता स्पष्ट रूप से अपने रिपोर्ट में यह लिखता है कि उसका प्रयोगात्मक डिजाईन (Experimental design) क्या था, उसमें प्रयोज्य (object) की संख्या क्या थी, उसने स्वतंत्र चर में जोड़–तोड़ कैसे किया, आदि–आदि । यदि दूसरे अध्ययनकर्ता को पहले अध्ययनकर्ता द्वारा प्राप्त निष्कर्ष पर किसी प्रकार की शंका है तो उसे दोहराकर निष्कर्ष की जांच आसानी से कर ले सकता है। इस ढंग की सुविधा दूसरी विधि में नही है ।

(iii) प्रयोगात्मक विधि काफी वस्तुनिष्ठ (Objective) होती है क्योंकि इसमें प्रयोगकर्ता को एक खास ढंग से एवं खास–विधि से प्रयोग करना होता है। चाहकर भी वह किसी प्रकार का पक्षपात या पूर्वाग्रह (Prejudice) आदि नहीं कर पाता है। चूंकि विधि वस्तुनिष्ठ होती है, अतः इससे प्राप्त आँकड़ों (Data) का गुणात्मक (Qualitative) तथा परिमाणात्मक (Quantitiave) विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है।

(iv) प्रयोगात्मक विधि में स्वतंत्र चरों को जोड़–तोड ;डंदपचनसंजपवदद्ध काफी ठीक ढंग से हो पाता है फलस्वरूप प्रयोगकर्ता किसी मनोवैज्ञानिक समस्या (Psychological Problem) का अध्ययन कई तरह से कर सकने में समर्थ होते हैं ।

दोष (Demerits)– प्रयोगात्मक विधि के प्रमुख दोष निम्नांकित है–

(i) प्रयोगात्मक विधि का सबसे महत्त्वपूर्ण दोष यह बतलाया गया है कि प्रयोग की नियंत्रित अवस्था वास्तविक; त्मंसद्धन होकर कृत्रिम (Artificial) होती है। फलस्वरूप, इसका सम्बन्ध जीवन के वास्तविक परिस्थिति (Real Situation) से कम होता है। इसलिए प्रयोगात्मक विधि से प्राप्त निष्कर्ष का सामान्यीकरण वास्तविक परिस्थिति के लिए संभव नहीं है। मॉर्गन, किंग तथा रॉबिन्सन (Morgan, King & Robinson, 1981) ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है, "प्रयोग से प्राप्त निष्कर्ष कृत्रिम प्रयोगात्मक परिस्थिति (Artificial experimental Sitaution) तक सीमित है तथा इसका सामान्यीकरण वास्तविक या स्वाभाविक परिस्थिति के व्यवहारों के बारे में नहीं की जा सकती है।"

(ii) प्रयोगात्मक विधि में कुछ विशेष प्रकार का दोष स्वाभाविक रूप से सम्मिलित होता है। प्रयोक्ता पूर्वाग्रह (Experimenter bias) तथा प्रतिदर्श पूर्वाग्रह (Sampling Bias) दो ऐसे महत्वपूर्ण दोष है। प्रयोक्ता पूर्वाग्रह में प्रयोगकर्ता या प्रयोक्ता की अपनी उम्मीद या प्रत्याशाएँ पक्षपात आदि प्रयोग के परिणाम तथा प्रेक्षण प्रक्रिया को प्रभावित करता है। प्रतिदर्श पूर्वाग्रह (Sampling Bias) से तात्पर्य प्रयोज्यों को प्रतिनिधिक न होने से होता है । कभी–कभी ऐसा देखा गया है कि प्रयोगकर्ता

को जो भी व्यक्ति सुविधानुसार मिल रहा है, सभी को वह प्रयोज्य बना लेता है। इसका परिणाम यह होताहै कि ऐसे प्रयोज्य उन समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करते जिनके बारे में प्रयोग करके पूर्वकथन करना होता है। इतना ही नहीं, कभी–कभी यह भी देखा गया है कि प्रयोग में प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह तूल्य नहीं होते हैं। फलतः उसका परिणाम वैध तथा विश्वसीय नहीं हो पाता है ।

(iii) कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं जिन्हें पशु पर तो किया जा सकता है परन्तु मनुष्यों पर नहीं किया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रयोगात्मक विधि का कार्यक्षेत्र सीमित हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि प्रयोग ऐसा है कि उसमें शरीर का कोई अंग जैसे मस्तिष्क का ही एक विशेष अंग को काटकर निकाल देना है और उसका प्रभाव व्यवहार पर क्या पड़ता है, यह देखना है तो मनुष्य के साथ इस ढंग का प्रयोग करना अनैतिक माना जायेगा और शायद कोई मनुष्य ऐसा करवाने के लिए तैयार भी नहीं होगा। परन्तु पशुओं के साथ आसानी से इस तरह का प्रयोग किया जा सकता है और किया जा भी रहा है। पशुओं के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष को मनुष्यों के लिए भी सही मान लिया जाता है, हालांकि इसमें कई तरह की त्रुटि ;म्ततवतद्ध की संभावनाएं बनी रहती है।

इन दोषों के बावजूद भी प्रयोगात्मक विधि मनोविज्ञान की सबसे वैज्ञानिक विधि मानी गयी है। आज मनोविज्ञान में उन सिद्धान्तों एवं तथ्यों की कोई मान्यता नहीं है जिनका प्रयोगात्मक समर्थन (Experimental Support) नहीं है या बहुत ही कम है।

अन्तर्दर्शन विधि (Introspection Method)

अन्तर्निरीक्षण का अर्थ होता है अन्तस् या अन्दर का निरीक्षण । दूसरे शब्दों में, जब कोई व्यक्ति अपने भीतर की अनुभूतियों का स्वंय निरीक्षण करता है तो इसे अन्तर्निरीक्षण कहा जाता है। इस विधि का प्रतिपादन विलहेल्म वुण्ट (Wilhelm Wundt) तथा उनके शिष्य टिचेनर (Titchener) ने जिन्होनें संरचनावाद (Structuralims) नामक स्कूल की स्थापना की द्वारा किया गया ।

इन लोगों ने मनोविज्ञान को चेतन अनुभूति ;ब्वदेबपवने मगचमतपमदबमद्ध का विज्ञान कहकर परिभाषित किया था और बतलाया था कि चेतन अनुभूतियों को अध्ययन करने का विधि सिर्फ अनतर्निरीक्षण ही है। इन लोगों ने चेतन अनुभूति के तीन तत्व बतलाऐं है जो इस प्रकार है– संवेदन (Sensation), भाव (Feeling) तथा प्रतिमा (Image) । यदि कोई व्यक्ति अपने चेतन अनुभूति का वर्णन इन तथ्यों के रूप में करता है तो इस तरह का वर्णन निश्चित रूप से अन्तर्निरीक्षण कहलायेगा । एक उदाहरण लीजिए– मान लिजिए की कोई व्यक्ति एक मृत युवक को सड़क पर पड़ा देखता है । इसे देखकर उसके चेतन अनुभूति (Conscious experience) में कुछ खास–खास बातें आती है जिसका वर्णन वह स्वयं ही इस प्रकार करता है –

''मृत युवक के शरीर को देखकर उसे बहुत ही दुःख हुआ और ठीक इस तरह की एक घटना कल मेरे घर के सामने घटी थी जिसमं इसी उम्र के एक व्यक्ति को किसी ने जान से मार कर फेंक दिया था ।

टिचेनर (Titchener, 1890) के अनुसार अन्तनिरीक्षण विधि (Introspection method) की सफलता निम्नांकित बातों पर निर्भर करती है।

(I) अन्तनिरीक्षण करने वाले व्यक्ति में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह (Prejudice) तथा पक्षपात (bias) की भावना न हो ।

(ii) अन्तर्निरीक्षण करने वाला व्यक्ति को अपने ध्यान या अवधान (Attention) की प्रक्रिया पर पूर्ण नियंत्रण हो ।

(iii) अन्तर्निरीक्षण करने वाला व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से तरोताजा (Fresh) हों उसमें थकान (Fatigue) तथा मानसिक उब (Monotony) आदि की भाव न हो ।

(iv) अन्तनिरीक्षण करने वाले व्यक्ति को अन्तर्निरीक्षण की प्रक्रिया में अभिरूचि (Interest) हो तथा उसकी चित्त प्रकृति (Temperament) शांत हो ।

गुण (Merits)- अन्तर्निरीक्षण विधि के प्रमुख गुण (Merits) निम्नांकित हैः–

(i) अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं जैसे–उसकी इच्छाओं, भावों का अध्ययन एवं विश्लेषण ठीक ढंग से हो पाता है। कुछ मानसिक समस्याएँ ऐसी होती है जिन्हे सिर्फ अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है । जैसे– यदि कोई अध्ययनकर्ता यह देखना चाहता है कि चिन्तन की प्रक्रियाओं में मानसिक प्रतिमाओं (Mental images) का हाथ है या नहीं तो इसका अध्ययन अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा ही ठीक ढंग से हो सकता है ।

(ii) अन्तर्निरीक्षण विधि एक तरह का आत्म–निरीक्षण (Self Observation) है। यदि हम आत्मर्निरीक्षण निष्पक्ष एवं बिना किसी दबाव के करते हैं तो मानसिक प्रक्रियाओं के बोर में वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इससे बढकर और कोई दूसरी विधि नहीं हो सकती है

(iii) अन्तर्निरीक्षण विधि मनोविज्ञान की सबसे पहली तथा पुरानी विधि है। इस विधि के सहारे ही मनोवैज्ञानिक चेतन अनुभूतियों (Conscious experience) का अध्ययन कर मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र से अलग कर एक प्रयोगात्मक रूप दे पाये । अतः यह कहा जा सकता है कि अन्तर्निरीक्षण विधि एक ऐसी विधि है जिसके सहारे मनोविज्ञान को एक प्रयोगात्मक स्तर मिल गया है ।

दोष (Demerits) - अन्तर्निरीक्षण विधि के कुछ दोष (Demerits) भी है। इसके प्रमुख दोष निम्नांकित है–

(i) मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्निरीक्षण विधि का सबसे बड़ा दोष यह बतलाया है कि यह विधि व्यक्तिगत तथा आत्मनिष्ठ होता है ।व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण करके जो भी कह रहा है, उसे मानना ही है । ऐसा भी संभव है कि उसे अनुभूति कुछ हो रहा है और वह कर कुछ और ही रहा है। उदाहरणार्थ, किसी कुत्ता को देखकर मान लीजिए कि व्यक्ति में दुःखद अनुभूतियां उत्पन्न हो रही है, परन्तु वह इसे ना बताकर यह कह सकता है कि इस कुत्ता को देखकर काफी सुखद अनुभव एवं यादें रही है। इस तरह से स्पष्ट है कि अन्तनिरीक्षण विधि में आत्मनिष्ठता (Subjectivity) की गुंजाईश काफी है। इससे इसविधि की सार्थकता तथा वैधता (Validity) कम हो जाती है ।

(ii) कुछ अनुभूतियाँ स्वभाव से ऐसी होती है जिनका अध्ययन अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा करना संभव नहीं होता है क्योंकि व्यक्ति इन अनुभूतियों से अवगत तो रहता है, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति भाषा के रूप में नहीं कर सकताहै। जैसे– यदि किसी व्यक्ति से मूली खाते समय उसके स्वाद की अनुभूतियों को बतलाने के लिए कहा जाय, तो उन अनुभूतियों का वर्णन वह किन शब्दों में करेगा, यह कहना मुश्किल है। संभव है कि वह उसकी अभिव्यक्ति उचित ढंग से कर ही न पाये । कुछ मनौवैज्ञानिक ने इस तरह के दोष के अन्तनिरीक्षण विधि का दोष न मानकर भाषा माना है। सच्चाई यह हे कि इसमें भाषा का दोष तो है ही परन्तु इस विधि का भी दोष है। कोई भी विधि उस समय वैज्ञानिक न रहकर अवैज्ञानिक हो जाती है । जब वह भाषा सम्बन्धी दोष से ग्रसित हो जाती है। इसका मतलब तब यह हुआ कि अन्तर्निरीक्षण विधि वैज्ञानिक नहीं है ।

(iii) अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रयोग पशु, पक्षियों, छोटे–छोटे बालकों एवं पागलों पर नहीं किया जा सकता है क्योकि वे किसी भी परिस्थिति में अपनी चेतन अनुभूतियों का अध्ययन करन उसकी अभिव्यक्ति भाषा द्वारा ठीक से नहीं कर सकते हैं

(iv) अन्तर्निरीक्षण विधि में अनुभव करने वाला तथा अनुभूतियों का निरीक्षण करने वाला व्यक्ति एक ही होता है। अतः एक ही व्यक्ति को दोहरा कार्य करना पडता है। इस तरह का दोहरा कार्य सभी व्यक्ति ठीक ढंग से सभी तरह की मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में नहीं कर सकते हैं । कुछ लोग यदि ऐसा कर भी लेते हैं तो वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण सेउचित नहीं हो पाता है क्योंकि कुछ ऐसी मानसिक प्रक्रियाऐं है जिन्हें व्यक्ति चाहकर भी ठीक ढंग से अनुभव एवं निरीक्षण साथ–साथ नहीं कर सकता है का तात्पर्य प्राप्तांकों के वितरण के प्रतिरूपों अथवा औसत मूल्य से है।

प्रदन्तों का मात्रात्मक विश्लेषण
केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप

साधारण अर्थ में केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ है केन्द्र (Centre) की ओर झुकाव। लेकिन सांख्यिकी (Statistics) में केन्द्रीय प्रवृत्ति का तात्पर्य बारंबारता–वितरण (Frequency distribution) में किसी प्राप्तांक (Score) में केन्द्र की ओर झूकाव से है। जैसे–जैविक शीलगुणों (biological traits) में उनके वितरण केन्द्र (औसत) की ओर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। जैसे, नाटे माता–पिता के बच्चे अपेक्षाकृत लम्बे तथा लम्बे माता–पिता के बच्चे अपेक्षाकृत नाटे होते हें। चैपलिन (Chaplin, 1975) के अनुसार, प्राप्तांकों के प्रतिनिधक मूल्य (representative value) को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहते हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति (Central Tendency) के माप

केन्द्रीय प्रवृत्ति का मापन तीन मापों (measures) द्वारा किय जाता है। इन मापों को मध्यमान या माध्य (The Mean), माध्यिका (The Median) तथा बहुलक (The Mode) कहते हैं।

मध्यमान (Mean)

माध्य या मध्यमान केन्द्रीय प्रवृत्ति की एक माप है। इसके मुख्य तीन प्रकार है– जिन्हें अंकगणितीय माध्य (Arithemetic mean), हरात्मक माध्य (Harmonic-mean) तथा ज्यामितीय माध्य (Geometric mean) कहते हैं । हमारा सम्बन्ध यहाँ अंगणितीय माध्य से है। अतः हम यहाँ इस माध्य के अर्थ, विशेषता, उपयोगिता तथा इसके परिकलन (Calculation) के तरीकों का उल्लेख करेगें ।

अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Mean)

साधारण अर्थ में किसी चीज के औसत को माध्य या मध्यमान कहते हैं। प्राप्तांकों के योगफल को उनकी कुल संख्या ;छद्धसे भाग देने पर जो भागफल होता है उसे ही अंकगणीतीय मध्यमान कहते हैं। 5 छात्रों ने एक बुद्धि–परीक्षण पर 100, 105, 95, 90 तथा 80 अंक प्राप्त किए।

इन सभी प्राप्तांकों का योगफल ($100+105+95+90+80=470$) 470 हुआ। अब इस योगफल को सभी प्राप्तांकों की कुल संख्या यानी 5 से भाग देने पर 94 आता है। पाँचों विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का अंकगणितीय मध्यमान 94 हुआ।

माध्य की विशेषताएँ (Properties of the Mean)

माध्य के परिकलन के पहले इसकी विभिन्न विशेषताओं का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है–

(i) माध्य की एक विशेषता यह है कि बारंबारता–वितरण (Frequency distribution) के केन्द्र ;ब्मदजतमद्धकी ओर निर्देश करता है। यह ऐसे मूल्य को बतलाता है जो वितरण के माध्य या उसके आसपास होता है । जब वितरण बिल्कुल संतुलित (balanced) होता है तो माध्य वितरण के ठीक केन्द्र में होता है। वितरण में असंतुलन जितना ही अधिक होता है । माध्य उतना ही अधिक केन्द्र से दूर होता है।

(ii) माध्य की एक विशेषता यह भी है कि इससे पता चलता है कि वितरण प्रसामान्य (Normal) है या नहीं । प्रसामान्य वितरण होने पर माध्य ठीक केन्द्र में होता है और माध्य (Mean), माध्यिका (Median) तथा बहुलक (Mode) में कोई अन्तर नहीं होता है।

(iii) वितरण के किसी भी प्राप्तांक में परिवर्तन होने पर माध्य में भी परिवर्तन देखा जाता हे।

(iv) माध्य की एक विशेषता यह भी है कि यह किसी वितरण का संतुलन–बिन्दु होता है। इससे कोई प्राप्तांक ऊपर होतो इसे धनात्मक विचलन ;Positive deviation) कहेगें तथा यदि कोई प्राप्तांक इससे नीचे हो तो इसे ऋणात्मक विचलन (Negative deviation) कहा जाएगा।

(v) सामान्य परिस्थितियों में माध्यिका (Median) तथा बहुलक (Mode) की तुलना में माध्य में प्रतिदर्श स्थिरता (Sampling Stability) अधिक पायी जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रतिदर्श के घटने–बढ़ने का अधिक प्रभाव माध्य पर नहीं पड़ता है ।

माध्य की उपयोगिताएँ या गुण
(Uses or Merits of the Mean)

बारंबारता– वितरण की केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप के रूप में माध्य की

कई उपयोगिताएँ है:–

(i) माध्य से किसी समूह या वितरण के औसत (average) का बोध होता है। इससे समूह या वितरण के मानदण्ड (Standard) का संकेत मिलता है ।

(ii) माध्य की एक उपयोगिता यह भी है इसके आधार पर दो या अधिक समूहों या वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना संभव होता है। किसी वर्ग के सभी लड़कों तथा लड़कियों के प्राप्तांकों (Scores) के माध्य अलग–अलग निकाले जाएँ तो इससे पता चल सकता है कि उपलब्धि के दृष्टिकोण से लड़कियों तथा लड़कों में श्रेष्ठ कौन है ।

(iii) माध्य की उपयोगिता दूसरी कई सांख्यिकी (Statistics) को निकालने के सम्बन्ध में देखी जाती है। जैसे–मानक विचलन (SD), औसत विचलन (AD), टी–परीक्षण (t-test), सह–समबन्ध (Correlation) आदि के परिकलन में माध्य सहायक होता है ।

(iv) गैरेट (Garrett, 1981) के अनुसार केन्द्रीय प्रवृत्ति की तीनों मापों अर्थात् माध्य, माध्यिका तथा बहुलक में माध्य में सबसे अधिक स्थिरता (Stability) पायी जाती है। अतः जहाँ कहीं केन्द्रीय प्रवृत्ति की स्थिर माप (Stable measure) की आवश्यकता होती है वहाँ माध्य का उपयोग करना अधिक उपयोगी होता है।

माध्य के दोष या सीमाएँ

(Demerits or Limitations of the Mean)

इसमें निम्नलिखित दोष है।

(i) इसका सबसे गंभीर दोष यह है कि अन्त के निरीक्षणों (Extreme observations) का गहरा प्रभाव माध्य पर पड़ता है ।

(ii) माध्य का निर्धारण न तो निरीक्षण से सम्भव है ओर न ग्राफीय विधि (Graphic Mehod) से ही ।

(iii) ऐसी गुणात्मक विशेषताएँ, जिनका मात्रात्मक मापन संभव नहीं हो पाता है, उनका अध्ययन माध्य से नहीं हो पाता है, जबकि माध्यिका से संभव हो जाता है। जैसे–ईमानदारी, सुन्दरता, आदि का अध्ययन ।

(iv) माध्य के साथ एक कठिनाई यह है कि यदि आँकड़ों ;कंजंद्धकी पूरी जानकारी न हो तो उनके माध्य से गलत निष्कर्ष प्राप्त हो सकता है। जैसे– मान लें कि राम ने पहली जाँच परीक्षा में 45, दूसरी में 50 तथा तीसरी में 55 अंक पाए । श्याम ने इन परीक्षाओं में क्रमशः 55 50 तथा 45 अंक पाए । औसत अंक 50 अंक पाया । इस आधार पर निष्कर्ष निकला कि राम तथा श्याम की उपलध्यिाँ समान रही । लेकिन यह निष्कर्ष गलत है, क्योंकि राम की क्रमशः उन्नति हुई है जबकि श्याम की अवनति हुई है।

अंकगणितीय माध्य का परिकलन

(Calculation of the Arithmetic Mean)

माध्य दो परिस्थितियों में निकाला जाता है जो निम्न है–

(क) असमूहित आँकड़ों का माध्य

(The mean from ungrouped Data)

असमूहित आँकड़ों का अर्थ है कि वे अलग–अलग प्राप्तांक के रूप में हो, बारंबारता सारणी (Frequency table) के रूप में न हो । ऐसे आँकड़ों (data) या प्राप्तांकों (Scores) के माध्य को निकालने का तरीका यह है कि अलग–अलग प्राप्तांकों को एक साथ जोड़ दिया जाता है और उनकी कुल संख्या (N) से भाग दिया जाता है जो भागफल होता है वही माध्य होता है। इसका सूत्र निम्नलिखित है–'

$$M = \frac{\sum X}{N}$$

यहाँ, M= माध्य (mean) Σ = कुल योग (Sum of)
x= प्राप्तांक (Scores), N= प्राप्तांकों की संख्या (Number of scores)।

उदाहरण– मनोविज्ञान की परीक्षा में 10 छात्रों के प्राप्तांक निम्नलिखित है 45, 55, 35, 60, 70, 52, 45, 62, 67, 68 ये सभी असमूहित प्राप्तांक है। माध्य निकालने के लिए इन सभी प्राप्तांकों को जोड़कर कुल संख्या (N) यानी 10 से भाग देने पर जो भागफल होगा वही माध्य होगा ।

छात्रों की संख्या	प्राप्तांक (X)
1	45
2	55
3	35
4	60
5	70
6	52
7	45
8	62
9	67
10	68
$M = \frac{\sum X}{N} = \frac{559}{10} = 55.9$	X=559

Mean from Grouped Data :

(ख) समूहित आँकड़ों का माध्य

(Mean From Grouped Data)

समूहित या व्यवस्थित आँकड़ों या प्राप्तांकों का अर्थ वे आंकड़े या प्राप्तांक है जिन्हें बारंबारता–वितरण सारणी (Frequency distribution table) के रूप में सजा दिया जाता है ।

समूहित या अवस्थित आंकड़ों से माध्य निकालने की दो विधियाँ है–

1. लम्बी विधि (Long Method)

लम्बी विधि को वास्तविक माध्य विधि (actual mean method) भी कहते हैं। इस विधि से माध्य निकालने का सूत्र (Formula) निम्नलिखित है:–

$$M = \frac{\sum fX}{N}$$

यहाँ Σ M = माध्य (mean),

= कुल योग (Sum of),

f = त्रिबारंबारता (Frequency),

x = वर्गान्तर का मध्य बिन्दु (Midpoint of the class interval),

N = कुल बारंबारताओं की संख्या ।

उदाहरण– विश्वविद्यालय के 60 विद्यार्थियों द्वारा उपलब्ध–परीक्षण (Achievement test) पर लाए गए प्राप्तांक (Scores) दिए गए हैं। इनके आधार पर माध्य निकालें–

वर्गान्तर (Class Inverval	मध्य बिन्दु (Midpoint)	बारंबारता	बारंबारता तथा मध्य बिन्दु का गुणनफल
C.I.	X	f	(Fx)
57-59	58	1	58
54-56	55	1	55
51-53	52	6	312
48-50	49	12	588
45-47	46	7	322
42-44	43	9	387
39-41	40	8	320
36-38	37	5	185
33-35	34	4	136
30-32	31	6	186
27-29	28	0	0
24-26	25	1	25
		N = 60	Σ fx= 2574

Mean = 2574/60 = 42.90 Ans.

लघु विधि– (Short Method)

माध्य (mean) निकालने की दूसरी विधि को लघु विधि कहते हैं। इसे लघु विधि इसलिए कहते हैं कि इसके द्वारा माध्य ज्ञात करने में अधिक सुविधा होती है, समय कम लगता है। तथा श्रम कम करना पड़ता है।

इस विधि में माध्य (mean) निकालने का सूत्र (Formula) निम्नलिखित है।

M = AM + Ci

यहां M = माध्य (Mean)

AM =कल्पित माध्य (Assumed Mean)

C= शुद्धि (Correction)

i = वर्गान्तर का आकार या लम्बाई (Size or length of class interval)

शुद्धि यानी C को इस प्रकार निकाला जाता है–

$$C = \frac{\sum fX}{N}$$

यहाँ C = शुद्धि (Correction), Σ कुल योग (Sum of)

fx' = बारंबारता तथा कल्पित माध्य (AM) से विचलन (deviation) का गुणनफल

N = बारंबारता की कुल संख्या

उदाहरण–

वर्गान्तर Class tervals	मध्य बिन्दु Mid points	बारंबारता Frequ ency	कल्पित मध्यमान से विचलन Deviation from AM	विचलन तथा बारंबारता का गुणनफल
c.i.	X	f	x'	fx'
57-59	58	1	5	5
54-56	55	1	4	4
51-53	52	6	3	18
48-50	49	12	2	24
45-47	46	7	1	7
AM 42-44	43	9	0	-58 0
39-41	40	8	-1	-8
36-38	37	5	-2	-10
33-35	34	4	-3	-12
30-32	31	6	-4	-24
27-29	28	0	-5	-0
24-26	25	1	-6	-6
		N=60		-60

$\sum fx = 58 - 60 = -2$

Vc M = AM + ci

AM = 43

$$C = \frac{\sum fX}{N} = \frac{-2}{60} = -.03$$

i = 3

therefore

Means = 43 + (- .03 X 3)

= 43 + (-.09) = 43 - .09 = 42.91

मध्यांक (Median)

मध्यांक क्या है (What is Median, Mdn)

मध्यांक को माध्यिका भी कहते हैं। केन्द्रीय प्रवृत्ति की दूसरी माप को माध्यांक कहते हैं। इसे प्रतीक के रूप में डकद कहते हैं । माध्यांक का अर्थ किसी वितरण (distribution) में वह बिन्दु है जिसके उपर 50 प्रतिशत तथा नीचे 50 :होते हैं। डाउनीतथा हीथ (Downine & Heath, 1959, 1970) के शब्दों में " माध्यांक किसी वितरण में वह बिन्दु है, जिसकी दोनों ओर बराबर–बराबर प्राप्तांक होते है।

इसे एक उदाहरण द्वारा और भी स्पष्ट किया जा सकता है। मान लें कि इतिहास में 7 छात्रों के प्राप्तांक इस प्रकार है– 60, 45, 55, 65, 70, 48, 59 अब इन प्राप्तांकों को बढ़ते हुए क्रम में इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है– 45, 48, 55, 59, 60, 65, तथा 70 इनमें 59 प्राप्तांक है, जिसके नीचे तीन प्राप्तांक यानी 55, 48 तथा 45 है तथा ऊपर भी तीन प्राप्तांक यानी 60, 65 तथा 70 है। अतः 59 को माध्यांक माना जाएगा ।

माध्यिका की विशेषताएँ

(Properties of the Median)

माध्यिका के परिकलन (Calculation) के पहले इसकी विशेषताओं को जान लेना लाभदायक होगा ।

(i) माध्यिका ;उकदद्ध की एक विशेषता यह है कि यह माध्य (Mean) की तरह केन्द्र की ओ निर्देश करता है। इसलिए दोनों को केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप (Measures) कहा जाता है । इस विशेषता के आधार पर ये दोनों अभिन्न है।

(ii) माध्यिका की एक विशेषता यह भी है कि यह वितरण के उस बिन्दु को इंगित करती है, जिसके ऊपर तथा नीचे बराबर–बराबर प्राप्तांक होते हैं। इस आधार पर यह माध्य (Mean) से भिन्न है। कारण, माध्य से केवल औसत का बोध होता है ।

(iii) वितरण के किसी प्राप्तांक (Score) में परिवर्तन होने पर भी माध्यिका में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे– 4, 5, 6, 7 तथा 8 में 6 माध्यिका है।

(iv) माध्यिका की एक विशेषता यह भी है यह केवल उस बिन्दु या प्राप्तांक को बतलाती है जिसके ऊपर तथा नीचे बराबर–बराबर प्राप्तांक होते हैं। लेकिन, यह प्राप्तांकों की दूरी को महत्त्व नहीं देती है । जैसे– 10, 25, 33, 35 तथा 39 में 33 माध्यिका है और इसके नीचे के दोनों प्राप्तांकों (10 और 25) में 15 का अन्तर है। जबकि इसके उपर के दोनों प्राप्तांकों (35 तथा 39) के बीच केवल 4 का अन्तर है । इतना अधिक असंतुलन माध्य (Mean) में नहीं है। अतः इस आधार पर ये दोनों माप (Measure) एक दूसरे से भिन्न है ।

(v) गैरेट (Garrett, 1981) के अनुसार इसमें प्रतिदर्श विचलन (Sampling Fluctuation) कम पाया जाता है। लेकिन, माध्य (Mean) की तुलना में यह विचलन माध्यिका में अधिक पाया जाता है।

माध्यिका की उपयोगिताएँ (Uses of the Median)–

इस केन्द्रीय प्रवृत्ति की निम्नलिखित कई उपयोगिताएँ है–

(i) माध्यिका की एक उपयोगिता यह है कि इसके आधार पर किसी वितरण के वास्तविक मध्यबिन्दु (Excat Midpoint) को निर्धारित करना संभव होता है। अतः जब कभी किसी वितरण के मध्य–बिन्दु को निर्धारित करना होता है, तो माध्यिका निकालने की आवश्यकता होती है ।

(ii) माध्यिका से इस बात का ज्ञान हो जाता है कि कौन–सा प्राप्तांक केन्द्रीय प्रवृत्ति को प्रभावित कर रहा है और उसका स्थान (Location) क्या है?

(iii) माध्यिका ही एक ऐसा औसत (Average) है, जिसका उपयोग गुणात्मक विशेषताओं के मापन के लिए किया जा सकता है। जैसे– औसत बुद्धि, औसत सुन्दरता, आदि का पता लगाना ।

माध्यिका के दोष या सीमाएँ

(Defects or Limitations of the Median)

कई उपयोगिताओं (uses) या लाभों (Advantages) के बावजूद माध्यिका की निम्नलिखित त्रुटियाँ (errors) या सीमाएँ है–

(i) असमूहित आँकड़ों (Ungrouped data) के लिए जब निरीक्षणों या प्राप्तांकों की संख्या समांक (even number) हो तो वास्तविक माध्यिका निकालना संभव नहीं हो पाता है। कारण, मध्य के दो प्राप्तांकों का औसत निकाल देने पर वास्तविक माध्यिका, प्राप्त नही हो पाती है। उन दो प्राप्तांकों के बीच कोई भी मूल्य माध्यिका हो सकती है ।

(ii) चूंकि माध्यिका स्थितीय औसत (Positional Average) है, इसलिए यह वितरण के प्रत्येक एकांश (item) पर आधारित नहीं होती है ।

(iii) माध्य (Mean) की तुलना में माध्यिका (mdn) में स्थिरता (Stability) कम पायी जाती है ।

(iv) विशेष 'रूप' से छोटे प्रतिदर्शों (Small Samples) की स्थिति में माध्य की तुलना में माध्यिका पर प्रतिदर्श के घटाव–बढ़ाव (Fluctuation of Sampling) का प्रभाव अधिक पड़त है ।

माध्यिका परिकलन

(Calculation of the Median)

माध्यिका को निम्नलिखित दो परिस्थितियों में निकाला जाता है ।

1. असमूहित आँकड़ों से माध्यिका
(The Median From Ungrouped data)

असमूहित या अव्यवस्थित आँकडों का अर्थ वे प्रदत्त (Scores) है जो वितरण सारणी (Frequency distribution table) के रूप में सजाए नहीं होते हैं। ऐसा तब होता है जबकि N छोटा होता है । ऐसी हालत में दिए गए आँकड़ों को बढ़ते हुए क्रम (Increasing order) या घटते हुए क्रम (Decreasing order) में व्यवस्थित कर लिया जाता है तथा बीच वाले अंक को माध्यिका मान लिया जाता है।

असमूहित आंकड़ों से मध्यिका निकालने का सूत्र इस प्रकार है–

$$Mdn = \frac{(N+1)}{2}$$

the number

यहाँ, Mnd = माध्यिका (Median), N त्रआँकड़ों या प्राप्तांकों की कुल संख्या । उपर्युक्त उदाहरण से माध्यिका इस सूत्र से निकालने पर,

$$Mdn = \frac{5+1}{2} = \frac{6}{2} = 3$$

the number

2. समूहित आँकड़ों से माध्यिका
(The Median From Grouped Data)

जब छबड़ा होता है तो आँकड़ों को व्यवस्थित या समूहित करके माध्यिका निकाली जाती है। समूहित या व्यवस्थित आँकड़ों का अर्थ ऐसे आँकड़ों से है जिन्हें बारंबारता वितरण–सारणी (Frequency distribution table) में सजा दिया जाता है। ऐसी हालत में माध्यिका निकालने का सूत्र निम्नलिखित है:–

$$Mdn = L + \left[\frac{\frac{N}{2} - F}{fm}\right] \times i$$

यहाँ Mdn = माध्यिका (Median)

L =ml वर्गान्तर की वास्तविक निम्न सीमा (Exact Lower Limit) जिसमें माधयिका पड़ती है ।

$\frac{N}{2}$ = प्राप्तांकों की कुल संख्या का आधा,

F = जिस वर्गान्तर में माध्यिका पड़ती है उसके नीचे के सभी वर्गान्तरों की बारम्बारताओं का योगफल

Fm= जिस वर्गान्तर में माध्यिका पड़ती है उसकी बारंबारता ।

i = वर्गान्तर की लम्बाई या आकार (Size of the interval)

उदाहरण– समूहित आँकड़े (Grouped data) से माध्यिका निकालने में कई चरण (Steps) शामिल होते हैं। इसे समझने के लिए निम्नलिखित के आँकड़ों पर ध्यान दें–

वर्गान्तर (Class Interval)	बारंबारता (Frequency)
55-59	1
50-54	1
45-49	0
40-44	2
35-39	3
30-34	7
Mdn 25-29	17
20-24	6
15-19	7
10-14	0
5-9	4
0-4	2
	N = 50

$$Mdn = L + \left[\frac{\frac{N}{2} - F}{fm}\right] \times i$$

अब

सूत्र 10 के अनुसार

$$\frac{N}{2} = \frac{50}{2} = 25$$

इस सूत्र के अनुसार

L = 24.5

F = 19

fm = 17

i = 5

अत: Median

$$= 24.5 + \left[\frac{25-19}{17}\right] \times 5 = 24.5 + \frac{6}{17} \times 5$$

$$= 24.5 + \frac{30}{17} = 24.5 + 1.76 = 26.26$$

बहुलक (Mode)

बहुलक का अर्थ वितरा का वह प्राप्ताक या अंक है जो सबसे अधिक बार आया हो। जैसे– 15, 11, 20, 11, 17, 11, 21, 15, 12 तथा 11 में 11 को बहुलक माना जाएगा। कारण 11 ही ऐसा अंक है जो वितरण में सबसे अधिक बार आया है।

रेबर तथा रेबर (Reber & Reber, 2001) ने इसकी परिभाषा दते हुए कहा है कि "सांख्यिकी में बहुलक प्राप्तांकों के वितरण की केन्द्रीय प्रवृति की वह माप है जिससे उस वर्गान्तर के मध्यबिन्दु का बोध होता है, जिसमें अधिकतम बारंबारता होती है।"

बहुलक की विशेषताएँ– (Properties of the mode)

(i) बहुलक की एक विशेषता यह है कि असमूहित आँकड़ों की हालत में इससे उस अंक का बोध होता है जो सबसे अधिक बार आता है ।

(ii) बहुलक की एक विशेषता यह भी है कि समूहित आँकड़ों की स्थिति में इसमें उस वर्गान्तर का बोध होता है जिसमें अधिकतम बारंबारता होती है ।

(iii) बहुलक को M_0 के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया जाता है ।

(iv) बहुलक के दो प्रकार हैं जिन्हें अवास्तविक बहुलक (Crude mode) तथा वास्तविक बहुलक (true mode) कहते हैं। जो बहुलक आँकड़ों के मात्र निरीक्षण के आधार पर निकाला जाता है उसे अवास्तविक बहुलक कहते हैं। दूसरी ओर जो बहुलक सूत्र के आधार पर निकाला जाता है। दूसरी ओर जो बहुलक सूत्र (Formula) के आधार पर निकाला जाता है, उसे परिकलित बहुलक (Calculation mode) या वास्तविक बहुलक कहते हैं ।

बहुलक की उपयोगिताएँ या गुण
(Uses or merits of the mode)

केन्द्रीय प्रवृति की तीन मापों (Measures) में बहुलक की उपयोगिता सबसे अधिक सीमित है। माध्य (Mean) तथा माध्यिका (Median) की तरह यह उपयोगी नहीं है फिर भी इससे कुछ लाभ अवश्य होता है

(i) जब कभी असमूहित आँकड़ों में उस अंक को जानना हो जो सबसे अधिक बार आया हो तो इसके लिए केवल बहुलक ही लाभप्रद होता है

(ii) बारंबारता द्विबहुलकी (bimodal) अथवा बहुबहुलकी (Multimodal) हो तो बहुलक का मूल्य माध्य तथा माध्यिका से अधिक हो जाता है

(iii) जब बहुत थोड़े समय में केन्द्रीय प्रवृत्ति का एक स्थूल अन्दाज लेना हो तो इसका व्यवहार आवश्यक बन जाता है ।

(iv) बहुलक दूरतम निरीक्षणों से प्रभावित नहीं होता है । इस आधार पर यह माध्य से बेहतर है ।

बहुलक के दोष या सीमाएँ
(Defects or Limitations of the Mode)

कई उपयोगिताओं के होते हुए भी बहुलक की कई सीमाएँ या त्रुटियाँ है–

(i) बहुलक की कठोर परिभाषा (Rigid definition) संभव नहीं है ।

(ii) बहुलक से आगे के गणितीय निरूपण (Mathematical treatment) में कोई लाभ नहीं होता है ।

(iii) माध्य (Mean) तथा माध्यिका (Mdn) की अपेक्षा बहुलक ;डवकमद्ध पर प्रतिदर्श (Sample) के घट–बढ (Fluctuation) का प्रभाव अधिक पड़ता है।

(iv) जो स्थिरता (Stability) माध्य (Mean) में पायी जाती है वह माध्यिका (Mdn) या बहुलक (Mode) में नहीं पायी जाती है ।

बहुलक का परिकलन (Calculation of the mode)

बहुलक निम्नलिखित दो परिस्थितियों में परिकलित (Calculate) किया जाता है–

1. असमूहित आँकड़ों से बहुलक
(The Mode from ungrouped data)

असमूहित आँकड़ों से बहुलक बहुत आसानी से निकाल लिया जाता है। केवल आंकड़ों को देखकर बहुलक निकालना सम्भव हो जाता है। इसीलिए ऐसे बहुलक को अवास्तविक बहुलक (Crude Mode) कहा जाता है। जैसे मान लें कि 15, 13, 18, 25, 20, 18, 22, 18, 23 तथा 28 से बहुलक ज्ञात करना है यहाँ इन आँकड़ों को मात्र देखने से ही ज्ञात हो जाता है कि 18 एक ऐसा अंक है जो अधिक बार पाया आया है। अतः यही बहुलक हुआ।

2. समूहित आँकड़ों से बहुलक
(The mode from grouped data)

जब समूहित आँकड़े होते हैं तो आवश्यकता के अनुसार अवास्तविक बहुलक (Crude Mode) तथा वास्तविक बहुलक (True mode) दोनों निकाले जा सकते हैं। अवास्तविक बहुलक केवल निरीक्षण के आधार पर निकाला जा सकता है। जिस वर्गान्तर में अधिकतम बारम्बारता होती है, उसके मध्यबिन्दु को बहुलक मान लिया जाता है।

वर्गान्तर Class Intervals	बारंबारता Frequency	मध्य बिन्दु Midpoints X	Fx
85-89	1	87	87
80-84	2	82	164
75-79	4	77	308
70-74	6	72	432
65-69	6	67	402
60-64	10	62	620
55-59	5	57	285
50-54	5	52	260
45-49	3	47	141
40-44	2	42	84
35-39	0	37	00
30-34	1	32	32
	N = 45		Σ x= 2815

समूहित आंकड़ों यानी बारंबारता – वितरण सारणी से बहुलक True mode निकालने का सूत्र इस प्रकार है ।

(First Formula of Mode) = 3 median - 2 Mean

बहुलक के परिकलन का दूसरा सूत्र

(Second Formula of mode)

सूत्र निम्नलिखित है–

$$M_0 = L + \left(\frac{fm_1}{fm_1 + fm_2}\right) \times i$$

यहाँ M_0 त्रबहुलक (mode)

L = उस वर्गान्तर की वास्तविक निम्न सीमा (Exact lower Limit) जिसमें अधिकतम बारम्बारता हो

Fm_1 = जिस वर्गान्तर में अधिकतम बारंबारता होती है उसके ठीक उपर वाले वर्गान्तर की बारंबारता ।

Fm_2 जिस वर्गान्तर में सबसे अधिक बारंबारता होती है उससे ठीक नीचे वाले वर्गान्तर की बारंबारता ।

i. वर्गान्तर का आकार या लम्बाई (Size or length of Class Interval) अब बहुलक इस प्रकार निकाला जाएगा :–

$$M_0 = L + \left(\frac{fm_1}{fm_1 + fm_2}\right) \times i$$

$L = 59.5\ Fm_1 = 6, Fm_2 = 5, I = 5$

इसलिए बहुलक = 59.5 $\left(\frac{6}{6+5}\right) \times 5$

$= 59.5 + \frac{30}{11}$

$= 59.5 + 2.73 = 62.23$ Ans.

आवृत्ति वितरण

बारंबारता का अर्थ–

किसी घटना के घटने की संख्या को बारंबारता कहते हैं। चैपलिन (Chaplin, 1975) ने बारंबारता की परिभाषा देते हुए कहा है, " कोई प्राप्तांक या घटना जितनी बार घटती है, उसकी संख्या को बारंबारता कहते हैं ।"

बारंबारता वितरण क्या है ?

बारंबारता – वितरण वह प्रविधि (technique) या विधि (Method) है, जिसके द्वारा बारंबारता को संख्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ प्राप्तांकों के प्रसार अथवा वर्ग के अनुसार बारंबारता का वितरण किया जाता है, जिससे पता चलता है कि किस वर्ग में घटना की कितनी संख्या अर्थात् कितनी बारंबारता । चैपलिन (Chaplin, 1975) के शब्दों में "बारंबारता वितरण से प्राप्तांकों के दिए गए वर्गान्तर या प्रसार में पड़ने वाली घटनाओं की संख्या का बोध होता है ।

रेबर तथा रेबर (Reber & Reber, 2001) ने बारंबारता वितरण को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "बारंबारता वितरण का तात्पर्य वर्गों या श्रेणीयों के अनुसार प्राप्तांकों के घटित होने की बारंबारता के सूचीकरण पर आधारित वितरण से है।[4]"

अतः सुविधा के अनुसार अथवा आवश्यकता के अनुसार बारंबारताओं (Frequencies) को विभिन्न वर्गों (Classes) अथवा श्रेणियों (Categorus) में वितरित करने वाली सारणी को बारंबारता–वितरण कहा जाता है। इस प्रकार बारंबारता का योगफल ही छ (प्राप्तांकों की कुल संख्या) होता है। इस आधार पर बारंबारता वितरण वास्तव में सम्भाव्यता वितरण (Probability distribution) से भिन्न होता है, क्योंकि यहाँ सम्भाव्यताओं का योगफल सदा 1.00 होता है ।

बारंबारता– वितरण की आवश्यकता या महत्त्व

(Need or Importance or Advantage of Frequency distribution)

प्रश्न है कि बारंबारता–वितरण क्यों किया जाता है। इससे किस आवश्यकता या आवश्यकताओं की पूर्ति होती है? दूसरे शब्दों में, बारंबारता–वितरण का क्या महत्त्व या उपयोगिता (Utility) है? इन प्रश्नों के उत्तरों से सम्बन्धित निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय है।

(i) बारंबारता–वितरण की एक पहली उपयोगिता यह है कि इससे प्राप्तांक (Scores) संगठित बन जाते हैं। जब तक प्राप्तांक अपने मूल आँकड़ें के रूप में होते हैं तब वे असंगठित रहते हैं। और जब उन्हें बारंबारता–वितरण सारणी (Frequency distribution table) में सजा दिया जाता है तो वे संगठित बन जाते है।

(ii) बारंबारता वितरण की दूसरी उपयोगिता यह है कि इससे प्राप्तांक अधिक अर्थपूर्ण तथा सार्थक बन जाते हैं। जब तक प्राप्तांक अपने मूल रूप में होते हें, तब तक वे अधिक स्पष्ट, सार्थक तथा अर्थपूर्ण नहीं होते हैं। लेकिन जब उन्हें बारंबारता वितरण सारणी में बदल दिया जाता है तो वे अधिक, सार्थक तथा अर्थपूर्ण बन जाते हैं।

(iii) बारंबारता–वितरण की तीसरी उपयोगिता यह है कि इससे मूल आँकड़ों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। जब तक आंकड़े मूल रूप से होते हैं तब तक इनका स्वरूप असपष्ट रहता है। लेकिन जब उन्हें बारंबारता– वितरण के रूप में इन्हें सजा दिया जाता है तो उनका स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

बारंबारता वितरण सारणी कैसे बनायी जाए ?

(How to make frequency Distribution table)

ये तीन प्रकार निम्नलिखित हैं–

(क) निरपेक्ष बारंबारता– वितरण (Absolute Frequency Distribution)

(ख) संचयी बारंबारता– वितरण (Cumulativee Frequency Distribution)

(ग) समानुपाती बारंबारता– वितरण (Proportionate Frequency Distribution)

(क) निरपेक्ष बारंबारता – वितरण

(Absolute Frequency Distribution)

बारंबारता वितरण का यह ऐसा प्रकार है, जिसके द्वारा बारंबारता को संख्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसकी कई विशेषताएँ है–

(I) यह काफी सरल बारंबारता–वितरण है।

(ii) इससे यह पता चलता हे कि एक वर्गान्तर में कोई प्राप्तांक कितनी बार आया है।

(iii) यहां सभी बारंबारताओं (Frequencies) का योगफल N (प्राप्तांकों की कुल संख्या) के बराबर होता है। लेकिन, इसकी त्रुटि यह है कि इससे यह पता नहीं चल पाता है कि किसी वर्गान्तर में पड़ने वाली बारंबारता N के किस अनुपात (Proportion) या प्रतिशत (Percentage) में है। फिर भी मनोविज्ञान, आदि व्यवहारपदक विद्वानो (Behavioural Sciences) में इसी बारंबारता–वितरण विधि का व्यवहार अधिक होता है।

1	2	3
Class Intervals	Tally	Frequencis
80-84	I	1
75-79	II	2
70-74	IIII	4
65-69	IIII	5
60-64	IIII I	6
55-59	IIII IIII	10
50-54	IIII II	7
45-49	IIII I	6
40-44	IIII	4
35-39	III	3
30-34	II	2
		N= 50

(ख) संचयी बारंबारता वितरण

(Cumulative Frequency Distribution)

इस प्रकार के वितरण के लिए दिए गए प्राप्तांकों (Scores) को निरपेक्ष बारंबारता– वितरण (absolute Frequency distribution) में यथार्थ विधि (Exact Method) द्वारा व्यवस्थित कर लिया जाता है। इसके बाद प्रत्येक वर्गान्तर की संचयी बारंबारता (Culmulative f) को निर्धारित किया जाता है।

1	2	3	4
Class Interval (C.I.)	Tally	Frequencis	Cum. Freq. (c.f)
79.5-84.5	I	1	50
74.5-79.5	II	2	49
69.5-74.5	III	4	47
64.5-69.5	IIII	5	43
59.5-54.5	IIII I	6	38
54.5-59.5	IIII IIII	10	32
49.5-54.5	IIII II	7	22
44.5-49.5	IIII I	6	15
39.5-44.5	IIII	4	9
34.5-39.5	III	3	5
29.5-34.5	II	2	2
		N =50	

(ग) समानुपाती बारंबारता वितरण

(Proportionate Frequency Distribution)

यहाँ निरपेक्ष बारंबारता–वितरण (Absolutefrequency istribution) की तरह ही दिए गए आँकड़ें या प्राप्तांकों का वितरण किया जाता है। इसके बाद प्रत्येक वर्गान्तर की बारंबारता की समानुपाती बारंबारतर को निकाला जाता है। इससे पता चलता है कि प्रत्येक वर्गान्तर में पड़ने वाली बारंबारता अपने छ (बारंबारता की कुल संख्या) के किस अनुपात में है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्गान्तर में पड़ने वाली समानुपाती बारंबारता की प्रतिशत बारंबारता (Percentage Frequency) को भी निकाला जा सकता है।

1	2	3	4
Class Interval	Frequencies	Proportionate	Percentage
80-84	1	.02	2.0
75-79	2	.04	4.0
70-74	4	.08	8.0
65-69	5	.10	10.0
60-64	6	.12	12.0
55-59	10	.20	20.0
50-54	7	.14	14.0
45-49	6	.12	12.0
40-44	4	.08	8.0
35-39	3	.06	6.0
30-34	2	.04	4.0
	N =50	1.00	100.0%

रेखीय प्रदर्शन

ग्राफीय चित्रणः— स्वरूप एवं प्रकार

(Graphic Representation: Nature and Type)

ग्राफीय चित्रण का अर्थ है आँकड़ों या प्राप्तांकों को ग्राफ के माध्यम से प्रदर्शित करना। यह प्रदर्शन वक्र (Curve) अथवा रेखाचित्र (Figure) के रूप में हो सकता है। वक्र या रेखाचित्र से आँकड़ों से सम्बद्ध चरों के बीच सम्बन्ध का स्पष्ट रूप हो जाता है। रेबर तथा रेबर (Reber & Reber, 2001) ने इसी अर्थ में ग्राफीय चित्रण को ग्राफ कहते हैं, जो ऐसी रेखाओं, वक्रों या आकारों के रूप में होता है, जो चरों के बीच सम्बन्धों को प्रतिबन्धित करते हैं।

इस परिभाषा के विश्लेषण से ग्राफ के स्वरूप के सम्बन्ध में चार बातें स्पष्ट होती है–

(I) ग्राफ आंकड़ों (Data) का वास्तविक चित्रण करता है ।

(ii) ग्राफ द्वारा चित्रित होने वाले आँकड़े सांख्यिकीय, नैदानिक या प्रयोगात्मक हो सकते हैं ।

(iii) ग्राफ कभी रेखाओं के रूप में, कभी वक्रों (Curves) के रूप में और कभी आकृतियोंक के रूप में हो सकता है।

(iv) ग्राफ के इन तीनों रूप अर्थात् रेखा, वक्र तथा आकार सम्बद्ध चरों के बीच सम्बन्ध को प्रतिबिम्ब करते हैं ।

ग्राफ के लाभ (Advantages of Graph or Graphic Represenatation)

(i) ग्राफ द्वारा बारंबारता वितरण (Frequency distribution) को सहज रूप से समझना संभव होता है ।

(ii) दो अथवा अधिक चरों (Variales) के बीच सम्बन्धों को समझने में सुविधा होती है ।

(iii) ग्राफ के माध्यम से आँकड़ों या प्रदत्त (data) के स्वरूप को समझने में आसानी होती है ।

(iv) ग्राफ के माध्यम से किसी आश्रित चर (dependent variable) पर स्वतंत्र चर (Independent variable) का प्रभाव (Effect) का प्रदर्शित करने में सुविधा होती है। इसके अतिरिक्त दो या अधिक समूहों का अव्यवस्थाओं (Conditions) का तुलनात्मक अध्ययन ग्राफ के माध्यम से किया जाता है ।

(v) ग्राफ के माध्यम से माध्यिका (Mdn) बहुलक (Mo) शततमक आदि सांख्यिकीय मापों की जानकारी हासिल की जा सकती है।

ग्राफ की सीमाएँ (Limitations)

ग्राफ के कई लाभों का उल्लेख ऊपर किया गया है फिर भी इसकी अपनी सीमाएँ हैं:–

(I) ग्राफ बनाने के कुछ निश्चित नियम होते हैं। इन नियमों की जानकारी नहीं रखने वाले लोग सही रूप से ग्राफ बनाने में सक्षम नहीं होते हैं

(ii) ग्राफ के कई प्रकार या रूप होते हैं जो समस्या के स्वरूप में अनुकूल–व्यवहार किए जाते हैं। अतः किस परिस्थिति में किस प्रकार के ग्राफ का उपयोग किया जाए, यह निर्धारित करना बहुत कठिन होता है ।

(iii) ग्राफ में आंकिक शुद्धता पूर्णरूप से संभव नहीं हो पाती है।

(iv) एक ही आधार पर दो चरों से सम्बद्ध बनाए गए दो अलग–अलग ग्राफ के स्वरूप में अस्थिरता के कारण भ्रामक प्रभाव देखे जाते हैं।

ग्राफ के प्रकार तथा ग्राफीय विधियाँ

(Types of Graph and Graphic Methods)

(1) बारंबारता – बहुभुज (Frequency Polygon)

(2) आयत–चित्र ;Histogram)

पोलिगन (Polygon)

(1) बारंबारता–बहुभुज (Frequency Polygon)

बारंबारता – वितरण प्रस्तुत करने की एक सरल विधि बारंबारता – बहुभुज है। बहुभुज का अर्थ है अनेक कोणों वाला चित्र' । यह टेढ़ा–मेढ़ा होता है; क्योंकि बारंबारता–वितरण जिस तरह का होता है, उसी तरह का वक्र (Curve) खींचा जाता है। इसमें दो रेखाएँ (Lines) होती है– पड़ी रेखा (Horizontal Line) तथा

खड़ी रेखा (Vertical Line) पड़ी रेखा को ऐबसिसा (Abscissa) तथा खड़ी रेखा को ऑर्डिनेट कहते हें इसी प्रकार ऐबसिसा को X- एक्सिस (X-Axis) तथा ऑर्डिनेट को Y- एक्सीस (t- axis) कहते हैं। दोनो रेखाएँ अर्थात् X तथा Y रेखाएँ जिस बिन्दु पर आपस में मिलती है, उस बिन्दु को O (ओ) (Origin) कहते हैं।

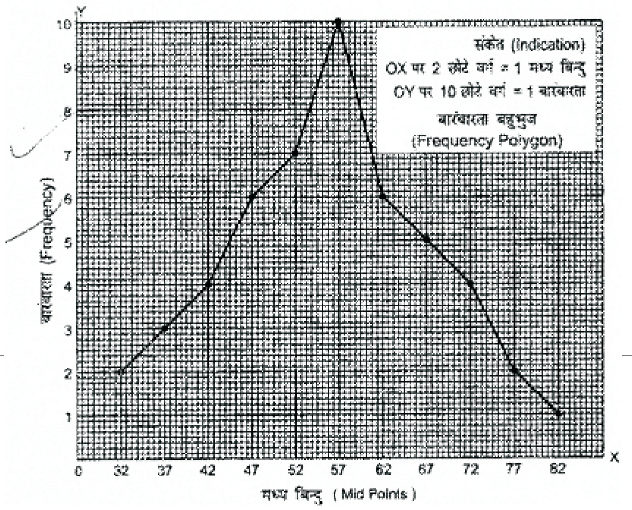

स्तम्भा आकृति / आयत चित्र (Histogram)

आयत–चित्र या हिस्टोग्राम एक ग्राफीय विधि है, जिसके द्वारा बारंबारता– वितरण को दिखलाया जाता है। इसके द्वारा प्रत्येक वर्गान्तर (Class Interval) की बारंबारता (Frequency) को उस वर्गान्तर के ऊपर एक आयत ;त्मबजंदहसमद्ध बनाकर दिखलाया जाता है। इसी कारण इसे आयत–चित्र कहते हैं । चैपलिन (Chaplin, 1975) के शब्दों में "हिस्टोग्राम बारंबारता– वितरण का सह ग्राफीय प्रकार है, जिसमें प्रत्येक वर्ग की बारंबारता का प्रतिनिधित्व एक दण्ड आरेख द्वारा होता है, जिसकी उंचाई उस वर्ग की बारंबारता के समानुपाती होती है ।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि आयत–चित्र तथा बारंबारता बहुभुज (Frequency Polygon) के बीच कुछ समानताएँ तथा कुछ भिन्नताऐं है। समानता यह है कि दोनां ग्राफीय विधि है, जिनके द्वारा बारंबारता – वितरण को दिखलाया जाता है। दूसरी समानता यह है कि दोनों को X- ऐक्सिस पर मध्यबिन्दु तथा Y- ऐक्सिस पर बारंबारता (f) लिखे जाते हैं। लेकिन, दोनों में पहला अन्तर यह है कि बारंबारता–बहुभुज में बारंबारताओं को वर्गान्तर के मध्य बिन्दु पर दिखलाया जाता है जबकि आयचित्र (हिस्टोग्राम) में बारंबारताओं को पूरे वर्गान्तर के रूप में दिखलाया जाता है। दूसरा अन्तर यह हे कि आयत चित्र में प्रत्येक वर्गान्तर की बारंबारता आयत के रूप में होती है, जिसका आधार उस वर्गान्तर का आकार (Size) होता है और और जिसकी उंचाई उस वर्गान्तर की बारंबारता के समानुपाती होती है। लेकिन यह विशेषता बारंबारता बहुभुज में नहीं पायी जाती है। तीसरा अन्तर यह है कि उपयोगिता की दृष्टि बारंबारता–बहुभुज की अपेक्षा आयत–चित्र (हिस्टोग्राम) अधिक लाभदायक है, क्योंकि इसके आधार पर बारंबारता–वितरण का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता है। लेकिन दो या अधिक बारंबारता–वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन केवल बारंबारता बहुभुज से ही संभव है, हिस्टोग्राम से नहीं। कारण, भिन्न–भिन्न वितरणों के बहुभुज एक ही ग्राफ पर बनाए जा सकते हैं, किन्तु हिस्टोग्राम में यह संभव नहीं है।

उदाहरण बारंबारता वितरण से बनाए गए निम्नलिखित हिस्टोग्राम पर ध्यान देने से उपर्युक्त बातें स्पष्ट हो जाती है।

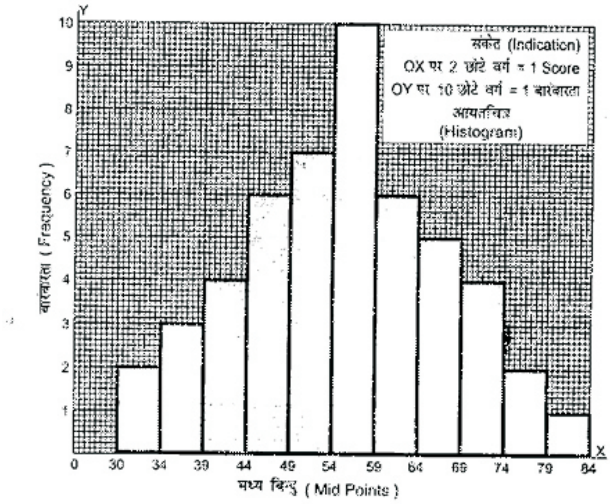

हिस्टोग्राम बनाने का तरीका वही हे जो बारंबारता–बहुभुज बनाने का है यहाँ भी वहीं सब चरण (Steps) शामिल होते हैं, जिनका उल्लेख बहुभुज बनाते समय पृष्ठ 53–56 पर किया जा चुका है। अतः उन चरणों को पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि यहाँ बिन्दुओं को इस तरह मिलाया जाए कि प्रत्येक वर्गान्तर की बारंबारता आयत के रूप में हो जाए और उस आयत की उंचाई तथा उस वर्गान्तर की बारंबारता समानुपातिक हो जाए ।

प्रमुख पद– प्रेक्षण , नैदानिक, साक्षात्कार, केस अध्ययन, निदानात्मक, अन्तदर्शन,/ अर्न्तनिरीक्षण, केन्द्रीय प्रवृति, माध्य, माध्यिका, बहुलांक, आवृति वितरण, बारम्बारता

महत्वपूर्ण बिन्दु

- प्रस्तुत इकाई में मनोविज्ञान की विधियों व केन्द्रीय प्रवृति के माप का अध्ययन किया गया है
- निरीक्षण विधि को प्रेक्षण विधि भी कहा जात है । इस विधि में अध्ययनकर्ता प्राणी या जीव के व्यवहारों को निश्पक्ष भाव से प्रेक्षण करता है ।
- केस अध्ययन विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिको द्वारा व्यक्तियों के रोगात्मक लक्षणों की पहचान करने तथा उसके कारणों को पता लगाने में काफी किया जाता है ।
- सामान्यतः दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी विशेष उद्धेश्य से

आमने – सामने की गयी बातचीत को साक्षात्कार कहा जाता है

- सर्वे विधि, प्रयोगात्मक विधि, अन्तदर्यान विधि, मनोविज्ञान की प्रमुख विधियॉ है
- केन्द्रीय प्रवृति के माप–माध्य, मध्यांक तथा बहुलांक है ।
- किसी घटना के घटने की संख्या को बारम्बारता कहते हैं।
- प्रस्तुत अध्याय में आवृति वितरण, रेखीय प्रदर्शन, ग्राफीय चित्रण, बहुभुज तथा स्तंभाकृति को समझाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न

1. बारंबारता का अर्थ है :

(क) प्राप्तांक (Scores) (ख) प्राप्तांक के घटित होने की संख्या

(ग) प्राप्तांक का गुण (घ) इनमें से कोई नहीं

2 . निरपेक्ष बारंबारता (absolute frequency distribution) के लिए निम्नलिखित विधियों में कौन उपयुक्त नहीं है ?

(क) अपवर्जक विधि (Exclusive Method)

(ख) समावेषित विधि (Inclusive Method)

(ग) यथार्थ विधि (Exact Method)

(घ) इनमें से कोई नहीं

3. निम्नलिखित में से कौन प्रसार (range) का सूत्र (formula) है ?

(क) (H-L) + 1 (ख) (H + L) – 1

(ग) (H-L) (घ) इनमें से कोई नहीं

4. वर्गान्तर (Class-interval) के आकार (size) का प्रतीक (Symbol) है।

(क) Y (ख) x

(ग) i (घ) p

5. निम्नलिखित में से कौन ग्राफीय विधि है ?

(क) बारंबारता बहुभुज

(ख) आयत चित्रण (Histogram)

(ग) दण्ड आरेख (Bar Diagram)

(घ) उपर्युक्त सभी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. निरिक्षण विधि के प्रकार बताइये ।
2. उद्धेश्य के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार बताइये ।
3. केन्द्रीय प्रवृति के माप कौनसे हैं ?बताइये ।
4. समूहित आंकडों का माध्य निकालने का सूत्र बताइये ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :–

1. केन्द्रीय प्रवृति (Central Tendency) से क्या अभिप्राय है ?विभिन्न केन्द्रीय प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
2. मध्यमान की गणना के लिए कल्पित मध्यमान (Assumed Mean) लेने का क्या आधार है ?
3. अव्यवस्थित आंकडों (Ungrouped Data) में मध्यांक (Median) तथा बहुलांक (Mode) की गणना के सूत्रों की व्याख्या कीजिए ।
4. द्वि–मुखी (Bimodal) अंक वितरणों में बहुलांक (Mode) की गणना के लिए किस सूत्र का प्रयोग उपयुक्त रहता है ?और क्यों ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित आवृति वितरणों के मध्यमान (Mean) ज्ञात कीजिए

Class Interval	f
23-25	1
20-22	4
17-19	5
14-16	7
11-13	10
8-10	6
5.7	4
2-4	3
	N = 40

2 केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों में कौन–सा माप अपेक्षाकृत अधिक स्थायी (Stable) तथा विश्वसनीय (Reliable) रहता है ?और क्यो ?

3 गुणोत्तर मध्यमान (Geometric Mean) का उपयोग किन स्थितियों में उपयुक्त तथा अनुपयुक्त रहता है ?

4 हरात्मक मध्यमान (Harmonic Mean) का उपयोग किन स्थितियों में उपयुक्त रहता है ?इसके उपयोग की क्या परिसीमायें है ?

5 केन्द्रीय प्रवृत्ति के विभिन्न मापों (Measures) के गुण व दोशों (Merits and Demerits) पर प्रकाश डालिए तथा बताइये कि इनका उपयोग किन किन स्थितियों में अधिक उपुयक्त रहता है

उत्तर

1. (ख) 2 . (घ) 3 (क) 4 (ग) 5 (क)

इकाई–3

मानव व्यवहार के आधार

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानव व्यवहार व जैविकी में सम्बन्ध को समझ सकेंगे ।
- तंत्रिका कोशिका एवं तंत्रिका तंत्र की व्याख्या कर सकेंगे

विषय वस्तु

प्रस्तावना
मानव व्यवहार व जैविकी में सम्बन्ध
तंत्रिका कोशिका
तंत्रिका कोशिकाओं के प्रकार
तंत्रिका कोशिका की संरचना
तंत्रिका कोशिका के कार्य
तंत्रिका तंत्र
केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र
मस्तिष्क
मेरुरज्जु
परिधीय तंत्रिका तंत्र
कायिक तंत्रिका तंत्र
स्वायत्त तंत्रिका तंत्र
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

मनोविज्ञान मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के व्यवहार को उसकी शरीर में होने वाले विभिन्न जैविकीय परिवर्तनों अन्य क्रियाओं, मस्तिष्कीय कार्यों के सम्बन्ध में भी अध्ययन किया है। दैहिक मनोविज्ञान में प्राणी के व्यवहार के दैहिक निर्धारकों तथा उनके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम तंत्रिका कोशिका की संरचना एवं कार्य, तंत्रिका तंत्र के प्रकारों, मस्तिष्क की संरचना एवं कार्य आदि का अध्ययन करेंगे।

मानव व्यवहार व जैविकी में सम्बन्ध

मानव शरीर की मूलभूत इकाई कोशिका है। अनेक कोशिकाओं से उतक, उतक से अंग, अंग से अंग तंत्र विकसित होते है। यही अंग तंत्र शरीर का विशिष्ट कार्य करते है। उदाहरण के लिये पाचन तंत्र भोजन पचाने से सम्बन्धित कार्य करता है, परिसंचरण तंत्र शरीर में रक्त का परिसंचरण कार्य करता है। ऐसे कई अंग तंत्र शरीर में होते है। मानव व्यवहार के निर्धारण में तंत्रिका तंत्र की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। तंत्रिका तंत्र शरीर में संवेदनाओं को संवेदी अंगों से ग्रहण करने, संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाने, मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त सूचनाओं, निर्णयों को सम्बन्धित अंगों, पेशियों तक लाने का कार्य करता है।

तंत्रिका कोशिका

तंत्रिका तंत्र विशिष्ट प्रकार की कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। ये कोशिकाएं तंत्रिका कोशिका कहलाती है। यह कोशिका शरीर की अन्य कोशिकाओं से आकार, संरचना, कार्य में बिल्कुल भिन्न होती हैं। तंत्रिका कोशिका हमारे तंत्रिका तंत्र की मूलभूत एवं सबसे छोटी इकाई है। इन्हें न्यूरोन *(neuron)* भी कहा जाता हैं।

तंत्रिका कोशिकाएँ विशिष्ट कोशिकाएँ हैं, जो विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों को विद्युतीय आवेग में परिवर्तित करने का कार्य करती हैं। ये सूचना को विद्युत–रासायनिक संकेतों के रूप में ग्रहण करने, संवहन करने तथा अन्य कोशिकाओं तक भेजने का भी

कार्य करती है। ये कोशिकाएं ज्ञानेन्द्रियों; संवेदी अंगों से या अन्य तंत्रिका कोशिकाओं से सूचना प्राप्त करती हैं, उसे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्क और मेरुरज्जु) तक ले जाती हैं। फिर केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से पेशीय सूचना को पेशीय अंगों; मांसपेशियों तथा ग्रंथियों तक ले जाती हैं। इस प्रकार तंत्रिका कोशिकाएं शरीर के विभिन्न भागों को मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु से जोड़े रखती है तथा इनमें सूचनाओं का प्रवाह करने का कार्य करती है।

तंत्रिका कोशिकाओं के प्रकार

कार्य के आधार पर न्यूरोन के निम्नांकित तीन प्रकार हैं – संवदी तंत्रिकाएं, पेशीय तंत्रिकाएं एवं साहचर्य तंत्रिकाएं

1. संवेदी तंत्रिकाएं (sensory nerves): वे तंत्रिकाएं जो तंत्रिका आवेग को बाहरी संवेदनाओं को प्राप्त करने वाली ज्ञानेन्द्रियों से, इन ज्ञानेन्द्रियों में स्थित ग्राहक कोशिकाओं से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र अर्थात् मस्तिष्क एवं मेरूरज्जु तक पहुंचाती है, संवेदी तंत्रिकाएं कहलाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को देखता है तो उस वस्तु की सूचना को मस्तिष्क तक पहुंचाने का कार्य संवेदी तंत्रिकाएं करती है। इन्हें अभिवाही तंत्रिकाएं भी कहा जाता है।

2. पेशीय तंत्रिकाएं (motor nerves): वे तंत्रिकाएं जो मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु से प्राप्त सूचनाओं, निर्देशों को सम्बन्धित अंगों, प्रभावकों जैसे मांसपेशियों, ग्रन्थियों तक पहुंचाते है, पेशीय तंत्रिकाएं कहलाती है। जैसे वस्तु को देखने पर मस्तिष्क द्वारा उसे छूकर देखने का निर्णय पेशीय न्यूरोन द्वारा ही हाथ की मांसपेशियों तक पहुंचाया जाता है। इन्हें अपवाही तंत्रिकाएं भी कहा जाता है।

3. साहचर्य तंत्रिकाएं (association nerves): ये तंत्रिकाएं केवल मस्तिष्क एवं मेरूरज्जु में ही पाई जाती है। ये तंत्रिकाएं संवेदी एवं पेशीय तंत्रिकाओं में सम्बन्ध या साहचर्य स्थापित करने का कार्य करते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार की तंत्रिकाएं आपस में समन्वित होकर कार्य करती हैं जिससे कि व्यक्ति किसी उददीपक के प्रति अनुक्रिया कर पाता है।

तंत्रिका कोशिका की संरचना

मानव तंत्रिका तंत्र में 12 अरब तंत्रिका कोशिकाएँ पाई जाती हैं। आकृति, आकार, रासायनिक संरचना और प्रकार्य में एक दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं। इन विभिन्नताओं के बावजूद इनमें तीन मूलभूत घटक समान रूप से पाए जाते हैं। वे हैं काय, पार्श्वतंतु और अक्षतंतु।

काय (soma) या काय कोशिका तंत्रिका कोशिका का मुख्य भाग है। इसमें कोशिका में **केंद्रक** (nucleus) तथा अन्य संरचनाएँ पाई जाती हैं। तंत्रिका कोशिकाओं की आनुवंशिक सामग्री केद्रक में संचित होती है और यह कोशिका के पुनरुत्पादन एवं प्रोटीन संश्लेषण में सक्रिय होती है। इसमें न्यूरोन का जीवन निहित होता है एवं इसका एक कार्य तंत्रिका कोशिका को स्वस्थ एवं जीवित रखना होता है। यदि किसी कारण से काय नष्ट हो जाये तो तंत्रिका कोशिका कार्य करना बन्द कर देती है। काय का दूसरा कार्य शखिका द्वारा तंत्रिका आवेग के रूप में लाई गई सूचना को ग्रहण कर उसे आगे संचरित करना है।

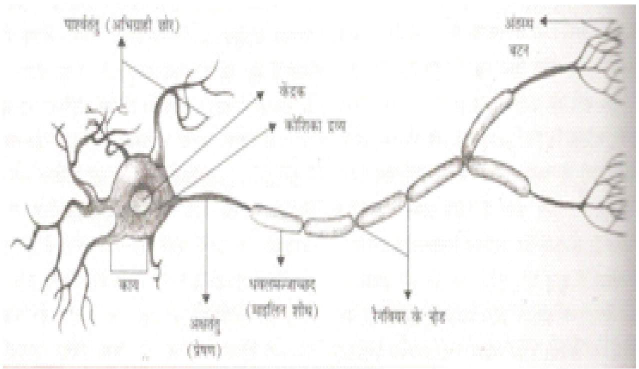

पार्श्वतंतु (dendrites) शाखाओं की तरह की विशिष्ट संरचना वाले होते हैं जो कि काय कोशिका से निकलते हैं। ये तंत्रिका कोशिका के ग्रहण करने वाले सिरे होते हैं। इन्हें शाखिकाएं भी कहा जाता है। इनका कार्य निकटवर्ती तंत्रिका कोशिका से या सीधे संवेदी अंगों से आने वाले तंत्रिका आवेगों को ग्रहण करना होता है। पार्श्वतंतु में विशिष्ट ग्राहक होते हैं जो किसी विद्युत–रासायनिक या जैव–रासायनिक संकेत के मिलते ही सक्रिय हो जाते हैं। ग्रहण किए हुए संकेत काय कोशिका द्वारा आगे भेजे जाते हैं।

अक्षतंतु (axon) : तंत्रिका कोशिका के उस भाग को एक्सॉन या अक्षतंतु कहा जाता है जो काय से लम्बवत निकला होता हैं। यह काय से सूचना प्राप्त कर इसे अन्य तंत्रिका कोशिकाओं और मांसपेशियों में भेजता है। अक्षतंतु अपनी लंबाई के साथ–साथ सूचना का संवहन करता है। इसकी लम्बाई मेरुरज्जु में कई फीट तक और मस्तिष्क में एक मिलीमीटर से कम हो सकती हैं। अंतिम सिरे पर अक्षतंतु छोटी–छोटी शाखाओं में बँट जाते हैं जिन्हें

अंतस्थ बटन (terminal buttons) कहते हैं। इसी भाग से एक तंत्रिका कोशिका दूसरी तंत्रिका कोशिकाओं, ग्रंथियों और मांसपेशियों में सूचना भेजी जाती है। तंत्रिका कोशिकाएँ सामान्यतः एक ही दिशा में सूचना का संवहन करती हैं, अर्थात पार्श्वतंतु से काय कोशिका फिर अक्षतंतु और वहाँ से अंतस्थ बटन तक। अर्थात् अन्य तंत्रिकाओं से सूचनाएं ग्रहण करने का कार्य पार्श्वतंतु का ही होता है।

अधिकतर तंत्रिकाओं में एक्सॉन एक आवरण से ढंकी होती है जिसे माइलिन शीथ *(myelin sheath)* कहा जाता है। यह आवरण सतत न होकर थोड़ी थोड़ी दूरी पर दबा हुआ होता है। इन दबे हुए स्थानों को रेनवियर बिन्दु *(nodes of Ranvier)* कहा जाता है। माइलिन शीथ एवं रेनवियर बिन्दु सूचनाओं के संचरण की गति को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

तंत्रिका कोशिका के कार्य

तंत्रिका कोशिका का कार्य शरीर में सूचनाओं का संचरण होता है। तंत्रिका तंत्र में सूचनाएँ तंत्रिका आवेग के रूप में प्रवाहित होती हैं। तंत्रिका आवेग से तात्पर्य एक अतिलघु अवधि के लिए एक्सॉन में प्रवाहित होने वाली वैद्युतीय सूचना है। इसे स्पाईक *(spike)* भी कहा जाता है। जब उद्दीपक उर्जा ग्राहकों तक पहुँचती है तब तंत्रिका समर्थता में विद्युत परिवर्तन होने लगते हैं। तंत्रिका कोशिका की सतह पर विद्युत समर्थता में आकस्मिक परिवर्तन को तंत्रिका समर्थता कहते हैं। जब उद्दीपक उर्जा अपेक्षाकृत कमजोर होती है, तब विद्युत परिवर्तन इतने कम होते हैं कि तंत्रिका आवेग उत्पन्न नहीं हो पाते हैं और हम उस उद्दीपक का अनुभव नही कर पाते हैं। यदि उद्दीपक उर्जा अपेक्षाकृत सशक्त होती है तो विद्युत आवेग उत्पन्न होते हैं और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की ओर संवाहित होते हैं। तंत्रिका आवेग की शक्ति उसको उत्पन्न करने वाले उद्दीपक की शक्ति पर निर्भर नहीं करती है। तंत्रिका तंतु पूर्ण या शून्य सिद्धांत (all or none law) पर काम करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे या तो पूरी तरह से अनुक्रिया करते हैं या बिल्कुल नहीं करते हैं। तंत्रिका आवेग की शक्ति उद्दीपक की तीव्रता पर निर्भर नहीं करती है।

तंत्रिका–कोश संधि (synapse) तंत्रिका तंत्र में कोई सूचना एक स्थान से दूसरे स्थान तक एकतंत्रिका आवेग के रूप में संचारित होती है। एक अकेली तंत्रिका कोशिका तंत्रिका आवेग को अपने अक्षतंतु की लंबाईभर की दूरी तक ले जा सकती है। जब किसी आवेग को शरीरके दूर के हिस्से में भेजना होता है तो इस प्रक्रिया में कई तंत्रिका कोशिकाएँ भाग लेती हैं। इस प्रक्रिया में एक तंत्रिका कोशिका बहुत विश्वसनीय तरीके से सूचना को अपनी निकटवर्ती तंत्रिका कोशिका में भेजती है। एकतंत्रिका कोशिका कभी भी दूसरी तंत्रिका कोशिका से जुड़ी नहीं होती, बल्कि वहाँ दोनों के बीच में खाली स्थान होता है। इस खाली स्थान को संधिस्थलीय खंड या सिनेप्स कहाजाता है। एक तंत्रिका कोशिका से तंत्रिका आवेग सिनेप्स से होते हुए विशेष प्रक्रिया द्वारा दूसरी तंत्रिका कोशिकातक पहुँचाया जाता है। अक्षतंतुओं में तंत्रिका आवेग का संवहनविद्युत–रासायनिक होता है, जबकि संधिस्थलीय संचरण की प्रकृति रासायनिक होती है। ये रासायनिक पदार्थतंत्रिका–संचारक कहलाते हैं।

तंत्रिका तंत्र

अन्य प्राणियों की तुलना में मानव तंत्रिका तंत्र सर्वाधिक जटिल एवं विकसित तंत्र है। यद्यपि तंत्रिका तंत्र समग्र रूप से कार्य करता है, तथापि स्थिति और कार्य के आधार पर कई हिस्सों में बाँट सकते हैं। स्थिति के आधार पर तंत्रिका तंत्र दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है : केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (central nervous system) तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र (peripheral nervous system)। तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो कपाल और रीढ़ की हड्डी के अंदर पाया जाता है उसे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र कहा जाता है। मस्तिष्क और मेरुरज्जु इस तंत्र के अवयव हैं। परिधीय तंत्रिका तंत्र को पुनः कायिक एवं स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में विभक्त किया जा सकता है। कायिक तंत्रिका तंत्र (somatic nervous system) ऐच्छिक प्रकार्यों से संबद्ध है, जबकि स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (autonomic nervous system) उन कार्यों को करता है जिन पर हमारा कोई ऐच्छिक नियंत्रण नहीं होता है।

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र सभी तंत्रिका क्रियाओं का केंद्र है। यह आने वाली समस्त संवेदी सूचनाओं को संगठित करता है, सभी प्रकार की संज्ञानात्मक क्रियाएँ करता है तथा मांसपेशियों और ग्रंथियों को प्रेरक आदेश देता है। ऐसी धारणा है कि मानव मस्तिष्क करोड़ों वर्षों में निम्नस्तर के पशुओं के मस्तिष्क से विकसित हुआ है और यह विकासात्मक प्रक्रिया अभी भी जारी है। एक वयस्क मस्तिष्क का भार लगभग 1.36 किलोग्राम होता है तथा इसमें लगभग 100 अरब तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं। मस्तिष्क संरचनाओं, क्षेत्रों में संगठित है जो विशिष्ट प्रकार्य करते हैं।

मस्तिष्क

मस्तिष्क *(brain)* सिर की खोपड़ी *(skull)* में स्थित होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए मस्तिष्क को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है: अग्रमस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क एवं पश्च मस्तिष्क

अग्रमस्तिष्क *(forebrain)* : इसमें थैलेमेस, हाइपोथैलेमस तथा वृहत मस्तिष्क आदि सम्मिलित होते है।

मध्यमस्तिष्क *(midbrain)* : यह अग्र और पश्चमस्तिष्क के बीच स्थित होता है।

पश्चमस्तिष्क *(hindbrain)*: इसमें मेडुला, सेतु, अनुमस्तिष्क आदि शमिल होते है।

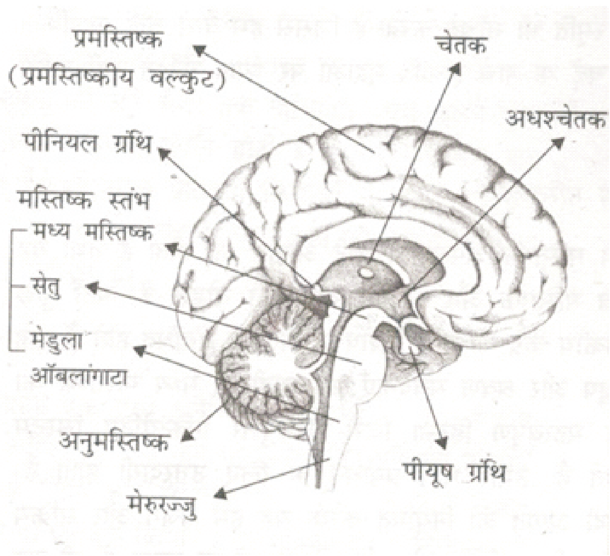

अग्रमस्तिष्क

अग्रमस्तिष्क को सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है क्योंकि यह सभी प्रकार की संज्ञानात्मक, संवेगात्मक और प्रेरक क्रियाकलापों को संपादित करता है। हम अब अग्रमस्तिष्क के मुख्य भागों की चर्चा करेंगे : अधश्चेतक, चेतक और प्रमस्तिष्क।

अधश्चेतक : इसे हाइपोथैलेमस *(hypothalamus)* भी कहा जाता है। मस्तिष्क के सबसे छोटे भागों में से अधश्चेतक एक है, किंतु यह व्यवहार में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सांवेगिक एवं अभिप्रेरणात्मक व्यवहारों में शामिल शारीरिक प्रक्रियाओं को यह नियमित करता है जैसे— भोजन करना, पानी पीना, सोना, तापमान नियमन, और कामोत्तेजना। यह शरीर के आंतरिक वातावरण यथा, हृदयगति, रक्तचाप, तापमान को नियंत्रित एवं नियमित करता है तथा विभिन्न अंतःस्त्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले स्त्रावों जिन्हें हार्मोन कहते हैं, को भी नियमित करता है।

चेतक : इसे थेलेमस *(thalamus)* भी कहा जाता है। चेतक हाइपोथैलेमस के ऊपरी हिस्से पर अंडाकार रूप में स्थित होता है। यह एक प्रसारण स्टेशन *(relay station)* की तरह है जो ज्ञानेन्द्रियों से आने वाले सभी संवेदी संकेतों को ग्रहण करके वल्कुट के उपयुक्त हिस्सों में भेजता है। वल्कुट *(cortex)* से निकलने वाले सभी बर्हिगत प्रेरक संकेतों को भी ग्रहण कर, शरीर के उपयुक्त भागों में भेजता है।

प्रमस्तिष्क *(cerebrum)*: यह प्रमस्तिष्कीय वल्कुट *(cerebral cortex)* के नाम से भी जाना जाता है। यह भाग सभी उच्चस्तरीय संज्ञानात्मक प्रकार्यों जैसे— अवधान, प्रत्यक्षण, अधिगम, स्मृति, भाषा, समस्या समाधान आदि में योगदान करता है। मानव मस्तिष्क के कुल परिमाण का दो तिहाई भाग प्रमस्तिष्क होता है। इसकी सघनता 1.5 मि.मी. से लेकर 4 मि.मी. तक होती है जो मस्तिष्क की पूरी सतह को ढक लेती है।

प्रमस्तिष्क दो बराबर अर्धभागों में विभक्त है जिन्हें प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध *(cerebral hemisphere)* कहते हैं। यद्यपि दोनों गोलार्ध देखने में एक जैसे लगते हैं, किंतु प्रकार्यात्मक रूप से एक गोलार्ध सामान्यतः दूसरे की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। उदाहरणार्थ, बायाँ गोलार्ध सामान्यतः भाषा संबंधी व्यवहारों को नियंत्रित करता है और दायाँ गोलार्ध सामान्यतः प्रतिमाएँ, देशिक संबंध, प्रारूप प्रत्यभिज्ञान जैसे विशिष्ट कार्यों को संभालता है। ये दोनों गोलार्ध तंतुओं के समूह से जुड़े होते हैं जिसे महासंयोजक पिंड या कार्पस कोलोसम *(corpus callosum)* कहा जाता है। यह दोनों गोलार्धों के बीच संदेश लाने और ले जाने का कार्य करता है।

मध्य मस्तिष्क

मध्य मस्तिष्क अपेक्षाकृत छोटे आकार का होता है तथा यह पश्च मस्तिष्क और अग्रमस्तिष्क को जोड़ता है। इसमें चाक्षुष और श्रवण संवेदनाएँ पाई जाती हैं। मध्य मस्तिष्क का एक महत्वपूर्ण हिस्सा जिसे रेटिक्युलर एक्टिवेटिंग सिस्टम कहते हैं, हमारे भाव अनुभूति के लिए उत्तरदायी होता है। संवेदी सूचनाओं को नियमित करके यह हमें सजग और सक्रिय बनाता है। पर्यावरण से प्राप्त सूचनाओं के चयन में भी यह हमारी सहायता करता है।

पश्चमस्तिष्क :

मेडुला ऑबलांगाटा : यह मस्तिष्क का सबसे निचला हिस्सा है जो मेरुरज्जु से सटा रहता है। यह मूलभूत जीवन सहायक गतिविधियों जैसे— श्वास लेना, हृदयगति, और रक्तचाप को नियमित करते हैं।

इसीलिए मेडुला मस्तिष्क का जीवनाधार केंद्र माना जाता है।

सेतु : इसे पोन्स (pons) भी कहा जाता है। एक ओर यह मेडुला से और दूसरी ओर मध्य मस्तिष्क से जुड़ा होता है। सेतु हमारे कानों द्वारा संचारित श्रवणात्मक संकेतों को ग्रहण करता है। ऐसा माना जाता है कि सेतु निद्रा रचनातंत्र से जुड़ा होता है, विशेषतः स्वप्ननिद्रा से। इसमें ऐसे केंद्रक होते हैं जो चेहरे की अभिव्यक्ति और श्वास–प्रश्वास संचालन को भी प्रभावित करते हैं।

अनुमस्तिष्क : इसे सेरीबेलम (cerebellum) भी कहा जाता है। पश्च मस्तिष्क का यह सबसे विकसित हिस्सा अपनी झुर्रीदार सतह से आसानी से पहचाना जा सकता है। यह शारीरिक मुद्रा एवं संतुलन को बनाए रखने और नियंत्रित करने का कार्य करता है। मस्तिष्क के इस भाग के ही कारण हम केसे चलें, साइकिल पर चढ़ें या नाचें इत्यादि मुद्राओं पर ध्यान केंद्रित नहीं करना पड़ता है।

मेरुरज्जु

मेरुरज्जु (spinal chord) एक लंबी रस्सी की तरह का तंत्रिका तंतुओं का एक समूह है जो मेरुदंड के अंदर पूरी लंबाई तक जाता है। इसका एक हिस्सा मस्तिष्क के मेडुला से जुड़ा होता है और दूसरा हिस्सा एक पूँछ के अंतिम हिस्से की भाँति मुक्त रहता है। पूरी लंबाई तक इसकी संरचना एक जैसी है। मेरुरज्जु का मध्य भाग तितली के आकार के समान होता है। यह भाग धूसर द्रव्य का बना होता है। धूसर द्रव्य के चारों ओर मेरुरज्जु का श्वेत द्रव्य होता है। मेरुरज्जु के दो मुख्य प्रकार्य हैं। पहला, शरीर के निचले भागों से आने वाले संवेदी आवेगों को मस्तिष्क तक पहुँचाना और मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले पेशीय आवेगों को सारे शरीर तक पहुँचाना। दूसरा, इसके द्वारा कुछ प्रतिवर्ती क्रियाएँ का भी नियन्त्रण होता है।

प्रतिवर्ती क्रिया

प्रतिवर्ती क्रिया (reflex action) एक ऐसी अनैच्छिक क्रिया है जो एक विशेष प्रकार के उद्दीपन के तुरंत बाद घटित होती है। प्रतिवर्ती क्रियाएँ मस्तिष्क के चेतन रूप से लिए गए निर्णय के बिना स्वतः घटित होती उदाहरणार्थ, आँख झपकने की प्रतिवर्ती क्रिया। जब कभी कोई वस्तु हमारी आँखों के समीप अचानक आती है तो हमारी पलकें झपकती हैं। हालाँकि हमारा तंत्रिका तंत्र कई प्रकार की प्रतिवर्ती क्रियाएँ करता है जैसे पुतलियों का फैलना–सिकुड़ना, बहुत गरम या बहुत ठंडी चीज से हाथ हटाना, साँस लेना आदि। इनमें से बहुत सारी प्रतिवर्ती क्रियाएँ मेरुरज्जु के द्वारा की जाती हैं जिनमें मस्तिष्क सम्मिलित नहीं होता है।

परिधीय तंत्रिका तंत्र

परिधीय तंत्रिका तंत्र में वे समस्त तंत्रिका कोशिकाएँ तथा तंत्रिका तंतु पाए जाते हैं, जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को पूरे शरीर से जोड़ते हैं। परिधीय तंत्रिका तंत्र को कायिक तंत्रिका तंत्र तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में विभाजित किया गया है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को पुनः अनुकंपी तथा परानुकंपी तंत्र में बाँटा गया है। परिधीय तंत्रिका तंत्र, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र एवं शरीर के अन्य अंगों को जोड़ने का कार्य करता है। यह सूचना संवेदी ग्राहकों ;आँख, कान, त्वचा, आदि से ग्रहण कर मस्तिष्क तक भेजता है और पुनः मस्तिष्क के पेशीय आदेशों को सम्बन्धित अंगों की मांसपेशियों और ग्रंथियों तक वापस पहुँचाता है।

कायिक तंत्रिका तंत्र

इस तंत्र में दो प्रकार की तंत्रिकाएँ होती हैं, जिन्हें कपालीय तंत्रिका और मेरु तंत्रिका कहा जाता है। कपालीय तंत्रिकाओं (cranial nerves) के 12 जोड़े होते हैं, जो मस्तिष्क के विभिन्न स्थानों से निकलते या उस तक पहुँचते हैं। मेरु तंत्रिकाओं (spinal nerves) के 31 जोड़े होते हैं जो मेरुरज्जु से निकलते हैं। मेरु तंत्रिका के दो कार्य होते हैं। मेरु तंत्रिका के संवेदी तंतु शरीर के सभी भागों (सिर के हिस्से को छोड़कर) से संवेदी सूचनाएँ एकत्रित करते हैं और मेरुरज्जु तक भेजते हैं जहाँ से फिर संवेदी सूचनाएँ मस्तिष्क तक भेजी जाती हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क से आने वाले पेशीय आवेग मेरु तंत्रिकाओं के पेशीय तंतुओं द्वारा मांसपेशियों को भेजे जाते हैं।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

यह तंत्र उन क्रियाओं का संचालन करता है जो सामान्यतः हमारे प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं होती। यह ऐसे आंतरिक प्रकार्यों जैसे– साँस लेना, रक्त संचार, लार स्त्राव, उदर संकुचन और सांवेगिक प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करता है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की ये क्रियाएँ मस्तिष्क के विभिन्न भागों के नियंत्रण में होती हैं। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के दो खंड हैं : अनुकंपी खंड और परानुकंपी खंड। यद्यपि दोनों के प्रभाव एक दूसरे के विपरीत होते हैं, फिर भी दोनों संतुलन की स्थिति बनाए रखने के लिए मिलकर कार्य करते हैं। **अनुकंपी खंड** आपातकालीन स्थितियों को संभालने का कार्य करता है जब प्रबल और त्वरित कार्यवाही होनी चाहिए, जैसे संघर्ष या पलायन की स्थिति में। इस आपातकाल में पाचन क्रिया रुक जाती है, रक्त आंतरिक अंगों से मांसपेशियों की ओर दौड़ने लगता है, तथा श्वास गति, ऑक्सीजन आपूर्ति, हृदयगति और रक्त शर्करा का स्तर बढ़ जाता है।

परानुकंपी खंड मुख्यतः ऊर्जा के संरक्षण से संबद्ध है। यह शरीर के आंतरिक तंत्र के नियमित कार्यों का संचालन करता है। जब आपातकालीन स्थिति समाप्त हो जाती है तब परानुकंपी खंड कार्यभार संभाल लेता है। यह अनुकंपी तंत्र की सक्रियता को कम करता है और व्यक्ति को शांत कर उसे सामान्य स्थिति में लाता है। परिणामस्वरूप सभी शारीरिक क्रियाएँ जैसे– हृदयगति, श्वास गति, और रक्त संचार सामान्य स्तर पर वापस आ जाते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि तंत्रिका तंत्र के सभी अवयव मानव व्यवहार के निर्धारण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

प्रमुख पद

तंत्रिका कोशिका , पार्श्वतंतु, अक्षतंतु, केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र, मेरूरज्जु, प्रतिवर्ति क्रिया, परिधीय तंत्रिका तंत्र, कायिक तंत्रिका तंत्र , स्वायत्त तंत्रिका तंत्र।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- प्रस्तुत अध्याय में मानव व्यवहार व जैविकी सम्बन्ध का वर्ण किया गया ।
- मानव शरीर की मूलभूत इकाई कोशिका है । अनेक कोशिकाओं से ऊतक, ऊतक से अंग, अंग से अंग तंत्र विकसित होते हैं । यही अंग तंत्र का शरीर का विशिष्ट कार्य करते हैं ।
- तंत्रिका कोशिका हमारे तंत्रिका तंत्र की मूलभूत एवं सबसे छोटी इकाई है। इन्हें न्यूरोन भी कहा जाता है।
- कार्य के आधार पर तंत्रिका कोशिकाओं के तीन प्रकार हैं – संवेदी तंत्रिकाएॅ, पेशिय तंत्रिकाएॅ एवं साहचर्य तंत्रिकाएॅ ।
- तंत्रिका कोशिका का कार्य शरीर में सूचनाओं का संचरण है ।
- तंत्रिका तंत्र के मुख्य दो प्रकार हैं – केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र ।
- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के अंर्तगत सुशुम्ना तथा मस्तिष्क आते हैं ।
- परिधीय तंत्रिका तंत्र के मुख्य दो प्रकार हैं – नायिक तंत्रिका तंत्र तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र ।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. तंत्रिका कोशिका के कौनसे भाग में केन्द्रक होता है?

   अ. एक्सॉन　　ब. काय

   स. माइलिन शीथ　　द. रेनवियर बिन्दु

2. तंत्रिका कोशिका का कौनसा भाग तंत्रिका आवेग की गति को बढ़ाने में सहायक है?

   अ. माइलिन शीथ　　ब. पार्श्वतंतु

   स. थेलेमस　　द. सेतु

3. भोजन करना, पानी पीना, सोना, तापमान नियमन, और कामोत्तेजना आदि क्रियाओं का नियंत्रण मस्तिष्क के किस भाग द्वारा किया जाता है?

   अ. सेतु　　ब. अनुमस्तिष्क

   स. हाइपोथेलेमस　　द. थेलेमस

4. मनुष्य के मस्तिष्क में कपालीय तंत्रिकाओं के कितने जोड़े होते है?

   अ. 6　　ब. 10

   स. 12　　द. 31

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. तंत्रिका कोशिका के तीन मुख्य भाग कौनसे हैं ?
2. तंत्रिका कोशिकाओं के प्रकारों के नाम लिखें
3. कायिक तंत्रिका तंत्र का क्या अर्थ है ?
4. प्रतिवर्ती क्रिया का एक उदाहरण दीजिए ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. तंत्रिका कोशिका के किस भाग से अन्य तंत्रिका कोशिकाओं से तंत्रिका आवेग ग्रहण किया जाता है?
2. तंत्रिका कोशिकाओं के प्रकारों के नाम लिखें।
3. संवेदी तंत्रिकाओं का क्या कार्य हैं?
4. तंत्रिका तंत्र के कितने प्रकार है? नाम लिखें।
5. कायिक तंत्रिका तंत्र का क्या कार्य है?
6. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का क्या कार्य है?

दीर्घत्तरात्मक प्रश्न

1. तंत्रिका कोशिका की संरचना का सचित्र वर्णन करें।
2. तंत्रिका कोशिकाओं के प्रकारों व कार्य का वर्णन करें।
3. मस्तिष्क की संरचना का सचित्र वर्णन करें।
4. मेरूरज्जु की संरचना व कार्य का वर्णन करें।
5. कायिक व स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में उदाहरण देते हुए अन्तर समझाईये।

उत्तर :–

1. ब　　2. अ　　3. स　　4. स

इकाई–4
मानव विकास

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- विकास का अर्थ, परिभाषा तथा प्रकृति को समझ सकेंगे ।
- मानव विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- मानव विकास पर वंशानुक्रम तथा वातावरण संबंध की व्याख्या कर सकेगें ।
- मानव विकास के मनोविश्लेषणात्मक तथा मनोसामाजिक सिद्धान्त को समझ सकेंगे ।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
विकास का अर्थ, परिभाषा तथा प्रकृति
मानव विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
वंशानुक्रम प्रकिया तथा मानव विकास पर वंशानुक्रम प्रभाव
वंशानुक्रम तथा वातावरण
मानव विकास के मनोविश्लेषणात्मक तथा मनोसामाजिक सिद्धान्त
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरात्मक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है जिसके परिणाम स्वरूप सजीव और निर्जीव सभी वस्तुओं में समय के साथ परिवर्तन होता है । जीवों में होने वाले परिवर्तनों में विशेष यह हे कि वातावरण के साथ साथ उसका स्वयं का भी योगदान इस परिवर्तन प्रक्रिया में होता है । केवल भौतिक वातावरण ही जीवों में होने वाले परिवर्तन का एक मात्र साधन नहीं है । मानव में होने वाले परिवर्तनों में महत्वपूर्ण यह है कि ये उत्तरोत्तर उसे विकसीत करते हैं और उसकी यह अवस्था उसे पूर्व अवस्था से और अधिक क्षमतावान बनाती है । मानव का जीवन पूर्णतया दूसरों पर निर्भर जीवन से प्रारम्भ होकर आत्मनिर्भरता को प्राप्त करता हुआ अन्य व्यक्तियों को विकास में योगदान देने में सक्षम हो जाता है । मानव में परिवर्तनों की यह श्रृंखला ही मानव का विकास है । मानव में होने वाले इन विकासात्मक परिवर्तनों का उद्धेश्य उसे उस विशेष वातावरण में अनूकूलित और समायोजित हो सकने में सक्षम बनाना है , जिसमें वह रहता है । इस उद्धेश्य की प्राप्ति के लिए उसे स्वयं को पहचानना व जानना आवश्यक है ।

परिभाषाऐं (Definition)

गैसल (Gessel) :– " विकास अभिवृद्धि के सम्प्रत्यय की अपेक्षा अधिक व्यापक है । इसका अवलोकन, मूल्यांकन एवं कुछ सीमा तक तीन रूपों – शरीर–रचनात्मक, शरीर–क्रिया विज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक में मापन किया जा सकता है । व्यवहारात्मक संकेत ही विकास के सर्वाधिक व्यापक परिचायक होते है ।"

ई.बी.हरलॉक (E.B. Hurlock) :– " विकास अपेक्षाकृत अभिवृद्धि होने तक सीमित नहीं होता अपितु ऐसे प्रगतिशील परिवर्तनों में निहित है जो परिपक्वता के लक्ष्य की और व्यवस्थित रूप से उन्मूख होते हैं ।"

हर्बट सोरेन्सन (H. sorenson) :– "विकास का अभिप्राय परिपक्वता तथा कार्यपरक सुधार की वह प्रक्रिया है जो संरचना एवं स्वरूप में हो रहे गुणात्मक तथा परिणात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप होती है । विकास, अभिवृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक परिवर्तन का विशिष्ट द्योतक है।"

ईरा गोर्डन (Era Gorden) :– " व्यक्ति का विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ जन्म के समय से ही हो जाता है और वह तक तक चलती रहती है, जब तक व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लेता । दूसरे शब्दों में विकास व्यक्ति के अधिकतम संगठन और

एकीकरण की पूर्णता की प्रक्रिया है ।''

विकास का अर्थ (Meaning of Development)

विकास का अर्थ '' अधिक प्रगति (उन्नति), अधिक प्रकटीकरण (Unfoldment) और अधिक परिपक्वता की ओर जाना है '' यह समय के साथ उक्त परिवर्तनों को इंगित करता है जो केवल मात्रात्मक मापन न होकर अपने को निश्चित व्यवहार पैटर्न (Patterns) प्रतिमान या प्रतिरूप के रूप में व्यक्त करता है, जैसे उदाहरण के तौर पर एक बालक का सामाजिक विकास किसी निश्चित सै.मी., इंच या पौंड में आकलित नहीं किया जा सकता अपितु उसकी दूसरों के प्रति की गई प्रतिक्रिया से ही देखा जा सकता है ।

वृद्धि और विकास को अधिकांशतया मनोवैज्ञानिक एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त करते हैं क्योकि दोनों ही प्रक्रियाऐं एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित और अन्तनिर्भर हैं । किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में इन दोनों के योगदान को विभेदीकृत करना अत्यन्त कठिन है । कुछ मनोवैज्ञानिक वृद्धि को परिभाषित करते समय इसे शारीरिक पक्ष से जैसे ऊँचाई और वजन का बढ़ना बताते हुए इसक केवल मात्रात्मक परिवर्तन ही मानते हैं । अमरीकी बाल मनोवैज्ञानिक अर्नाल्ड गैसल लिखते है कि वृद्धि वातावरण की वनस्पति जीव स्वयं का कार्य है । पर्यावरण विकास के लिए वातावरण प्रस्तुत करता है, परन्तु विकास का यह प्रकटीकरण प्राथमिक रूप में व्यक्ति की आन्तरिक कार्य प्रणाली द्वारा ही संगठित किया जाता है और यह विकास की एक अन्तर्भूत (Intrinsic) कार्यिकी के द्वारा होता है । विकास व्यक्ति की क्षमताओं के प्रकट होने और विस्तार होने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो उसे और अधिक कार्य करने में मदद करती है जैसे खेलों में अनिश्चित कार्यवाही से उसमें प्रवीणता लाना गामक योग्यता का विकास होना है ।

वृद्धि सामान्यतया शारीरिक विकास जैसे शरीर के भागें का बढ़ना और वजनी होना है जिसका मापन व अवलोकन किया जा सकता है । कुछ मनोवैज्ञानिक वृद्धि और विकास को निम्नलिखित रूप में विभेदीकृत करते हैं –

1. वृद्धि व्यक्ति के किसी विशिष्ठ पक्ष या शारीरिक पक्ष में परिवर्तन है तो विकास व्यक्ति के सम्पूण्र संगठन पक्षों में परिवर्तन है अतः विकास वृद्धि से अधिक व्यापक है ।
2. वृद्धि व्यक्ति या जीव में जीवन काल के एक निश्चित समय तक ही होती है परन्तु विकास जीवन पर्यन्त चलने वाली क्रमिक और प्रगतिशील श्रृंखला है । व्यक्ति का विकास निरन्तर होता रहता है ।
3. विकास सार्थक वृद्धि के अभाव में भी संभव है ।
4. वृद्धि व्यक्ति के संरचनात्मक पक्ष व विकास उसके कार्यात्मक पक्ष को दर्शाता है । कार्य के बिना संरचना का महत्व गौण है ।

संक्षेप में विकास को गुणात्मक परिवर्तन कह सकते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को समर्थता या विस्तार देता है । हरलॉक के शब्दों में कह सकते हैं – '' विकास, अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है । इसके बजाए, इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है । विकास के फलस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताऐं और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती है ।''

विकास की प्रकृति (Nature of Development)

विकास की प्रक्रिया की विस्तृत जानकारी के लिए विकास की प्रकृति का सामान्यीकरण करना आवश्यक है । विकास की प्रकृति को विकास के सिद्धान्तों द्वारा समझा जा सकता है । गैरिसन तथा अन्य (Garrison and other) के अनुसार –'' जब बालक, विकास की एक अवस्था से दूसरी में प्रवेश करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते है।, अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि ये परिवर्तन निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार होते हैं । इन्हीं को विकास के सिद्धान्त कहा जाता है ।'' विकास के मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित है :–

(1) विकास एक सतत प्रकिया है (Development is a continous Process) निरन्तर चलती रहती है । विकास की यह गति कभी तीव्र ओर कभी धीमी होती है । उदाहरणार्थ – प्रथम तीन वर्षो में बालक के विकास की प्रक्रिया बहुत तीव्र होती है और उसके पश्चात् धीमी पड़ जाती है,परन्तु विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती अवश्य रहती है । व्यक्ति में कोई आकस्मिक परिर्वतन नहीं होता है । स्किनर (Skinner) के शब्दों में – ''विकास प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त केवल इस तथ्य पर बल देता है कि व्यक्ति में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता है ।''

(2) विकास व्यक्तिगत प्रकिया है (Development is individualized Process) – सभी व्यक्तियों का विकास उनके अपने तरीके से होता है । प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास की गति भिन्न होती है । यदि हम छः वर्ष के बालकों को देखें तो उनके शारीरिक, सामाजिक, सांवेगिक आदि विकासीय पक्षों में बहुत भिन्नता होती है । डगलस एवं हॉलेण्ड (Douglas and Holland) ने इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है – विभन्न व्यक्तियों के विकास की गति में भिन्नता होती है और यह विभिन्नता विकास के सम्पूर्ण काल में यथावत बनी रहती है ।

(3) विकास एक सुव्यवस्थित कम में होता है (Development Followed an orderly Sequence)

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के विकास की गति में भिन्नता होती है परन्तु सभी व्यक्तियों का विकास एक सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध तरीके से होता है । मनोवैज्ञानिकों ने विकास की कुछ निर्धारित प्रवृतियॉं बतलाई जिसमें मुख्य प्रवृतियां निम्नलिखित हैं –

1. आपादीय (सिर से पांव) (Cephaulo Caudal) – विकास शीर्ष भाग से आरम्भ होकर पादीय (पेर) की ओर जाता है । उदाहरणार्थ भ्रूण (Fetus)का सिर भाग उसके पैरों से पूर्व विकसित होता है । जन्म के पश्चात भी सिर भाग शरीर के नीचे के भाग से पहले विकास करता है ।

2. भीतर से बाहर की ओर (Proximodigital) – विकास शरीर के केन्द्र भाग से शुरू होकर बाहरी (परिधि) भागों की ओर बढ़ता है । उदाहरणार्थ शिशु पहले पूरे कॅधे और फिर कोहनी तत्पश्चात कलाई और अंगुलियों का प्रयोग किसी वस्तु को पकड़ने के लिए करता है इस प्रकार शिशु पहले सम्पूर्ण शरीर तथा बाद में किसी विशेष भाग जैसे – अंगुलियों का काम में लेता है ।

3. गामक (Locomotion) – विश्व के सभी संस्कृतियों में सभी बालको में गति का विकास भी एक क्रमबद्धता में ही होता है । गति के क्रम बालक पहले बैठना, फिर घुटने चलना तथा बाद में चलना शुरू करता है हांलाकि प्रत्येक बालक में इन कार्यो को करने में लगने वाले समय में भिन्नता हो सकती है पर क्रम हमेशा यही रहेगा । इसी प्रकार बालक का भाषा सम्बन्धी विकास भी एक निश्चित क्रम में होता है ।

4. विकास अन्तक्रिया का परिणाम है (Development is a Product of Interaction) – विकास व्यक्ति की वंशानुक्रम (Hereditory) और उसके वातावरण (Environment) की निरन्तर अन्तक्रिया के परिणामस्वरूप होता है । व्यक्ति के विकास में न केवल आनुवंशिकी और न केवल वातावरण योगदान देता है, वरन यह दोनों की अन्तक्रिया के कारण होता है । इसकी पुष्टि स्किनर के इन शब्दों द्वारा होती है – "यह सिद्ध किया जा चुका है कि वंशानुक्रम उन सीमाओं को निश्चित करता है, जिनके आगे बालक का विकास नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार, यह भी प्रमाणित किया जा चुका है कि जीवन के प्रारभिक वर्षो में दूषित वातावरण , कुपोषण या गम्भीर रोग जन्मजात योग्यताओं को कुंठित या निर्बल बना सकते हैं ।"

5. विकास के विभिन्न पक्ष अर्न्तसम्बन्धित है (Different aspects of Development are Interrelated) – विकास के विभिन्न पक्ष अन्तसम्बन्धित एवं अन्तनिर्भर हैं । बालक का प्रारम्भिक सामाजिक व्यवहार उसके शारीरिक विकास से सम्बन्धित होता है । यदि बालक शारीरिक रूप से विकलांग है तो उसका सामाजिक व्यवहार भी इससे प्रभावित होता है । बालकों के गामक विकास का धनात्मक प्रभाव उसके मानसिक विकास पर भी पड़ता है । इस प्रकार विभिन्न प्रकार के विकास अर्न्तसम्बन्धित हैं और एक दुसरे के विकास में सहायक हैं । गैरिसन और अन्य (Garrison and other) का कथन है – "शरीर सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्ति के विभिन्न अंगों के विकास में सामंजस्य और परस्पर सम्बन्ध पर बल देता है ।

6. विकास एकीकृत रूप में होता है (Development is in Integrated form) – विकास की प्रक्रिया एकीकरण के सिद्धान्त का पालन करती है । इसके अनुसार बालक अपने संपूर्ण अंग को फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है इसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है । सामान्य से विशेष की ओर बदलते हुए विशेष प्रतिक्रियाओं तथा चेश्टाओं को इकट्ठे रूप में प्रयोग में लाना सीखता है । कुप्पुस्वामी ने लिखा है – "विकास में पूर्ण से अंगों की ओर एवं अंगों से पूर्ण की ओर गति निहित रहती है । विभिन्न अंगों का एकीकरण ही गतियों की सरलता को संभव बनाता है ।"

7. विकास संचयी होता है (Development is Cuulative) – विकास एक संचयी प्रक्रिया है । कोई परिवर्तन जो हमें दिखाई देता है वह कई परिवर्तनों का संचय है । बालक का बोला गया पहला शब्द और रखा गया पहला कदम पूर्व के निरन्तर विकास कार्यो की संचयी प्रगति है । प्रत्येक परिवर्तन उसके अपने पूव्र की वृद्धि और अनुभवों का संचय होता है ।

8. विकास सामान्य से विशिष्ठ की ओर अग्रसर होता है (Development Proceed from the general to the specific) – जन्म के समय बालक के लिए यह संसार घोर संभ्रमित होता है । शुरू में बालक का अविभेदीकृत व्यवहार अधिक विभेदीकृत, परिष्कृत व्यवहार और लक्ष्य निर्देशित व्यवहार के रूप में विकसित होने लगता है । विकास की सभी दिशाओं में विशिष्ट क्रियाओं से पहले उसके सामान्य रूप के दर्शन होते हैं । उदाहरण के लिए हाथों से कुछ पकड़ने से पहले बालक इधर उधर यूॅ ही हाथ मारने या फैलाने की चेष्टा करता है । बालक का भाषा विकास उसके जन्म के समय रोने से शुरू होता हुआ पहले सामान्य शब्दों से ही होता है । पहले वह सभी व्यक्तियों को मॉं कहता है और धीरे–धीरे लगातार भाषा की शब्दावलियों को सीखकर भाषा कौशल का विकास कर लेता है ।

9. विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है (Development is Predictable) – एक बालक के विकस की गति को ध्यान में रखकर उसके आगे बढ़ने की दिशा और स्वरूप के बारे में

भविष्यवाणी की जा सकती है । उदाहरण के लिए बालक के शारीरिक , सामाजिक और मानसिक विकास को देखकर यह बता सकते हैं कि उसका आगे का विकास किस प्रकार का होगा । बालक की इस समय की मानसिक योग्यताओं के ज्ञान के सहारे हम उसके आगे के मानसिक विकास के बारे में पूर्वानुमान लगा सकते हैं ।

10. बालक एवं बालिकाओं में विकास की दर में भिन्नता होती है (Rate of Development differs in male and female child) – बालक और बालिकाओं की वृद्धि और विकास की दर में भिन्नता होती है । बालिकाएं बालको की तुलना में जल्दी परिपक्व हो जाती है । पूर्व किशोरावस्था में बालिकाओं की लम्बाई व वजन बालकों की तुलना में अधिकर होता है परन्तु बालक किशोरावस्था की समाप्ति तक बालिकाओं से इसमें आगे निकल जाते हैं।

11. विकास लम्बवत न होकर वर्तुलाकार होता है (Development is spiral not linear) – बालक एक सी गति से सीधा चलकर विकास को प्राप्त नही होता , बल्कि बढ़ते हुए पीछे हटकर अपने विकास को परिपक्व और स्थायी बनाते हुए (वर्तुलाकार आकृति की तरह) आगे बढ़ता है । किसी एक अवस्था में वह तेजी से आगे बढ़ते हुए उसी गति से आगे नहीं जाता, बल्कि अपने विकास की गति को धीमा करते हुए आगे के वर्षो में विश्राम लेता हुआ प्रतीत होता है ताकि प्राप्त विकास को स्थायी रूप दिया जा सके । यह सब करने के पश्चात् वह कुछ आगे बढ़ता है ।

12. विकास की आरम्भिक बुनियाद महत्वपूर्ण है (early foundation are critical for later development) – विकास की आरम्भिक नींव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं व्यक्ति की अभिवृति, आदतें और व्यवहार का प्रारूप जो आरम्भिक वर्षो में विकसीत होता है वही आगे आने वाले वर्षो में व्यक्ति के जीवन के समायोजन को निश्चित करता है ।

13. विकास में परिपक्वता एवं अधिगम की भूमिका होती है (Role of maturation and learning in Development) – परिपक्वता और अधिगम विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाहते हैं । परिपक्वता व्यक्ति के विकास के लिए अधिगम हेतु सामान्य प्रारूप और व्यवहार के कम को निर्धारित करती है । अधिगम ही एक प्रकार का विकास हे जो व्यक्ति के अभ्यास और प्रयास के द्वारा उसके स्वयं के द्वारा होता है ।

14. विकास की प्रत्येक अवस्था में जोखिम रहता है (Each Phase of development has hazards) – विकास की प्रत्येक अवस्था में भौतिक, मनोवैज्ञानिक और वातावरणीय जोखिम रहते है, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अभिभावक और अध्यापक विशिष्ट अवस्था से जुड़े जोखिमों के प्रति जागरूक रहें ताकि उनसे बालक को बचाया जा सकें ।

15. विकास सांस्कृतिक परिवर्तनों से प्रभावित होता है (Development is affected by cultural charges) – बालक का विकास संस्कृति के परिवर्तन के अनुसार प्रभावित होता है । संस्कृति के अनुरुप ही व्यक्ति का विकास होता है । संस्कृति की उन्नति बालक के विकास में उस मात्रा में गुणों का विकास करती है ।

मानव विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

(Factors affecting human development) – किसी भी बालक / मानव का विकास किसी एक तत्व अथवा उपकरण पर निर्भर नहीं करता । उसके विकास में बहुत से तत्व मिलकर काम करते हैं । बालक के विकास और उसकी गति पर भोजन, स्वास्थ्यजनक परिस्थितियों, वातावरण, सूर्य प्रकाश, शुद्ध वायु तथा ऋतु आदि का प्रभाव पड़ता है तो उसकी मनोवृतियों, वंशानुक्रम तथा सामाजिक सम्बन्धों का भी प्रभाव पड़ता है । मानव विकास को प्रभावित करने वाले ये तत्व एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं परन्तु इन तत्वों के सापेक्षित प्रभाव के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है । विकास के इन तत्वों का अध्ययन वातावरण और वंशानुक्रम के संदर्भ में किया जा सकता है ।

(अ) वंशानुक्रम (Heredity) – प्रत्येक मानव कुछ निश्चित क्षमताओं या गुणों के साथ पैदा होता है । ये जन्मजात क्षमताएू अथवा गुण उसे गर्भ के समय अपने माता पिता एवं पूर्व पीढ़ियों से प्राप्त होते हैं। इस जटिल जैविक प्रक्रिया द्वारा माता पिता से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होने वाले ये गुण उसका वंशानुक्रम कहलाते हैं । दूसरे शब्दों में हम वंशानुक्रम उसे कहते हैं जो व्यक्ति को उसकी प्रकृति द्वारा प्रदत्त योगदान है ।

वंशानुक्रम से ही व्यक्ति को सभी शारीरिक विशेशताएँ जैसे चेहरा, रंग, ऑखें, हाथ–पैर, लम्बाई आदि बाह्य अंग प्राप्त होने के साथ साथ उसकी शरीर की आन्तरिक क्रियाप्रणाली को नियन्त्रित करने वाली ग्रंन्थियां और विभिन्न संस्थान भी प्राप्त होते हैं । मानव को मानसिक विशेषताओं में विशेशरूप से मूलप्रवृति, बुद्धि और अभिक्षमता जन्मजात होती है । इन जन्मजात शक्तियों का पूर्ण विकास उचित वातावरण में ही संभव हो सकता है ।

(ब) वातावरण (Environment) – मानव का वातावरण वे भौतिक और सामाजिक परिस्थितियां है जिसमें वह जन्म लेता है और विकसित होता है । वातावरण का मानव की जन्मजात शक्तियों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । उपयुक्त वातावरण के अभाव में जन्मजात शक्तियॉ अविकसित रह जाती है चाहे वे शारीरिक शक्तियॉ हो अथवा मानसिक । मानव के विकास, विकास की गति तथा उसके व्यवहार पर अनेक

वातावरणीय तत्व प्रभाव डालते हैं –

1. **भोजन** – व्यक्ति के सामान्य विकास के लिए पुष्टिकर और संतुलित भोजन की आवश्यकता होती है । भोजन में व्यक्ति विकास के सभी आवश्यक तत्व पाए जाने आवश्यक है अन्यथा शारीरिक दुर्बलता और रोग उसके विकास में बाधक बन सकते हैं । सही भोजन व्यक्ति को सभी अवस्थाओं में आवश्यक होता है परन्तु शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में इसकी अनिवार्यता अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

2. **शुद्ध वायु एवं सूर्य का प्रकाश** – व्यक्ति के विकास की दृश्टि से शुद्ध वायु और सूर्य प्रकाश का बड़ा महत्व है । बहुत से रोग तो धूप स्नान और शुद्ध वायु से दूर हो जाते हैं । विशेषकर बालक के प्रारंभिक वर्षो में स्वास्थ्य स्थिति, आकार और परिपक्वता आयु इससे बहुत अधिक प्रभावित होती है । धुप से जीवन शक्ति मिलती है और रोगों के रोगाणु भी मरते हैं। धूप से विटामिन ''डी'' प्राप्त होता है , जिसके अभाव में बालकों को सूखा रोग हो जाता है और शरीर के अन्य रसायनों जैसे कैल्शियम के लिए भी यह आवश्यक है । त्वचा के रोगों के लिए भी धूप बड़ी लाभदायक है । शुद्ध वायु शरीर के रक्त को शुद्ध करती है जो स्वस्थ शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक है । चर्म रोगों तथा क्षय रोग में शुद्ध वायु बहुत आवश्यक है ।

3. संस्कृति (Culture) – बालक के विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । प्रत्येक देश की अपनी अपनी संस्कृति होती है और संस्कृति में विकास के अलग अलग अवसर होते हैं । उनके रीति रिवाज व परम्पराएं भी अलग अलग होते हैं । जो समय देशकाल होगा संस्कृति भी सामाजीकरण द्वारा बालक के विकास को प्रभावित करती है । एक भारतीय बालक अपने देश की अध्यात्मिक संस्कृति में पलना बढ़ता है जिसका प्रभाव उसके सांवेगिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक विकास पर स्पष्ट दिखाइ देता है जो उसे अन्य संस्कृतियों जैसे अमेरिका (भौतिकतावादी संस्कृति) में पले बढ़े बालक से भिन्न बनाता है । उस देश की संस्कृति संस्कार रूप में व्यक्ति के अवचेन तथा अचेतन मन में समाई रहती है । प्रसिद्ध मनोविश्लेषक युग महोद का कथन हे कि व्यक्ति के विकास में जातीय संस्कृति का बड़ा हाथ है , जातीय संस्कृति के अनुरूप ही व्यक्ति का विकास होता है । मार्गेट मीड और बेनेडिक्ड जैसे मानव – शास्त्रियों ने अध्ययन द्वारा यह प्रतिपादित किया कि बालक कि विकास पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है । जो संस्कृति जितनी उन्नत होगी उससे सम्बन्धित व्यक्ति उसी मात्रा में गुणों का अर्जन करेगा । जैसे अध्यात्मिकता केवल हमारी संस्कृति में ही पनप सकती है , पाश्चात्य संस्कृति में नहीं ।

4. **परिवार** (Family) – व्यक्ति के विकास का परिवार की स्थिति, परिवार में उसका स्थान व परिवार की परिस्थितियॉं प्रभावित करती है । परिवार के स्तर के आधार पर बालक की सोच और मानसिकता बनती है । परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर भी बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

5. **समाज व सामाजिक सम्बन्ध** (Society and social Relations) – बालक का विकास उसके परिवार, समाज और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है । उसी के अनुसार बालक की संरचना उस देश की संस्कृति से प्रभावित होती है और बालक का समाज उसके सामाजिक सम्बन्धों को निर्धारित करके उसके विकास को नई दिशा प्रदान करता है । बालक का व्यवहार उसके समाज जैसे परिवार के सदस्य, पडौस व विद्यालय के सदस्यगणों के क्रियाकलापों से प्रभावित होता है और उसी के आधार पर बालक अपनी अनुक्रिया करता है । इन सबका प्रभाव बालक के विकास के सभी पक्षों पर पड़ता है ।

6. **पालन पोषण** :– पालन पोषण का बालक के विकास पर अधिक प्रभाव पड़ता है । पालन पोषण के तरीके उसके व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं । मनोविज्ञान के अनुसार बालक की अनुक्रिया व्यवहार से प्रभावित होती है और व्यवहार का अच्छा या बुरा होना लालन पालन से प्रभावित होता है । पालन पोशण में सुविधाओं की उपलब्धता और अनुपलब्धता भी बालक के विकास को प्रभावित करती है । यह बालक का अपने माता पिता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध व स्तर को भी प्रभावित करती है ।

7. जीवन की घटनाएँ और दुर्घटनाएं (Incidents and accidents in life) – जीवन की अच्छी और खराब घटनाएं और दुर्घटनाएँ मानव जीवन के विकास को प्रभावित करती है । कभी कभी एक घटना पूरे जीवन के विकास की दिशा ही परिवर्तित कर देती है । जैसे – एक व्यक्ति की दुर्घटना में तंत्रिका तन्त्र के नुकसान होने पर उसका सामाजिक, सांवेगिक शारीरिक और नैतिक विकास प्रभावित होता है

इस प्रकार मानव विकास पर वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । एक पूर्ण विकसित मानव इन्हीं दोनों की पारस्परिक अन्तक्रिया का परिणाम है । जैसे एक पौधे मे उसके आधारभूत गुण उसके बीज में निहित रहते हे। और बीज ही पौधे के विकसित स्वरूप को निर्धारित करता है, परन्तु यह पौधा तब तक सही रूप में विकसीत नहीं हो सकता जब तक वह अनुपजाऊ भूमि पर है या जल व प्रकाश के अभाव में है । इसी तरह बालक के विकास की दिशा तो उसका वंशानुक्रम निर्धारित करता है परन्तु उसकी क्षमताओं का पूर्ण विकास उपर्युक्त वातावरण द्वारा ही संभव होता है । अतः विकास बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं और वातावरणीय प्रभाव की अन्तक्रिया का ही

परिणाम है ।

प्रकृति एवं संवरण (Nature and Nurture) – श्री टी.पी. नन के अनुसार व्यक्ति के लिए जीवन की परिस्थितियॉ वही महत्व रखती है जो समुद्री जहाजों के लिए चट्टान, समुद्र की लहरें तथा तेज हवाऍ बहुत से मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों का विचार है कि बालक का वंशानुक्रम या प्रकृति के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि उसका विकास किस सीमा तक या किस दिशा में होगा । ये लोग बालक के वंशानुक्रम को अधिक महत्व देते हैं और वातावरण को महत्व नहीं देना चाहते । भारत में जन्म के आधार पर वर्ण – व्यवस्था का होना वंशानुक्रम के महत्व का ही समर्थन है ।

इसके विपरीत कुछ लोग वातावरण में अधिक विश्वास रखते हुए कहते है कि उन्हें कैसी भी प्रकृति का बालक दे दिया जाए वे उचित वातावरण या संवरण द्वारा उसके व्यक्तित्व का विकास जिस दिशा में चाहे कर सकते हैं । दोनों तरह के विचारों में मानव विकास में उसकी प्रकृति और उसके संवरण के महत्व में भिन्नता है । मानव के व्यक्तित्व विकास में उसकी वंश – परम्परा का अधिक महत्व है या उसके वातावरण का इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने तर्क दिये है ।

मानव का विकास अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है जिनमें से दो प्रमुख हैं, प्रथम उसकी प्रकृति (Nature) या जैविक और दूसरा है व्यक्ति का संवरण या पोषण (Nurture) व्यक्ति की प्रकृति जन्मजात होती है यह उसे उसके माता पिता एवं पूर्वजों से प्राप्त होती है जिसे उसका वंशक्रम कहते हैं । व्यक्ति के विकास को संवरण (पोषित) करने वाले कारक उसके वातावरण के अन्तर्गत आते हैं । व्यक्ति का विकास उसके गर्भकाल से आरम्भ हो जाता है जो उसके गर्भकाल से आरम्भ हो जाता है जो उसके माता पिता द्वारा प्रदत्त वंशक्रम से निर्धारित होता है और जन्म के पश्चात समाज में मिला वातावरण उसका आगे का विकास निर्धारित करता है । व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उसके वंशक्रम तथा वातावरण की अन्तक्रिया का परिणाम है ।

वंशानुक्रम (Nature)

बालक अधिकांशतया रंग, रूप , आकृति , विद्वता आदि में अपने पूर्वजो एवं माता पिता से मिलता जुलता होता है यानि उसे अपने माता पिता के शारीरिक और मानसिक गुण प्राप्त होते हैं । जैसे माता पिता है, वैसी ही उनकी सन्तान होती है । इसी को हम वंशानुक्रम, आनुवांशिकता, पैतृकता, वंशपरम्परा आदि नामों से पुकारते हैं । वंशानुक्रम, व्यक्ति की जन्मजात, विशेषताओं का पूर्ण योग कहा जा सकता है ।

वंशानुक्रम की प्रक्रिया (Process of Heredity) – मानव शरीर कोशिकाओं से मिलकर बना होता है । इसी शरीर का आरम्भ केवल एक कोशिका से होता है जिसे संयुक्त कोश (Zygote) कहते हैं । यह जाईगोट दो उत्पादक कोशिकाओं (Germ Cells) का योग होता है , जिसमें एक कोशिका पिता की जिसे पितृकोशिका (sperm) और दूसरी माता की होती है जिसे मातृकोशिका (Ovam) कहते हैं । माता और पिता की प्रत्येक कोशिका में 23 – 23 गुणसूत्र (Chroosomes) होते हैं और ये मिलकर संयुक्त कोशिका (Zygote) में गुणसूत्रों के 23 जोड़े बनाते हैं। इन गुणसुत्रों पर जीन (Genes) विद्यमान होते हैं, जिसमें उसके वंश की असंख्य परम्परागत विशेषताएं निति होती है । प्रत्येक गुणसूत्र में अनेक जीन होते हैं और प्रत्येक जीन किसी न किसी पैतृक गुण या विशेषता को निर्धारित करता है, इसीलिए, इन जीन को वंशानुक्रम–निर्धारक (Hereditory Determiners) कहते हैं। यही जीन शारीरिक और मानसिक गुणो को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पहूॅचाते हैं । इसी प्रकिया द्वारा पूर्वजों के गुण पीढ़ी दर पीढ़ी उनकी सन्तानों में पहूॅच जाते हैं ।

व्यक्ति को वंशानुक्रम की प्रक्रिया द्वारा अपने पूर्वजों के शारीरिक और मानसिक गुण प्राप्त होते हैं परन्तु यह भी देखा गया है कि विद्वान माता पिता का बालक अल्पबुद्धि और शारीरिक लक्षणों में कुछ भिन्न भी होता है । पूरी तरह से समान तो व्यक्ति कभी भी नहीं होता है । एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की भिन्नता कम या अधिक हो सकती है । वंशक्रम कुछ नियमों तथा सिद्धान्तों पर आधारित है । वंशक्रम के सर्वाधिक प्रचलित नियम निम्नलिखित हैं :–

1. बीजकोश की निरन्तरता का नियम (Law of Continuity of Germ Plasm) :–
2. समानता का नियम (Law of Reseblance)
3. विभिन्नता का नियम (Law of Variation)
4. प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression)
5. अर्जित गुणों के स्थानान्तरण का नियम (Law of Trasmission of Acquired Traits)
6. प्रभाविकता एवं वियोग का नियम (Law of Dominance and Segregation)

1. बीजकोश की निरन्तरता का नियम (Law of Continuity of Germ Plas) – इस नियम के अनुसार बालक को जन्म देने वाला बीजकोश कभी नष्ट नहीं होता । इस नियम के प्रतिपादक बीजमैन (weismann) के अनुसार बीजकोश का कार्य केवल उत्पादक कोशिकाओं (Germ Cells) का निर्माण करना है जो बीजकोश बालक को अपने माता पिता से मिलता है उसे वह अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है । इस प्रकार बीजकोश पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है ।

2. समानता का नियम (Law of resemblance) – इस नियम के अनुसार जैसे माता पिता होते हैं वेसी ही उनकी सन्तान होती है । सन्तान की शारीरिक रचना और मानसिक योग्यता उसके माता से मिलती जुलती होती है ।

3. विभिन्नता का नियम (Law of variatin) – इस नियम के अनुसार बालक अपने माता पिता के बिल्कुल समान न होकर कुछ भिन्न होते हैं । इस प्रकार एक माता पिता के बालक दूसरे से समानता रखते हुए भी बुद्धि, रंग और स्वभाव में एक दूसरे से भिन्न होते हैं । भिन्नता का नियम डार्विन तथा लैमार्क ने प्रयोगों द्वारा स्पश्ट करने का प्रयास किया । भिन्नता के मुख्य कारण उत्परिवर्तन (Mutations) तथा प्राकृतिक चयन (Natrual Selection) बताये जिनके द्वारा वंशक्रमीय विशेषताओं का उन्नयन होता है ।

4. प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression) – इस नियम के अनुसार, प्रकृति विशिश्ट गुणों के बजाय सामान्य गुणों का अधिक वितरण करके एक जाति के प्राणियों को एक ही स्तर पर रखने का प्रयास करती है । इस नियम के अनुसार, बालक अपने माता पिता के विशिष्ट गुणों के बजाए सामान्य गुणों को ग्रहण करते है।

5. अर्जित गुणों के स्थानान्तरण का नियम (Law of trasmisison of acquired traits) – लैमार्क के अनुसार व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन में जो कुछ भी अर्जित किया जाता है, वह उनके द्वारा उत्पन्न किये जाने वाली संतति को स्थानान्तरित कर दिया जाता है । इसका उदाहरण देते हुए लैमार्क ने कहा कि जिराफ पशु की गर्दन पहले बहुत कुछ घोड़े के समान थी पर कुछ विशेश परिस्थितियों के कारण वह लम्बी हो गई और उसका यह गुण अगली पीढ़ी में स्थानान्तरित होने लगा । इस नियम की समालोचना की गई इसे पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जाता है ।

6. प्रभाविकता एवं वियोग का नियम (Law of Doinance and Segregation) – मैंडल ने वंशानुक्रम के दो महत्वपूर्ण नियम प्रतिपादित किये । मटर पर प्रयोगों द्वारा मैंडल ने बताया की माता एवं पिता में से जिसका गुण प्रभावी होता है वह अगली पीढ़ी में दिखाई देता है और दूसरे जनक का गुण (लुप्त) छिपा हुआ रहता है । इसे प्रभाव का नियम (Law of Dominance) कहते हैं । उन्होने बताया कि वर्णसंकर प्राणी या जातियॉं आने वाली पीढ़ीयों में अपने मौलिक या सामान्य रूप की और अग्रसर होती है यानि किसी एक पीढ़ी में दो गुणों का मेल आगे चलकर अलग–अलग गुणों (शुद्ध प्रकारों) के रूप में प्रदर्शित होते हैं , इसे वियोग का नियम (Law of Regregation) कहा । इस नियम के अनुसार अन्त में शुद्ध गुणों वाली सन्तान रह जाती है ।

मानव विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव (Influence of Hereditory on child Development)

– वंशानुकम के सम्बन्ध में किये गये प्रयोगों और अनेक अध्ययनों के आधार पर यह माना जाता है कि बालक के व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार वंशानुक्रम का प्रभाव बालक पर निम्नानुसार पड़ता है :–

1. मूल शक्तियों पर प्रभाव :– बालक की मूल शक्तियॉं इसके वंशानुक्रम पर निर्भर करती है , यह मत थार्नडाईक ने दिया । थार्नडाईक ने 50 जुडवॉं बच्चों की समानता जानने के लिए उनका अध्ययन छः प्रकार की मानसिक परीक्षाओं के आधार पर किया

2. शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव :– कार्ल पीयरसन (Karl Pearson) के अनुसार यदि माता पिता की लम्बाई अधिक है तो बालको की लम्बाई भी अधिक होती है और यदि माता पिता की लम्बाई कम होती है तो उनके बालको की लम्बाई भी कम होती है ।

3. बुद्धि पर प्रभाव :– गाडर्ड का विचार है कि तीव्र बुद्धि माता पिता की सन्तान तीव्र बुद्धि और मन्दबुद्धि माता पिता की संतान मन्द बुद्धि होती है । अनेक परिवारों का इतिहास बुद्धि पर वंशानुक्रम के इस प्रभाव को दर्शाता है । उसने यह बात कालीकॉक नामक सैनिक के वंशजों का अध्ययन करके सिद्ध की ।

4. प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव :– क्लिनवर्ग का मत है कि बुद्धि की श्रेश्ठता का कारण प्रजाति है । उनके अनुसार अमरीका की श्वेत प्रजाति, नीग्रों प्रजाति से श्रेष्ठ है । हमारे देश में भी ब्राह्मण प्रजाति को अन्य प्रजातियों से श्रेष्ठ माना जाता रहा है ।

5. व्यवसायिक कुशलता पर प्रभाव :– कैटल का मत है कि व्यवसायिक कुशलता का मुख्य कारण वंशानुक्रम है । उन्होनें यह निश्कर्श अमरिका के 885 वैज्ञानिकों के परिवारों का अध्ययन करने के पश्चात निकाला जिसमें उसने बताया कि इन परिवारों में से 215 व्यवसायी वर्ग के 1/2 उत्पादक वर्ग के और केवल 1/4 कृषि कार्य करने वाले थे।

1. सामाजिक पहलू पर प्रभाव :– विनशिप का मत है कि प्रतिष्ठित और गुणवान माता पिता की सन्तान प्रतिश्ठा प्राप्त करती है । वह इस निष्कर्ष पर रिचर्ड एडवर्ड के परिवार का अध्ययन करके पहूॅंचा जिसने रिचर्ड की पत्नि एलिजाबेथ भी उसी के समान थी । इन दोनों के वंशजों ने विधानसभा के सदस्यों, महाविद्यालयों के अध्यक्षों और उपराष्ट्रपति के पद जैसे प्रतिष्ठित पद प्राप्त किये ।

2. चरित्र पर प्रभाव :– डगलस ने ज्यूक के वंशजों का अध्ययन करके सिद्ध किया कि चरित्रहीन माता पिता की सन्तान चरित्रहीन होती है । इस परिवार की पॉच पीढ़ियों के वंशजों में लगभग 1000 से अधिक व्यक्तियों में से 300 बाल्यावस्था में ही मर गये, 310 ने दरिद्रगृहों में जीवन व्यतीत किया, 440 रोग के कारण मर गये, 130 दण्ड प्राप्त करने वाले अपराधी थे और केवल 20 ने अपना कोई व्यवसाय करना सीखा।

3. महानता पर प्रभाव :– गाल्टन के अनुसार व्यक्ति की महानता का कारण उसका वंशानुक्रम है । व्यक्ति का कद, वर्ण, वनज, स्वास्थ्य, बुद्धि, शक्तियॉ आदि उसके वंशानुक्रम पर आधारित रहते है। यह विचार उसने महान न्यायाधीशों, राजनीतिज्ञों, सैनिक पदाधिकारियों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों के जीवन चरित्रों का अध्ययन करने के पश्चात रखे ।

कोलेसनिक के अनुसार जिस सीमा तक व्यक्ति की शारीरिक रचना को उसके जीन निश्चित करते हैं, उस सीमा तक उसके मस्तिष्क एवं स्नायु – संस्थान क रचना, उसके अन्य लक्षण, उसकी खेलकूद सम्बन्धी कुशलता और उसकी गणित– सम्बन्धी योग्यता भी वंशानुक्रम पर निर्भर करती है, पर वे बातें उसके वातावरण पर कहीं अधिक निर्भर करती है । मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वंशानुक्रम का व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । यह प्रभाव जीनों के कारण व्यक्ति के शारीरिक लक्षणों पर प्रकट होता है। आन्तरिक प्रेरक तत्व उसके स्वभाव को निर्धारित करते हैं परन्तु वातावरण भी मानव विकास को अत्यन्त प्रभावित करता है । वातावरण का प्रत्येक तत्व व्यक्ति विकास पर प्रभाव डालता है ।

मानव विकास पर वातावरण का प्रभाव (Influence of environment on Human Development) –

मनोवेज्ञानिकों ने मानव विकास पर वातावरण के महत्व के सम्बन्धमें अनेक अध्ययन और परिक्षण किए हैं । इनके आधार पर उन्होने सिद्ध किया है कि मानव के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है, भारतीय मनोवैज्ञानिकों के एक अध्ययन के अनुसार 1971 की प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले आधे से अधिक के अभिभावको सामान्य आर्थिक स्थिति के थे और उनके बालको ने सरकारी विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त की थी । कुछ मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण के प्रभाव का वर्णन निम्नानुसार किया है :–

1. शारीरिक विकास पर प्रभाव :– फ्रेंज बोन्स के अनुसार विभिन्न प्रजातियों के शारीरिक अन्तर का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है । उसने अनेक उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि जो जापानी और यहूदी, अमेरिका में अनेक पीढ़ियों से निवास कर रहे हैं, उनकी लम्बाई भौगोलिक वातावरण के कारण बढ़ गई है ।

2. मानसिक विकास पर प्रभाव :– गोर्डन का मत है कि उचित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण न मिलने के कारण मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है । अलग थलग वातावरण में रहने से रामू भेड़िये का केस, अमाला और कमाला का केस, काशपर हौजर का केस आदि के उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि उचित वातावरण न मिलने से बौद्धिक विकास की गति बहुत धीमी हो जाती है और उचित वातावरण मिलने से बौद्धिक विकास की गति तेज हो जाती है ।

3. प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव :– क्लार्क के अनुसार कुछ प्रजातियों की श्रेश्ठता का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है । यह बात उसने अमेरिका के कुछ गोरे एवं नीग्रों लोगों की बुद्धि परीक्षा लेकर सिद्ध की । नीग्रों प्रजाति की बुद्धि का स्तर इसलिए निम्न है क्योंकि उनकों अमेरिका की श्वेत प्रजाति के समान शैक्षिक, सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण उपलब्ध नहीं है ।

4. अनाथ बालकों पर प्रभाव :– समाज कल्याण केन्द्रो में अनाथ और परावलम्बी बालक आते हैं । वे साधारणतः निम्न परिवारों के होते हैं, पर केंद्रो पर उनका अच्छी विधि द्वारा और उचित वातावरण में पालन किया जाता है और उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है तो वे अपने माता पिता से अच्छे सिद्ध होते हैं।

5. जुड़वा बच्चों पर प्रभाव :– जुड़वॉ बालको के शारीरिक लक्षणों, मानसिक शक्तियों और शैक्षिक योग्यताओं में अत्यधिक समानता होती है । न्यूमैन, फ्रीमैन और होलजिंगर ने 20 जोड़े जुड़वॉ बालकों को अलग – अलग वातावरण में रखकर उनका अध्ययन किया । बड़े होने पर इन जुड़वॉ बालकों में बहुत असमानता पाई गई । यह असमानता उनकी सोच, बुद्धि और व्यवहार गुणों से सम्बन्धित थी ।

6. व्यक्तित्व पर प्रभाव :– कूले का मत है कि व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुकम की अपेक्षा वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है । व्यक्ति अच्छे वातावरण में रहकर व्यक्तित्व का निर्माण करके महान बन सकता है । व्यक्ति का चरित्र भी काफी सीमा तक वातावरण पर ही निर्भर करता है । वातावरण बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक व अध्यात्मिक विकास के सभी पक्षों पर प्रभाव डालता है । एक बालक जितने अधिक समय अच्छे वातावरण में रहता है, वह उतना ही अधिक इस वातावरण की ओर अग्रसर होता है । इसी प्रकार खराब वातावरण में रहने से उसकी प्रवृति अवगुणों की तरफ मुड़ जाती है । भारत में भी

रविन्द्रनाथ ठाकुर की विश्वभारती जैसे संस्था ने सन्थाल लोगों को शिक्षा देकर सुयोग्य नागरिक बना लिया है ।

वंशानुक्रम एवं वातावरण का सम्बन्ध (Relation of Hereditory and environment) – मानव विकास में वंशानुक्रम और वातावरण के प्रभाव को पृथक नही किया जा सकता है । अपितु ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । जिस प्रकार एक स्वस्थ बीज तभी स्वस्थ पौधे का रूप धारण कर सकता है जबकि वातावरण स्वस्थ एवं सन्तुलित हो या इसी प्रकार अस्वस्थ बीज को अच्छा वातावरण भी स्वस्थ पौधे के रूप में विकसित नहीं कर सकता है । बीज एवं वातावरण दोनों के योगदान के अभाव में पौधे का पूर्ण विकास संभव नहीं है । वंशक्रम मानव को विकसित होने की क्षमताऐं प्रदान करता है । इन क्षमताओं को विकसित होने के अवसर हमें वातावरण से मिलते हैं । व्यक्ति का निर्माण न केवल वंशानुक्रम और न केवल वातावरण से होता है । वास्तव में वह जैविक दाय और सामाजिक विरासत के एकीकरण की उपज है । मानव के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का किस सीमा तक प्रभाव पड़ता है । यह उत्तर अभी तक नहीं मिल पाया है । वंशानुक्रम एवं वातावरण में से कौनसा कारक मानव विकास को अधिक प्रभावित करता है इसका निर्धारण भी वैज्ञानिक और मनौवैज्ञानिक अभी तक नहीं कर पाये हैं । मानव के विकास के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति या बालक जो कुछ सोचता, करता या अनुभव करता है वह वंशानुक्रम के कारकों और वातावरण के प्रभावों के पारस्परिक सम्बंधों का परिणाम होता है । परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया है कि समान वंशानुक्रम और समान वातावरण होने पर भी बालकों में विभिन्नता होती है । अतः बालक के विकास पर वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है । वास्तव में मानव जैविक वंशानुक्रम और सामाजिक विरासत के एकीकरण की उपज है ।

वंशानुक्रम एवं वातावरण का सापेक्षिक महत्व (Coparative Importance of Hereditory and environment) :– बालक के विकास में वंशानुक्रम का अधिक महत्व है या वातावरण का अधिक महत्व है , इस प्रश्न का उत्तर हम अभी तक नहीं खोज पाये हैं। परन्तु परीक्षण और अवलोकनों के आधार पर बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण के सापेक्षिक महत्व को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :–

1. **वंशानुक्रम व वातावरण की अपृथकता (Non-separation of Hereditory and environment)** :– बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है । बालक के पूर्ण एवं सन्तुलित विकास के लिए वंशानुक्रम एवं वातावरण का संयोग अनिवार्य है । जीवन की प्रत्येक घटना इन दोनों का परिणाम होती है । इनमें से एक परिणाम के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि दुसरा । किसी को भी न हटाया जा सकता है और न ही कभी पृथक किया जा सकता है ।

2. **वंशानुक्रम व वातावरण का समान महत्व (Equal importance of Herediotry and Environment)** :– बालक के विकास के लिए वशानुक्रम और वातावरण का समान महत्व है । वंशानुक्रम जितना अधिक समृद्ध होगा व्यक्तित्व का उतना अधिक विकास होगा । इसी प्रकार वातावरण की समृद्धता भी व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

3. **वंशानुक्रम व वातावरण की पारस्परिक निर्भरता (Interdependence of Hereditory and environment)** :– वंशानुक्रम और वातावरण एक दूसरे के पूरक, सहायक और सहयोगी हैं । बालक को जो मूलप्रवृतियॉ वंशानुक्रम से प्राप्त होती है , उनका विकास वातावरण में होता है । उदाहरणार्थ, यदि बालक में बौद्धिक योग्यता नहीं है तो अच्छे से अच्छा वातावरण भी उसका मानसिक विकास नहीं कर सकता, इसी प्रकार बौद्धिक योग्यता वाला बालक प्रतिकूल वातावरणमें अपना मानसिक विकास नहीं कर सकता । बालक का सम्पूर्ण विकास और व्यवहार उसके वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया का फल है ।

4. **वंशानुक्रम व वातावरण के प्रभावों में अन्तर करना असम्भव है (Differentation is impossible between hereditary and environment's effect)** :– यह कहना असम्भव है कि बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का कितना कितना प्रभाव पड़ता है । व्यक्ति के जीवन और विकास पर प्रभाव डालने वाली प्रत्येक बात वंशानुक्रम और वातावरण के क्षेत्र में आ जाती है, पर ये बातें इतने जटिल रूप से संयुक्त रहती है कि बहुधा वंशानुक्रम और वातावरण के प्रभावों में अन्तर करना असम्भव हो जाता है ।

5. **मानव, वंशानुक्रम व वातावरण की उपज है (Human is the creation of hereditary and environment)** :– बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का सम्बन्ध योगात्मक नहीं होता बल्कि गुणात्मक होता है । सभी बालकों को एक जैसा वातावरण प्रदान करके एक जैसा नहीं बनाया जा सकता है । परन्तु सभी को समृद्ध वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि उन्हें वंशानुक्रम द्वारा मिली शक्तियों द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा अवसर मिल सकें ।

निश्कर्श रूप में हम कह सकते हैं कि मानव के व्यक्तित्व विकास में वंशानुक्रम और वातावरण दोनों महत्वपूर्ण तत्व हैं । यदि वंशानुक्रम आधार है तो वातावरण इसका ढ़ाचा है । वंशानुक्रम को वातावरण से अलग नही किया जा सकता है । दोनों का मानव विकास में समान महत्व और योगदान है । इनमें से एक की भी अनुपस्थिति में उसका सम्यक् विकास असम्भव है । वंशानुक्रम और वातावरण एक दुसरे को सहयोग देने वाले प्रभाव है और दोनों ही मानव की सफलता के लिए अनिवार्य है । वातावरण द्वारा मानव का विकास हो सकता है , परन्तु उसके विकास की सीमा उसकी वंश परम्परा ही निर्धारित करती है ।

मानव विकास का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psychoana lytic theory of human development) –

मानव विकास अनुसंधानकर्ताओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और रूचि का विशय रहा है । मानव विकास के बहुत से सिद्धान्त दिये गये जो इसके विकास का विभिन्न दृष्टिकोणों से वर्णन करते हैं । विकास के इन सभी सिद्धान्तों को तीन मुख्य श्रेणियों में वगीकृत किया जा सकता है । प्रथम मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त जो मुख्य रूप से सिग्मण्ड फ्रायड और एरिक ऐरीक्सन के कार्यो से प्रतिपादित किया गया । यह बालक के प्रारम्भिक अनुभवों का उसके बाद के विकास में महत्व पर बल देता है और अचेतन अभिप्रेरणा को महत्वपूर्ण मानता है ।

दूसरा सिद्धान्त व्यवहारवादी है जो बालक के विकास में उद्दीपन–अनुक्रिया की साहचार्यता को उसके अधिगम के लिए महत्वपूर्ण मानता है और यह साहचार्यता या तो शास्त्रीय अनुबन्धन या फिर क्रिया प्रसूत अनुक्रिया अनुबन्धन प्रक्रिया का परिणाम होती है । इन सिद्धान्तों को अधिक वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ मानते है क्योंकि इनमें व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन और मापन किया जा सकता है । विकास का तीसरा सिद्धान्त संज्ञानात्मक है और व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण और उसके संगठन पर बल देता है । मानव विकास का यह उपागम आण्विक कहा जा सकता है ।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psychoanalytic theory)

मानव विकास के मनोविश्लेशणात्मक सिद्धान्त में मुख्यतः फ्रॉयड और एरिक्सन के व्यक्तित्व विकास सिद्धान्तों को सम्मिलित किया जाता है । सिग्मण्ड फ्रॉय ने मनोविश्लषण सिद्धान्त और एरिक एरिक्सन में मनोसामाजिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो मानव विकास की जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं ।

फ्रॉयड का मनाविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Freudin Psychoanalytic theory) :– फ्रॉयड को मनोविश्लेषण सिद्धान्त का जनक माना जाता है उसने सर्वप्रथम व्यक्तित्व और उपचार पद्धति का स्वीकार्य सिद्धान्त विकसित किया । उसके मनोविश्लेशण के अनुसार मन की कार्यपद्धति संघर्षों के रूप में प्रदर्शित होती है फ्रॉयड के मनोलैंगिक विकास के सिद्धान्त को समझने से पूर्व उसके द्वारा दिये गये कुछ मुख्य सम्प्रत्ययों को समझना होगा । फ्रॉयड ने मानसिक स्तरों (Level of Mental life) प्रवृतियों (instincts) रक्षा युक्तियों (Defence mechanism) व्यक्तित्व घटकों (Personality components) और मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं (Stages of psychosexual development) को बताया ।

1. मानसिक स्तरों (Level of Mental life) – फ्रॉयड ने मन के चेतन, पूर्व चेतन (प्राक्चेतन) और अचेतन स्तर बताए जो व्यक्ति के विचारों और भावनाओं की जागरूकता की मात्रा पर आधारित होते हैं । चेतन स्तर में व्यक्ति वह सब कुछ सम्मिलित है । जिसके प्रति वह जागरूक है जैसे संवेदनाएं, प्रत्यक्षीकरण, यादें, भावनाएं और कल्पनाएँ जिसके प्रति वर्तमान में हम जागरूक हैं । चेतनता की मनोविश्लेषण में बहुत कम भूमिका होती है । पूर्वचेतन चेतनता और अचेतन को जोडती है, जो चेतनता के नीचे होती है और जिसमें वे सब विचार और संवेदनाएँ होती है जिसके प्रति हम अभी जागरूक नहीं है परन्तु जिन्हें आसानी से चेतन में लाया जा सकता है । अतः इन विचारो और भावनाओं को चाहने पर याद किया जा सकता है । जैसे कल हमने क्या किया था, इसे चेतन में लाया जा सकता है ।

मन का सबसे बडा और महत्वपूर्ण स्तर अचेतन है जिसमें हमारे सभी दमित विचार, अनुभव और भावनाएँ होती है। अचेतन की तुलना हम उस हिमखण्ड से कर सकते जिसका पानी के बाहर का भाग चेतन और पानी के अन्दर का भाग अचेतन को दर्शाता है । फ्रॉयड के अनुसार यह अचेतन हमारे व्यवहार और अनुभवों को लगातार प्रभावित करता है, जिसके प्रभाव के बारे में हम जानते भी नहीं हैं।

2. मनोवृतियाँ (Instincts) :– ये हमारी आन्तरिक कायिक उत्तेजनाएँ होती हैं, हमारे भीतर अनेकों मनोवृतियाँ होती है। जिन्हें जीवन और मृत्यु में वर्गीकृत कर सकते हैं । प्रत्येक मनोवृति की अपनी मानस ऊर्जा (Psychic energy) होती है । जीवन मनोवृति की ऊर्जा को लिबिडो (Libido) ऊर्जा कहते हैं । यह जीवन ऊर्जा लैंगिकीय सन्तुष्टि से तुष्ट होती है जबकि मृत्यु मनोवृति आक्रामकता, निर्दयता, हत्या, आत्महत्या जैसी क्रियाएँ दर्शाती है । दोनों मनोवृत्तियां समान रूप से महत्वपूर्ण है ।

3. रक्षा युक्तियों (Defence mechanism) – मानव में संघर्श, तनाव और भग्नाशा आदि उसके जीवन में अनिवार्य है ।

रक्षा युक्तियां जीवन की इस भग्नाशा और कष्टदायक स्थिति को कम करने का कार्य करती है । भग्नाशा का कारण है कि समस्या का कोई वास्तविक समाधान नहीं रहा है तो ये रक्षा युक्तियां व्यक्ति के आत्मप्रत्यय की उस खतरे से रक्षा करती है । ये व्यक्ति की भग्नाशा को विकृत और नकारने जैसी युक्तियों से कम कने में मदद करती है । उदाहरण के तौर पर यदि एक छात्र को परीक्षा में असफल होना चिन्ताग्रस्त बनाता है तो इसको कम करने के लिए वह उतरों को सही मूल्यांकन नही होने की बात कहता है । रक्षा युक्तियॉ व्यक्ति के मानसिक कार्य की अचेतन प्रक्रिया के रूप में होती है । साधारणतया निम्नलिखित रक्षा युक्तियॉ मानव द्वारा काम मे ली जाती है –

क. तर्कसंगतीकरण (Rationalisation) – इसमें अस्वीकाग्र या अविवेकपूर्ण व्यवहार के लिए तर्कपूर्ण कारण बताया जाता है जैसे अपराधी का अपने व्यवहार का कारण बुरी संगत बताना अथवा किसी कोर्स में प्रवेश न मिलने पर उसे व्यवसाय के लिए अच्छा नहीं बताना । इसे अपराध भाव परिवर्तन के लिए प्रयोग किया जाता है ।

ख. दमन (Repression) – इस युक्ति में अवांछनीय या अस्वीकाग्र विचारों, भावों, यादों को अचेतन में धकेल देना क्योंकि इसे याद करना कष्टपूण या भय पैदा करने वाला होता है । कई महिलाएं गंदी गालियों का दमन कर लेती है

ग. प्रतिस्थापन (Displacement) – इसमें सांवेगिक प्रतिक्रियाओं को एक व्यक्ति या परिस्थिति से दूसरे स्थान पर प्रतिस्थापित कर देना है । माता से दण्ड मिलने पर बालक कोधित होकर अपना कोध अपने खिलौनो या अपने छोटे – भाई बहन पर निकालता है ।

घ. प्रक्षेपण (Projection) – व्यक्ति अपनी गलती से उत्पन्न चिंता को बाहरी वातावरण या संसार पर प्रक्षेपित कर देता है जैसे मै उसे घृणा करता हूॅ के बजाए वह मुझसे घृणा करती है, कहा जाता है ।

ड. अन्तर्वेशन (Introjection) – अन्य व्यक्ति के व्यवहार को स्वयं के व्यवहार की तरह अपनाना जैसे माता–पिता के मूल्यों को बालक द्वारा स्वयं के मूल्यों के रूप में अन्तर्वेषित किया जाता है ।

च. प्रतिकिया निर्माण (Reaction Formation) – अपनी भावनाओं या व्यवहार के बिल्कुल विपरीत प्रतिक्रिया विकसित करना जैसे घृणा के स्थान पर प्रेम करना ।

4. मनोलैंगिक विकास

(Psychosexual Development) – फ्रॉयड के अनुसार मानव का जीवनपर्यन्त व्यवहार अपनी आधारभूत प्रेरणा की सन्तुश्टि की आवश्यकता द्वारा अभिप्रेरित होता है । लिबिडा या लैंगिकता केवल जननांगीय उद्धीप्तिकरण ही नहीं है, अपीतु यह शरीर के विभिन्न भागों द्वारा प्रगट होती है जिसे उत्तेजक क्षेत्र कहते है। बालक के मनोलैंगिक विकास की अवस्थाएॅ इस जीवन ऊर्जा (Libido) के तुष्टिकरण के प्रकार पर निर्भर करती है । फ्रॉयड के अनुसार इन मनोलैंगिक अवस्थाओं को निम्नलिखित पॉच अवस्थाओं में वगीकृत किया जा सकता है –

क. मुखीय अवस्था (Oral stage) – बालक के विकास की प्रथम अवस्था मुखीय अवस्था है जो जन्म से 18 माह तक की अवधि तक होती है । बालक शरीर के मुख भाग द्वारा ही खुशी प्राप्त करता है, इसलिए मुखीय क्रियाएं जिसमें होंठ, जीभ और सहायक अंग ही रूचि के मुख्य भाग होते हैं। चुसना, निगलना, चबाना, काटना उसे खुशी देता है और उसकक जीवन ऊर्जा को संतुष्ट करता है । फ्रॉयड के अनुसार इस अवस्था में अत्यधिक या अपर्याप्त मुखीय उद्धीप्तिकरण प्रौढावस्था में उसे मुखीय उदासीन व्यक्तित्व की तरफ ले जा सकता है । फ्रॉयड के अनुसार बालक के पॉच मुखीय प्रकार कार्य करते हैं जो बाद की व्यक्तित्व विशेषताओं के पूर्वप्रकार हैं जैसे जो बालक भोजन ग्रहण करने की किया में आनन्दित होता है आगे चलकर वह अत्यधिक खाने वाला या अधिक ज्ञान या शक्ति प्राप्त करने वाले प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में विकसीत होता है इसी प्रकार पकड़ने या रोकने की किया करने वाला बालक हठधर्मिता वाला, काटने का पूर्वप्रकार विध्वंशकारिता (व्यंग्य करना, दोशदर्शन ओंर प्रभुत्व जमाने वाला) थुकने या उलटने वाला पूर्व प्रकार नकारने वाले व्यक्तित्व के रूप में विकसीत होता है ।

ख. गुदीय अवस्था (Anal Stage) – बालक के विकास की यह अवस्था 18 महीने से 3 वर्ष तक की होती है जिसमें जीवन ऊर्जा मुख से गुदा क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाती है । बालक को खुशी का अनुभव मुख्य रूप से त्यागने की किया और उससे सम्बन्धित कियाओं से होता है । मलत्याग की किया उसे तनाव से मुक्ति और खुशी देती है । यदि बालक के शौच सम्बन्धी प्रशिक्षण को मात–पिता बहुत शुष्क प्रकार से या बहुत अधिक महत्व देते हैं तो यह बालक के लिए चिंता का कारण बन जाता है और यह चिंता का कारण बन जाता है और यह चिंता अन्य परिस्थितियों पर भी लागू हो जाती है । इससे बालक अस्तव्यस्त, गंदा और गैरजिम्मेदार हो सकता है । इसके विपरीत दूसरी तरफ स्वच्छ और किफायती प्रौढ़ के रूप में विकसित हो सकता है ।

ग. उत्तर लैंगिक अवस्था (Phallic stage) – यह अवस्था तीन से पॉच वर्ष तक की होती है जिसमें बालक का सन्तुष्टिकरण जननांगों पर केन्द्रित हो जाता है । लैंगिक क्षेत्र का

उद्दीप्तिकरण तनाव पैदा करने और तनाव मुक्त होने का केन्द्र होता है । बालक की इससे सम्बन्धित व्यवहार क्रियाएं देखने में आती है । बालक अपने पिता और बालिका अपनी माता से तदात्मीकरण कर लेते हैं । यह बालको में बालिकाओं की अपेक्षा अधिक देखने को मिलता है । फ्रॉयड के अनुसार बालक अपनी माता तथा बालिका अपने पिता से प्रेम करती है और उसे दूसरे से बांटना नहीं चाहते । बालक विपरीत लिंगीय अभिभावक से जुडाव और समान लिंगीय अभिभावक से विद्धेश रखता है । फ्रॉयड ने इसे ओडिपस ग्रन्थि (Oedipus comples) का नाम दिया । ग्रीस की पौराणिक कथा के अनुसार राजा ओडिपस ने अनजाने में अपने पिता की हत्या करके अपनी माता से विवाह कर लिया था । इसी प्रकार बालिका का अपनी माता से तदात्मीकरण और पिता से प्रेम इलेक्ट्रा ग्रंथि (Electra complex) कहलाता है जिसमें वह अपनी माता से विद्धेश रखती है । फ्रॉयड इसे लिंगीय संघर्ष, अपराधबोध और चिंता के रूप में देखते हैं । वास्तव में सभी समाजों और संस्कृतियों में ये ग्रन्थियां देखने को नहीं मिलती । इन ग्रन्थियों का समबन्ध एक प्रकार की विद्धेषता का प्रदर्शन है जो स्वामित्व भाव का विरोध करती है । यह किसी लैंगिक प्रेरक या बालक और माता पिता के मध्य प्रतिस्पर्धा के कारण नही होता है ।

घ. **सुप्तावस्था** (Latency Period) – बालक की यह अवस्था 5 वर्श से यौवनारंभ तक होती है, जिसमें लैंगिकता कम महत्वपूर्ण या आनुपातिक रूप में निष्क्रिय हो जाती है । यह अवस्था सामान्यतया शान्त होती है और शरीर के किसी भी भाग में उत्तेजना नहीं होती है । इस काल में जीवन ऊर्जा अलैंगिक क्रियाओं जैसे खेल और साथियों से सम्बन्ध के रूप में क्रियान्वित होती है । बालक अपने विचारों को विद्यालयी क्रियाओं और अपने विचारों को विद्यालयी क्रियाओं और अपने समान साथियों के साथ खेलने में लगाता है । इस काल में बालक संज्ञानात्मक कौशलों और सांस्कृतिक मूल्यों को ग्रहण करता हुआ अपना क्षेत्र विस्तृत करता है ।

ड. **जननांगिय अवस्था** (Genital stage) – यह किशोरावस्था काल है जिसमें लैगिक ऊर्जा पूरे बल के साथ दुबारा प्रकट होती है । ऐसा बालक के शरीर–कार्यिकी परिवर्तनों के फलस्वरूप होता है । इस अवस्था में यह जीवन ऊर्जा पूर्व की भांति सन्तुष्टिकरण चाहती है पर यह विपरीत लिंगीय व्यक्ति की ओर निर्देशित हो जाती है । इस काल में व्यक्ति का प्रेम अधिक परोपकारी हो जाता है और पूर्व अवस्थाओं की भांति केवल स्व–सन्तुश्टि या स्वयं की खुशी तक ही सीमित नहीं होता ।

फ्रॉयड के अनुसार यद्यपि पूरे जीवनकाल में कुछ आन्तरिक संघर्ष अवश्यंभावी होते हैं पर अधिकतर व्यक्तियों में जननांगीय अवस्था के अन्त तक स्थिर अवस्था प्राप्त हो जाती है । व्यक्तित्व विकास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि प्रेम और कार्य के मध्य एक सन्तुलन स्थापित करना है व्यक्ति का व्यक्तित्व तीन मुख्य घटकों – इदम (id) अहम (ego) और परम अहम् (superego) से बनता है । प्रत्येक घटक के अपने कार्य, सिद्धान्त और गतिशीलता होती है और ये एक दुसरे से सम्बन्धित होते हैं । व्यक्ति का व्यवहार इन तीनों घटको की अन्तक्रिया का परिणाम होता है ।

एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त
(Erikson's Pshychosocial theory)

एरिक एरिक्सन एक प्रसिद्ध मनोविश्लेषक थे जिसने मानव के सम्पूर्ण जीवनकाल के सामान्य विकास का मनोसामाजिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया । एरिक्सन ने व्यक्तित्व विकास के लिए सामाजिक कारकों के महत्व पर बल दिया । उसने विकास के विभिन्न अवस्थाओं के नियत निर्धारकों को स्थिरता और स्थायीत्व में भिन्न है , का सम्प्रत्यय विकसित किया । एरिक्सन ने भी फ्रॉयड की तरह व्यक्तित्व विकास का आधार जैविक और लैंगिक माना परन्तु उसने फ्रॉयड की विकास सूची को सामाजिक आधार दे दिया । एरिक्सन ने विकास की आठ अवस्थाएं बताई जिसमें उसने व्यक्तित्व विकास के लिए जैविक और सामाजिक कारकों की अन्तक्रिया के महत्व पर बल दिया। उसके अनुसार मनोसामाजिक विकास दो तरह से सांस्कृतिक सम्बन्धता रखता है । प्रथम, सभी संस्कृतियों में बालक विकास की समान अवस्थाओं से गुजरता है, परन्तु प्रत्येक संस्कृति में प्रत्येक आयु के बालक के व्यवहार को निर्देशित करने और बढाने (Enhancing) के अपने कुछ विशिष्ट तरिके होते हैं । दुसरा, प्रत्येक संस्कृति में अपनी एक विशिष्ट सांस्कृतिक सम्बद्धता होती है जो समय के साथ परिवर्तित होती जाती है । एक प्रथा जो एक पीढ़ी की आवश्यकताएँ पूर्ण करती है वह अगली पीढ़ी के लिए अनुपयुक्त हो सकती है । मनोसामाजिक विकास अनुजात सिद्धान्त (epigenetic principle) के अनुसार होता है । एरिक्सन ने विकास की प्रत्येक अवस्था के सकारात्मक और नकारात्मक परिणाम संभव होना बताया जैसे आत्मनिर्भरता बनाम शंका और लज्जा । आदर्शतः बालक वांछनीय अनुपात में विकसित होता है , जिसमें सकारात्मक पक्ष नकारात्मक पर प्रभावी रहता है । उदाहरणतया एक व्यक्ति को विश्वास और अविश्वास करने की आवश्यकता को जानना है तो सामान्यतया जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण विश्वासपूर्ण ही होगा । विकास की प्रत्येक अवस्था का निर्माण उससे पूर्व अवस्था से होता है और यह अवस्था आगे आने वाली अवस्थाओं को प्रभावित करती है । एरिक्सन के अनुसार जीवन का मुख्य उद्देश्य अपनी मूल पहचान (एकात्मकता)

बनाने में लगे रहना है ।

एरिक्सन के मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएं :—

विकास की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति संघर्षो का सामना करता है जो परिवर्तन को स्वीकार करके और अनूकूलन द्वारा दूर किये जा सकते हैं । एरिक्सन ने व्यक्तित्व के तीन कारको, शरीर , अहम और समाज या संस्कृति के प्रभाव को पहचाना । उसके अनुसार व्यक्तित्व विकास इन तीनों कारको के प्रभाव स्वरूप होता है । इस प्रकार यह सिद्धान्त सामाजिक, मानवशास्त्रीय और जैविक कारकों का व्यक्तित्व में एकीकरण पर बल देता है । एरिक्सन की मनोसामाजिक सिद्धान्त की अवस्थाओं का वर्णन निम्नानुसार है :—

क्र.स	अवस्था	आयु	संघर्ष
1	मुखीय	जन्म से $1^1/_2$ वर्ष	विश्वास vs अविश्वास
2	गुदीय	$1^1/_2$ से 3 वर्ष	आत्मनिर्भरता vs शंका व लज्जा
3	लैंगिक	3 वर्ष से 5 वर्ष	पहल करना vs अपराधबोध
4	सुप्तावस्था	6 वर्ष से 12 वर्ष	उद्यमिता vs हीनभावना
5	किशोरावस्था	12 से 18 वर्ष	एकात्मकता या तदात्मिकता vs भ्रान्ति
6	पूर्व प्रौढावस्था	18 से 35 वर्ष	घनिष्ठता vs एकाकीपन
7	प्रौढावस्था	22 से 50 वर्ष	सृजनात्मकता vs ठहराव
8	परिपक्वता	50 वर्ष के बाद	सम्पूर्णता vs हताशा

1. विश्वास बनाम अविश्वास (Trust vs mistrust) :— यह अवस्था जन्म से लगभग 18 महिने तक की मानी जाती है । एक शिशु का प्रथम कार्य स्वयं में और अपने वातावरण में विश्वास का विकास है । इस आयु में बालक अपनी आवश्यकताओं के लिए पूर्ण रूप से दुसरों पर निर्भर होता है । यदि उसकी आवश्यकताएं सही रूप से पूरी नहीं होती है तो वह अपने संसार (आसपास) पर विश्वास खो देता है । अतः अविश्वास की बजाए विश्वास का अधिक अनुपात विकसित करने की आवश्यकता है । यदि विश्वास से अविश्वास अधिक होगा तो बालक बड़ा होकर आत्मविश्वास की कमी के साथ कुण्ठाग्रस्त (frustrated) और विमुख हो सकता है ।

2. आत्मनिर्भरता बनाम शंका व लज्जा (Autonomy vs doubt and Guilt) :— यह काल 18 महीने से लेकर 3 वर्ष तक का होता है । इस काल में बालक दूसरों की मदद नहीं लेना चाहता और आत्मनिर्भरता का भाव विकसित करता है । वह अपने तरीके से अपने कार्य करना पसन्द करता है । माता—पिता को बालक में आत्मनिर्भरता का स्वस्थ भाव विकसित करने के लिए दृढता और लचीलेपन का संतुलन रखना आवश्यक है । वातावरण की परिस्थितियों के अनुसार माता पिता को बालक की स्वतंत्रता की सीमाएँ निर्धारित कर देनी चाहिए । यदि बालक को वातावरण को खोजने की वांछित स्वतन्त्रता नहीं दी जायेगी तो बालक में अपनी कार्य करने की योग्यता के प्रति शंका उत्पन्न हो जाती है । और वह संकोची बन जाता है । लज्जा इसी का अन्य भाव है । अतः माता पिता को एक प्रोत्साहित करने वाला वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे बालको में अपने स्वाभिमान को बिना खोये आत्मनियन्त्रण का भाव विकसित हो सके । यदि माता पिता अधिक कठोर या गलतियों और घटनाओं के आलोचक होंगे तो बालक नियन्त्रण भाव देगा और शंका भाव को अर्जित कर लेगा ।

3. पहल बनाम अपराध बोध (Initiative vs Guilt) :— यह काल लगभग 3 वर्ष से 5 वर्ष तक होता है । इस अवस्था में बालक शारीरिक, सामाजिक, बैद्धिक और संवेगात्मक सभी पक्षों में तीव्र गति से विकास करता है । घर से बाहर भी वह अपने आत्मनिर्भर व्यवहार को दर्शाता है जो एक पहल का रूप ले लेती है और उसमें सही और गलत का भाव विकसित होना शुरू हो जाता है और वह अपने कपड़े पहनने से लेकर पालतू जानवरों का ध्यान रखने जैसे कार्य करने की पहल करता है । यदि माता पिता प्रोत्साहित न करके उसे रोकते, डांटते है तो उसमें अपराधबोध आ जाता है । उसकी पहल की आमप्रेरित करके प्रौढ़ कार्यो हेतु तैयार किया जा सकता है ।

4. उद्यमिता बनाम हीनभावना (Industry vs inferiority) :— यह अवस्था 6 वर्ष से शुरू होकर 12 वर्ष तक होती है । बालक अपनी ऊर्जा को स्वयं सुधार करने और वस्तुओं और व्यक्तियों को विजय करने में लगाता है । बालक ज्ञान और कार्यो के वृहद संसार में प्रवेश चाहता है ।

यानि उसकी ''उद्योग उम्र'' की शुरूआत हो जाती है । बालक इस अवस्था में सीखने और योजना बनाने के लिए जल्दी तैयार हो जाता है । माता पिता और अध्यापक यदि बालक को

क्रिया करने के लिए हतोत्साहित करते हैं तो वे उसमें हीनभावना उत्पन्न कर सकते हैं । दूसरी और बालक में उद्यमिता विकसित होती है तो वह इस संसार में अपने आपको समायोजित कर सकता है । बालक जो करता है उस पर साधिकारिता (mastery) चाहता है । यदि बालक अभी बच्चा बना रहता है तो यह उसे हिनभावना ग्रन्थि (Inferiority complex) विकास की तरफ ले जाती है ।

5. तदात्मिकता बनाम भ्रान्ति (Identity vs diffusion) :– यह अवस्था 12 वर्श से 18 वर्श तक होती है । तदात्मिकता की संरचना बाल्यावस्था से लगातार सफल अहम (आत्म) संश्लेशण और बार बार संश्लेशण द्वारा होती है । तदात्मिकता का एकी करण विशिश्ट आवश्यकताओं , वांछित क्षमताओं, महत्वपूर्ण पहचान, प्रभावी और सफल तथा सतत भूमिका निर्वाह द्वारा होता है । विश्वास, आत्मनिर्भरता, पहल करना और उद्यमिता मिलकर बालक की तदात्मिकता बनाने में योगदान देते हैं । तीव्र कार्यिकी परिवर्तन एक नयी शरीर रचना करती हे तथा साथ ही व्यावसायिक और शैक्षिक निर्णय लेने हेतु विभिन्न भूमिकाओं का सामाजिक दबाब भी बालक पर पड़ता है । विभिन्न भूमिकाओं का एकी करण इस अवस्था का मुख्य कार्य है˙ यह तदात्मिकता किशोर के लिए नयी आवश्यकताओं, कौशलों तथा लक्ष्यों हेतु उपयुक्त होती है । यदि किशोर अपनी पहचान और भूमिका का एकीकरण नहीं कर पाता तो वह ''पहचान भ्रान्ति'' का सामना करता है । उसका व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है । किशोर अपने पुत्र, पुत्री, विद्यार्थी, खिलाड़ी, मित्र आदि की भूमिका को एक अर्थपूर्ण सम्पूर्णता के रूप में एकीकृत कर सकना सीख सके और अपनी मनोसामाजिक पहचान बना सके इसके लिए एकीकरण आवश्यक हे । यदि वह ऐसा करने में असफल हो जाता है तो वह अपने विशय में अनिश्चित ही रहता है ।

6. घनिष्ठता बनाम एकाकीपन (Intimacy vs isolation) :– यह अवस्था 18 वर्ष से 35 वर्षो तक होती है । यदि एक युवा यह सोचकर डरे कि दूसरे के साथ मैं अपनी पहचान नहीं रख सकता तो आगे चलकर वह एकाकीपन की ओर अग्रसर हो जाता है । घनिष्ठता का अर्थ लैंगिक होने से कहीं अधिक है । घनिश्ठता एक ऐसी क्षमता है जो वास्तविक और परिपक्व मनोसामाजिक पक्ष को विकसित करती है जिसमें मित्र बनाना तथा बिना अपनी पहचान गुम किये दूसरों का ध्यान रखना है । इस घनिश्ठता के अभाव में एकाकीपन आने लगता है । घनिष्ठता का मुख्य आधार प्रेम (एक दूसरे के प्रति समर्पण) है । घनिष्ठता का एक पक्ष ''हम'' की एकात्मकता का भाव होना है । एकाकीपन के केस में सम्बन्ध औपचारिक, उदासीन और खोखले हो जाते हैं।

7. सृजनात्मक और उत्पादकता बनाम ठहराव (Creativity vs stagnation) :– इस अवस्था का काल 35 वर्ष से 65 वर्ष या मध्यम प्रोढ़ावस्था का काल होता है । इस अवस्था में व्यक्ति सृजनशील या उत्पादक तरीके से बच्चों का पालन पोषण करते हुए नयी पीढ़ी को मार्गदर्शन प्रदान करता है । इसमें वह समाज और अपने बच्चों के भविश्य दोनों के विशय में सोचता है, यदि किसी व्यक्ति मं उत्पादकता और सृजनात्मकता के भाव का अभाव हो तो वह व्यक्ति निष्क्रिय और रूग्ण मानसिकता से ग्रस्त हो जाता है । उत्पादकता के साथ मूल भाव देखभाल करने का है जिसका अर्थ है व्यक्ति आने वाली पीढ़ी के प्रति अपना उत्तदायित्व समझता है ।

8. सम्पूर्णता बनाम हताशा (Integrity vs capespair) :– यह अवस्था पश्च प्रौढावस्था और 65 वर्ष से अधिक आयु की मानी जाती है । इस अवस्था में व्यक्ति अपने अब तक जीवन भर में जो कुछ बनाया है, उसके साथ रहता है । आदर्शतः व्यक्ति सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेगा । सम्पूर्णता में जीवन की सीमाओं की स्वीकार्यता, अपने को पूर्व पीढ़ियों का एक अंश रूप मानना, विभिन्न अवस्थाओं की बुद्धिमता का भाव और सभी पूर्व अवस्थाओं की अन्तिम सम्पूर्णता सम्मिलित होती है । इसके विपरीत के भाव में व्यक्ति को हताशा होती है जिसमें उसे किये हुए और न किये हुए का पछतावा, मृत्यु की तरफ जाने का भय और स्वयं से घृणा भाव उत्पन्न हो जाता है ।

प्रमुख पद

संवरण, वंशानुक्रम, मनोविश्लेषणात्मक मनोवृति, रक्षा युक्तियॉं, दमन, प्रतिस्थापन, प्रक्षेपण, अन्तर्वेशन, प्रतिक्रिया निर्माण।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- विकास से तात्पर्य अधिक परिपरिक्वता की ओर जाना है जो केवल मात्रात्मक मापन न होकर गुणात्मक परिवर्तन भी है ।
- विकास सतत व्यक्तिगत तथा सुव्यवस्थित क्रम में होता है ।
- माता तथा पिता की प्रत्येक कोशिका में 23 – 23 गुण सुत्र होते हैं और ये मिलकर संयुक्त कोशिका में गुणसुत्रों के 23 जोड़े बनाते हैं ।
- प्रत्येक गुणसुत्र में अनेक जीन होते हैं और प्रत्येक जीन किसी न किसी पैतृक गुण या विशेषता को निर्धारित करते हैं ।
- वंशानुक्रम मानव को विकसित होने की क्षमताएँ प्रदान

करता है । इन क्षमताओं को विकसित होने के अवसर हमें वातावरण से मिलते हैं।

- सिग्मण्ड फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण सिद्धान्त तथा एरिक एरिक्सन ने मनोसामाजिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो मानव विकास की जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं ।

बहुविकल्पी प्रश्न

1. आनुवांशिकता से तात्पर्य निम्नांकित में से किन से होता है?
   - क. शुक्राणु तथा अंड़ाणु
   - ख. गुणसूत्र तथा जीन्स
   - ग. सूत्री विभाजन एवं अर्धसूत्रण
   - घ. डी एन ए तथा आर एन ए

2. निम्नलिखित में से कौन से सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रॉयड द्वारा किया गया ?
   - क. संज्ञानात्मक सिद्धान्त
   - ख. मनोसामाजिक सिद्धान्त
   - ग. उद्धीपक–अनुक्रिया सिद्धान्त
   - घ. मनोविश्लेषण सिद्धान्त

3. निम्न में से मनोसामाजिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया ?
   - क. सिग्मण्ड फ्रॉयड
   - ख एरिक एरिक्सन
   - ग. ई.बी.हरलॉक
   - घ. इनमें से कोई नहीं ।

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. विकास से आप क्या समझते हैं ?
2. फ्रॉयड़ ने मन के कौन से स्तर बतलाये है ?
3. जीवन मनोवृति की उर्जा को क्या कहते हैं
4. दमन क्या है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. विकास की प्रकृति को समझाइये ।
2. वंशानुक्रम तथा वातावरण में क्या सम्बन्ध है
3. रक्षा युक्तियों को संक्षिप्त में समझाइये ।
4. सम्पुर्णता बनाम हताशा को समझाइये ।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानव–विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए ।
2. वंशानुक्रम तथा वंशानुक्रम की प्रकिया को समझाइये ।
3. फ्रॉयड़ के सिद्धान्त में मनोलैंगिक विकास को समझाइये ।
4. मनोसामाजिक सिद्धान्त क्या है तथा इसकी विकास की अवस्थाओं को समझाइये ।

उत्तर– 1. ब 2. घ 3. ख

इकाई–5

संवेदना, प्रत्यक्षीकरण एवं अवधान

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- संवेदना के अर्थ को समझ सकेगें ।
- संवेदी ग्राहक तथा संवेदी सीमांत को समझ सकेंगें ।
- अवधान का अर्थ तथा उसके निर्धारको की व्याख्या कर सकेंगे ।
- प्रत्यक्षीकरण का अर्थ तथा प्रत्यक्षात्मक संगठन के नियम का वर्णन कर सकेंगें ।
- प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले कारको की व्याख्या कर सकेंगे ।
  भ्रम को जान सकेंगें।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
संवेदना का अर्थ
संवेदी ग्राहक
संवेदी सीमान्त
निरपेक्ष सीमान्त
विभेदक सीमान्त
अवधान का अर्थ
अवधान के निर्धारक
प्रत्यक्षीकरण का अर्थ
प्रत्यक्षात्मक संगठन के नियम
भ्रम
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

बाहरी जगत का ज्ञान हमें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदनाओं से होता है। संवेदना के प्राप्त होने पर व्यक्ति उन संवेदनाओं का अर्थ निकालता है, उनकी व्याख्याता करता है। यह प्रक्रिया सतत एवं तात्कालिक (immediate) होती है। प्रस्तुत अध्याय में हम संवेदना, संवेदी ग्राहक, संवेदना की वांछित मात्रा अर्थात् संवेदी सीमांत, अवधान अर्थात ध्यान को प्रभावित करने वाले कारक, प्रत्यक्षीकरण आदि का अध्ययन करेंगे।

हमारे आस–पास के वातावरण में अनेक प्रकार के उद्दीपक पाए जाते हैं। इन विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने के लिए हमारे शरीर में विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियां होती है। मानव के रूप में हमारी सात ज्ञानेंद्रियाँ हैं। इन ज्ञानेंद्रियों को संवेदी ग्राहक भी कहते हैं, क्योंकि ये विविध स्त्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त करते हैं। जैसे रोशनी की संवेदना आंख, ध्वनि की संवेदना कान, स्पर्श की संवेदना त्वचा, स्वाद की संवेदना जीभ तथा गन्ध की संवेदना नाक द्वारा प्राप्त होती है। इन पाँच बाह्य ज्ञानेंद्रियों के अतिरिक्त हमारे पास दो आन्तरिक ज्ञानेन्द्रियां भी होती हैं – गतिसंवेदी एवं प्रघाण तंत्र। ये हमारे शरीर की स्थिति तथा एक दूसरे से संबंधित शरीर के अंगों की गति के विषय में सूचनाएँ देती हैं। इन सात ज्ञानेंद्रियों की सहायता से हम विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों को उनकी विशेषताओं का पता लगा सकते है। उदाहरण के लिए किसी वस्तु का रंग क्या है, ध्वनि अधिक या कम तीव्रता की है, सुनने में मधुर है या ध्यान भंग करने वाली।

संवेदना का अर्थ

किसी विशेष ज्ञानेंद्रिय द्वारा किसी उद्दीपक या वस्तु का प्रारंभिक अनुभव संवेदना (sensation) कहलाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अनेक भौतिक उद्दीपकों का पता लगाते हैं। हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा ग्रहण की गई सूचनाएँ ही हमारे समस्त ज्ञान का आधार बनती हैं। हमारे आस–पास के जगत का ज्ञान तीन प्रमुख प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है – संवेदना (sensation), अवधान (attention), तथा प्रत्यक्षीकरण

(perception)। ये प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अत्यधिक अंतर्संबंधित होती हैं, इसलिए इन्हें अधिकांशतः एक ही प्रक्रिया – संज्ञान के विभिन्न अंशों के रूप में समझा जाता है।

संवेदी सीमांत

कुछ उद्दीपक इतने कमजोर या कम तीव्रता के होते है कि व्यक्ति उसका पता नहीं लगा पाता। इसका अर्थ यह है कि हमारी ज्ञानेंद्रियाँ कुछ सीमाओं में कार्य करती हैं। उदाहरण के लिये हमारे कान बहुत धीमी ध्वनि नहीं सुन सकते हैं। यही बात अन्य ज्ञानेंद्रियों के बारे में भी लागू होती है। मानव के रूप में हम उद्दीपन की एक निश्चित सीमा में होने पर ही उसका पता लगा पाते है। उद्दीपक एवं उनकी व्यक्ति द्वारा की गई संवेदनाओं के बीच के संबंधों का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा में किया जाता है उसे मनोभौतिकी (psychophysics) कहते हैं।

निरपेक्ष सीमान्त

किसी उद्दीपक के ज्ञानेन्दियों द्वारा पहचाने जाने के लिये वह उद्दीपक एक न्यूनतम मात्रा में होना चाहिए। किसी ज्ञानेन्दियों द्वारा पहचाने जाने लिये उद्दीपक के अपेक्षित न्यूनतम मूल्य को निरपेक्षसीमान्त अथवा निरपेक्ष देहली (absolute threshold or absolute limen, AL) कहते हैं। यदि उद्दीपक की तीव्रता इस निरपेक्ष सीमा से अधिक होगी हो व्यक्ति इस उद्दीपक को ज्ञात कर पाएगा और यदि उद्दीपक की तीव्रता इस सीमा से कम होगी तो व्यक्ति उस उद्दीपक को ज्ञात नहीं कर पाएगा। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यदि आप पानी के एक गिलास में चीनी का एक कण डालें तो हो सकता है कि आपको उस पानी में मिठास का अनुभव न हो। एक कण और मिलाने से भी हो सकता है कि स्वाद मीठा न हो लेकिन यदि आप एक–एक कण डालते जाएँ तो एक बिंदु ऐसा आएगा जब आप कहेंगे कि पानी अब मीठा हो गया है। चीनी के कणों की वह न्यूनतम संख्या जिससे हम पानी में मिठास का अनुभव करते हैं, उसे मिठास की निरपेक्ष सीमा कहते हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि निरपेक्ष सीमा निश्चित बिंदु नहीं होती, बल्कि यह व्यक्तियों की आंगिक दशाओं एवं उनकी अभिप्रेरणात्मक स्थितियों के आधार पर बदलती रहती है। इसलिए उसका मूल्यांकन हमें कई प्रयासों के आधार पर करना चाहिए। 50 प्रतिशत अवसरों पर चीनी के कणों की जिस संख्या से पानी में मिठास का अनुभव हो सकता है वह मिठास की निरपेक्ष सीमा होगी। इसी प्रकार अलग अलग व्यक्तियों में निरपेक्ष सीमा भिन्न भिन्न हो सकती है। अर्थात व्यक्तियों की संवेदनशीलता में अन्तर हो सकता है। यह संभव है कि कोई व्यक्ति मिठास को अन्य व्यक्ति की अपेक्षा पहले महसूस कर ले।

विभेदक सीमान्त

हमारे लिए जैसे सभी उद्दीपकों को जान पाना संभव नहीं होता वैसे ही समस्त प्रकार के उद्दीपकों के मध्य अंतर कर पाना भी संभव नहीं होता है। यह जानने के लिए कि दो उद्दीपक एक दूसरे से भिन्न हैं, उन उद्दीपकों के मान में एक न्यूनतम अंतर होना अनिवार्य है। दो उद्दीपकों के मान में न्यूनतम अंतर, जो उनकी अलग पहचान के लिए आवश्यक होता है, को विभेदक सीमान्त अथवा भेद देहली (differencethreshold or difference limen, DL) कहते हैं। इसे समझने के लिए हम अपने 'चीनी–पानी' वाले प्रयोग को दोहरा सकते हैं। जैसे कि हमने देखा, चीनी के कुछ कणों को मिला देने के बाद सादा पानी मीठा लगने लगता है। आइए, इस मिठास को याद करें। अगला प्रश्न है: पानी में चीनी के कितने और कण मिलाने की आवश्यकता होगी, जिससे मिठास के पिछले अनुभव से भिन्न अनुभव प्राप्त हो। चीनी का एक–एक कण पानी में डालें और प्रत्येक बार पानी का स्वाद चखें। कुछ कणों को मिलाने के बाद आप अनुभव करेंगे कि अब पानी की मिठास पूर्व मिठास से अधिक है। पानी में मिलाए गए चीनी के कणों की संख्या जिससे मिठास का अनुभव पूर्व में हुए मिठास के अनुभव की तुलना में 50 प्रतिशत अवसरों पर भिन्न हो तो उसे मिठास की भेद देहली कहेंगे। इस प्रकार, भौतिक उद्दीपक में वह न्यूनतम परिवर्तन जो 50 प्रतिशत प्रयासों में संवेदन भिन्नता कराने में सक्षम है उसे भेद सीमा कहते हैं।

अवधान (Attention)

आप जिस कमरे में बैठकर पढ़ रहे है, वहां अनेक वस्तुएं मौजूद है जो आपके लिये उद्दीपक हो सकती है जैसे कुर्सी, टेबल, पंखा, पुस्तकें आदि। परन्तु इन सभी उद्दीपकों पर आपका ध्यान नहीं जाता है। आपका ध्यान पुस्तक के उस पृष्ठ पर है जिसे आप पढ़ रहे है। इसका अर्थ यह है कि हम सभी उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया नहीं करते है। हम अपनी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार कुछ उद्दीपकों को चुनकर उनके प्रति ही अनुक्रिया करते है। मनोविज्ञान में इस तरह की चयनात्मक प्रक्रिया को अवधान या ध्यान कहा जाता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि चयन के अतिरिक्त, अवधान अन्य गुणों जैसे– सतर्कता, एकाग्रता तथा खोज आदि से भी संबंधित होता है। सतर्कता का आशय व्यक्ति की तत्परता (readiness)

से होता है जिससे वह अपने समक्ष आए उद्दीपक का सामना करता है। अपने विद्यालय की दौड़ में भाग लेते समय, आपने दौड़ प्रारंभ होने वाली लाइन पर प्रतिभागियों को दौड़ने के लिए सीटी बजने की प्रतीक्षा में सतर्क स्थिति में देखा होगा। एक समय में कुछ विशेष वस्तुओं के बोध के लिए अन्य वस्तुओं को दृष्टि से बाहर रखते हुए उस पर ध्यान केंद्रित करने की प्रक्रिया को एकाग्रता कहते हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा में विद्यार्थी शिक्षक के भाषण पर ध्यान देते हैं तथा विद्यालय के विभिन्न भागों से आते सभी प्रकार के शोरगुल पर वे ध्यान नहीं देते हैं। खोज एक दशा होती है जिसमें प्रेक्षक वस्तुओं के समुच्चय में से उसके कुछ विशिष्ट उपसमुच्चयों पर ध्यान देता है। उदाहरण के लिए, जब आप अपने छोटे भाई या बहन को विद्यालय से लेने जाते हैं तो अनेक लड़के—लड़कियों में आप मात्र उन्हें ही देखते हैं। इस तरह के क्रियाकलापों के लिए लोगों को कुछ प्रयास करना पड़ता है। हम एक विशेष समय में मात्र कुछ उद्दीपकों पर ही ध्यान दे सकते हैं। प्रश्न यह है कि इनमें से किन उद्दीपकों का चयन होगा। मनोवैज्ञानिकों ने उद्दीपकों के चयन को निर्धारित करने वाले अनेक कारकों का पता लगाया है।

अवधान को प्रभावित करने वाले कारक

अवधान को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। ये सामान्यतया उद्दीपकों की विशेषताओं तथा व्यक्तियों की विशेषताओं से संबंधित होते हैं। इन्हें सामान्यतया 'बाह्य' एवं 'आंतरिक' कारकों में वर्गीकृत किया जाता है।

बाह्य कारक (external factors) उद्दीपकों के लक्षणों से संबंधित होते हैं। जैसे उद्दीपक किस प्रकार का है दृष्टि उद्दीपक व्यक्ति का ध्यान श्रवण उद्दीपक की तुलना में अपनी ओर जल्दी खींच लेता है। सिनेमाघर में दीवार पर लगे पोस्टरों ध्यान ध्वनि की तुलना में अधिक जाता है। यदि व्यक्ति के सामने उद्दीपक में कोई परिवर्तन हो तो व्यक्ति का ध्यान तुरन्त उस तरफ चला जाता हैं। जैसे कमरे में चलता हुआ पंखा अचानक बंद हो जाए तो हमारा ध्यान उस तरफ चला जाता है। यदि कोई उद्दीपक नया है तो भी वह व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। हमारी नई पोशाक पर अन्य व्यक्तियों का ध्यान चला जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी दिन विद्यालय में प्रतिदिन से हटकर धोती कुर्ता पहन कर आ जाता है तो अन्य विद्यार्थियों का ध्यान उस ओर चला जाता है। इस प्रकार उद्दीपक से जुड़े अन्य कारक जैसे उद्दीपक का अधिक आकार, अधिक तीव्रता, पुनरावृत्ति होना, अन्य उद्दीपकों से भिन्नता होना आदि भी व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर खींचते है।

आंतरिक कारक (internal factors) व्यक्ति के अंदर पाए जाते हैं। जब हम भूखे होते हैं तो भोजन की हलकी गंध की तरफ भी हमारा ध्यान चला जाता है। जिस विद्यार्थी को परीक्षा देनी होती है, वह परीक्षा न देने वाले विद्यार्थी की तुलना में शिक्षक के भाषण पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है। जिस व्यक्ति की रूचि क्रिकेट में होती है, उसका ध्यान क्रिकेट से जुड़ी बातों पर अधिक रहता है। यदि आप अपने घर पर किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो घर के मुख्य दरवाजे की आवाज पर आपका ध्यान अधिक होगा, चाहे उस समय टेलीविजन उच्च आवाज पर चल रहा हो। वस्तुएँ अथवा घटनाएँ, जो रुचिकर होती हैं, व्यक्तियों के ध्यान में शीघ्रतापूर्वक आती हैं। व्यक्ति जिस उद्दीपक का अर्थ समझता है उस पर उसका ध्यान अधिक तेजी से चला जाता है। जैसे बस स्टेशनों पर हिन्दी, अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाशाओं में लिखे हुए वाक्यों में से हिन्दी जानने वाले व्यक्ति का ध्यान हिन्दी वाक्य पर अधिक तेजी से जाता है। जो उद्दीपक व्यक्ति के लिये अर्थहीन होते है, उस पर व्यक्ति का ध्यान नहीं जाता या देरी से जाता है। पूर्व प्रशिक्षण का भी ध्यान पर प्रभाव पड़ता है। जैसे एक डॉक्टर का ध्यान रोगी व्यक्ति की ओर चला जाता है क्योंकि उन्हें रोग के लक्षण, उपचार आदि में विशेष प्रशिक्षण मिला होता है। इस प्रकार हम देखते है कि अवधान या ध्यान के निर्धारकों में उद्दीपक से जुड़े बाह्य कारकों के साथ साथ व्यक्ति से जुड़े आन्तरिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

प्रत्यक्षीकरण का अर्थ

प्रत्यक्षीकरण (perception) की प्रक्रिया संवेदना से प्रारंभ होती है। प्रत्यक्षीकरण हमें किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति का होता है। जिन व्यक्तियों, घटनाओं या वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसे उद्दीपक कहा जाता है। जब कोई उद्दीपक व्यक्ति के सामने उपस्थित होता है तो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उसकी संवेदना प्राप्त होती है। इस संवेदना की व्याख्या कर उस उद्दीपक को समझा जाता है कि वह उद्दीपक क्या है। इसे प्रत्यक्षीकरण कहा जाता है। प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की व्याख्या करते है, उन्हें संगठित करते है। संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में अन्तर है। संवेदना प्रत्यक्षीकरण के ठीक पहले की प्रक्रिया है। संवेदना को समझ कर, व्याख्या कर व्यक्ति के द्वारा अर्थ प्रदान कर दिया जाए तो यह प्रत्यक्षीकरण बन जाता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति किसी गंध को सूंघ सकता है तो यह संवेदना होगी। लेकिन यदि व्यक्ति गंध को पहचान कर यह

बता सके कि यह किसकी गंध है तो यह प्रत्यक्षीकरण का उदाहरण है।

प्रत्यक्षणात्मक संगठन के सिद्धांत

हम किसी वस्तु के विभिन्न भागों को अलग अलग नहीं देख कर उसको संगठित समग्र अथवा पूर्ण वस्तु के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, हम साइकिल को एक पूर्ण वस्तु के रूप में देखते हैं, न कि विभिन्न भागों ;जैसे– सीट, पहिया तथा हैण्डिल के एक संग्रह के रूप में। ऐसे कई कारक है जो किसी वस्तु के विभिन्न भागों को एक अर्थयुक्त समग्र में संगठित करते में सहायता करते है। इन कारकों का अध्ययन करते हुए गेस्टाल्टमनोवैज्ञानिक (gestalt psychologists) द्वारा प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियम बनाए गए। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का एक सम्प्रदाय है जिसमें कोहलर (Kohler)] कोफ्रका (Koffka) तथा वर्दीमर (Wertheimer) प्रमुख हैं। गेस्टाल्ट एक नियमित आकृति अथवा रूप को कहते है। अब हम प्रत्यक्षणात्मक संगठन के सिद्धान्तों (principles of perceptual organisation) में से कुछ नियमों को समझते है।

निकटता का सिद्धांत (principle of proximity)

जो वस्तुएँ किसी स्थान अथवा समय में एक दूसरे के निकट होती हैं वे एक दूसरे से संबंधित अथवा एक समूह के रूप में दिखती हैं। उदाहरण के लिए निम्न चित्र में बिंदुओं के एक वर्ग प्रतिरूप जैसा नहीं दिखता है, बल्कि बिंदुओं के स्तंभ की एक शृंखला के रूप में दिखाई देता है।

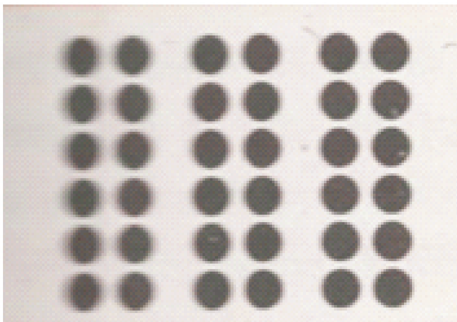

समानता का सिद्धांत (principle of similarity)

जिन वस्तुओं में समानता होती है तथा विशेषताओं में वे एक दूसरे के समान होती हैं वे एक समूह के रूप में प्रत्यक्षित होतीहैं। निम्न चित्र में छोटे वृत्त एवं वर्ग निकट होते हुए भी अलग अलग पक्ति में दिखाई दे रहे। जबकि वृत्तों में समानता होने से वृत्तों की पक्तिएवं वर्गों में समानता के कारण वर्गों की एक पक्ति एकान्तरित रूप में दिखाई देती है।

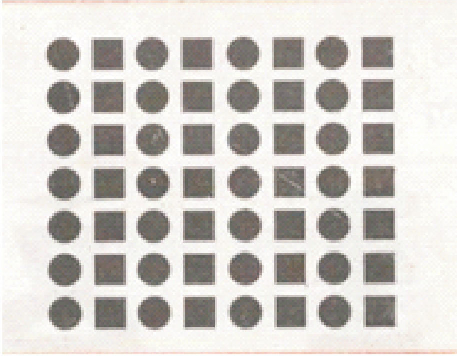

निरंतरता का सिद्धांत (principle of continuity)

यह सिद्धांत बताता है कि जब वस्तुएँ एक निरन्तरता के रूप में प्रतीत होती हैं तो हम उनका प्रत्यक्षीकरण एक दूसरे से संबंधित के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, हमें अ–ब तथा स–द रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई दिखती हैं, जबकि यहां अलग अलग चार रेखाएँ केंद्र पर मिल रही हैं।

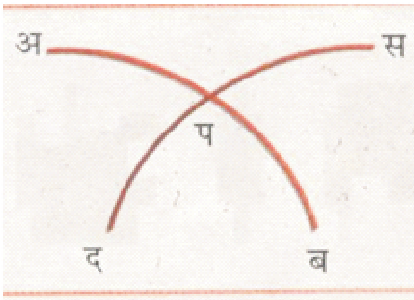

अविच्छिन्नता का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार जब एक क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से घिरा होता है तो उसे हम आकृति के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए चित्र की प्रतिमा सफेद पृष्ठभूमि में चार चित्रों के रूप में दिखाई देती है न कि शब्द LIFE के रूप में दिखती है।

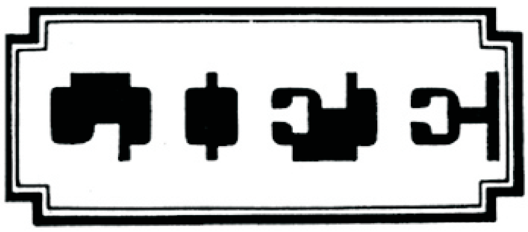

पूर्ति का सिद्धांत (principle of closure)

उद्दीपन में जो लुप्त अंश होता है उसे हम भर लेते हैं तथा

वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण उनके अलग–अलग भागों के रूप में नहीं बल्कि समग्र आकृति के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए चित्र में रिक्त स्थान को पूर्ण करने की प्रवृत्ति के कारण इसे क्रमशः वर्ग एवं वृत्त के रूप में देखते हैं।

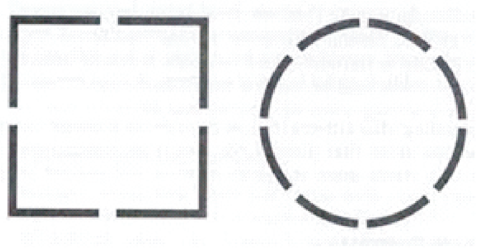

प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले कारक

1. प्रत्यक्षण ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है, जिस पर अनेक कारको या निर्धारको का प्रभाव पड़ता है । जिन्हें निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है –

क) व्यक्तिगत कारक
ख) सामाजिक कारक
ग) सांस्कृतिक कारक
घ) राजनीतिक कारक

क) प्रत्यक्षीकरण के व्यक्तिगत कारक

1. व्यक्ति की आवश्यकता– व्यक्ति की भारीरिक आव यकता भूख, प्यास, यौन, नींद है । यदि व्यक्ति को भूख की आवश्यकता है तो वह अनेक उद्दीपनों मे से भोज्य पदार्थ का चयन करके उसी का प्रत्यक्षण करता है । व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर शारीरिक आवश्यकताओं के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ प्रतिश्ठा प्रेरक, उपलब्धि प्रेरक, आकांक्षा स्तर प्रेरक आदि प्रभावित करते हैं

2. व्यक्तिगत मूल्य– व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण पर उसके व्यक्तिगत मूल्यों का प्रभाव पड़ता है । एक ही उद्दीपन को लोग अपने भिन्न भिन्न व्यक्तिगत मूल्यों के कारण भिन्न भिन्न रूप में प्रत्यक्षीकरण करते हैं । ब्रूनर तथा गुडमैन ने अपने प्रयोग धनी तथा गरीब परिवार के बच्चों पर किया तथा ज्ञान हुआ कि गरीब बच्चों की नजर में सिक्के का मूल्य अधिक था , अपेक्षाकृत अमीर बच्चों की तुलना में । इस प्रकार उनका प्रत्यक्षण उनके व्यक्मितगत मूल्यों के अनुकूल हुआ ।

3. व्यक्तिगत मनोवृति – व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी मनोवृति के अनुकूल देखता है । अपने दुश्मन का प्रत्यक्षीकरण हमें जिस रूप में होता है , उस रूप में मित्र का प्रत्यक्षण नहीं होता ।

4. व्यक्तिगत पूर्वधारणा– व्यक्ति पर पूर्वधारणा का प्रभाव भी पड़ता है । जैसे – प्रजातीय , जाति पूर्वधारणा , धर्म–पूर्वधारणा इत्यादि ।

5. मनोदशा (Moods) – किसी उद्दीपन के प्रत्यक्षीकरण पर हमारी मनोदशा का प्रभाव पड़ता है । जब व्यक्ति सुखद मनोदशा में होता है तो आस पास की वस्तुएँ भी उसे आनंददायक प्रतीत होती है ।

ख) प्रत्यक्षीकरण के सामाजिक कारक

व्यक्ति के प्रत्यक्षण को प्रभावित करने में सामाजिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण है । वे कारक हैं –

1. सामाजिक मानक (Social Norms)– प्रत्येक समाज में कुछ निश्चित नियम होते हैं । जिसका पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है । इन मानकों का गहरा प्रभाव व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर होता है ।

2. सामाजिक प्रथाएँ– प्रत्येक समाज में कई तरह की प्रथाएँ प्रचलित होती है । इन प्रथाओं में भिन्नता होने के कारण भिन्न भिन्न समाज के लोगों का संज्ञान या प्रत्यक्षीकरण अलग अलग होता है ।

3. सामाजिक शक्ति– प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित शक्तियाँ होती हैं, जिसका प्रत्यक्षण पर प्रभाव पड़ता है ।

ग) प्रत्यक्षीकरण के सांस्कृतिक कारक

सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव भी व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण पर पड़ता है । एक अध्ययन में अमरीकन संस्कृति तथा गैरयूरोपीयन संस्कृति के व्यक्तियों को कुछ कुछ आकृतियाँ दिखाई गई । जिनसे म्यूलरलायर भ्रम उत्पन्न हो सकते थे । परिणामों में पाया गया कि अमरीकन प्रयोज्यों ने पंख रेखा को तीर रेखा से बड़ा जबकि गैर यूरोपीयन संस्कृतियों के बच्चों ने इस तरह का भ्रम स्पश्ट रूप से नहीं देखा गया ।

घ) राजनीतिक कारक

व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण के निर्धारण में राजनीतिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक राजनीतिक दल के वि ोश मानक होते हैं । उसी के अनुरूप प्रत्यक्षण करता है । इसी राजनीतिक सम्बद्धता के कारण साम्यवादी दल तथा पूँजीपति दल के सदस्यों के प्रत्यक्षीकरण में तात्विक अन्तर देखा जाता है ।

क्रियाकलाप 5.1 :–

प्रत्यक्षीकरण को निर्देशित करने के लिए अपने मित्र से ऑखें बंद करने को कहिए । बोर्ड पर 12, 13, 14, 15 लिखिए उससे 5

सेकण्ड़ के लिए ऑख खोलने के लिए कहिए और बोड पर देखने के लिए कहिए । अब नोट कीजिए कि उसने क्या देखा । केवल 12, 14, 15 को अ , स , द से प्रतिस्थापित करते रहिए, जैसे 'अ 13 स द' उसने जो पुनः देखा उसे नोट करने को कहिए । बहुत से लोग 13 के स्थान पर '' ब '' लिखते हैं ।

भ्रम (illusion)

हमारे प्रत्यक्षीकरण हमेशा सही नहीं होते हैं। कभी–कभी हम संवेदी सूचनाओं की सही व्याख्या नहीं कर पाते हैं। इसी कारण वास्तविक उद्दीपक और उसके प्रत्यक्षीकरण में अन्तर आ जाता है। हमारी ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त सूचनाओं की गलत व्याख्या से उत्पन्न गलत प्रत्यक्षीकरण को सामान्यतया भ्रम कहते हैं। उदाहरण के लिये हम अंधेरे में चलते हुए किसी रस्सी को मार्ग में पड़ा देखते है, अंधेरा होने के कारण हम रस्सी को रस्सी नहीं समझ कर सांप समझते है। यह हमारा भ्रम है। क्योंकि उद्दीपक 'रस्सी' की गलत व्याख्या 'सांप' के रूप में करते है।

मूलर–लायर भ्रम

भ्रम का एक और उदाहरण मूलर–लायर भ्रम (Muller-Lyer Illusion) है जो निम्न चित्र में प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र में दोनों रेखाओं की लम्बाई समान है। एक रेखा के सिरे तीर नुमा (arrow-headed) है जबकि दूसरी रेखा के सिरे पंख नुमा (feather-headed) है। दोनों रेखाओं की लम्बाई समान होते हुए भी हमें पंखनुमा सिरे वाली रेखा तीरनुमा रेखा की लम्बाई से अधिक प्रतीत होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी उद्दीपक का गलत प्रत्यक्षीकरण ही भ्रम है।

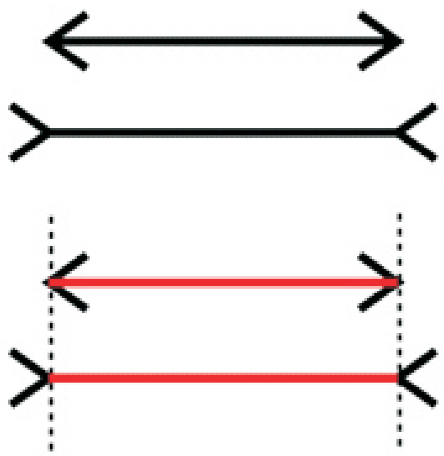

क्रियाकलाप – 5.2

सभी विद्यार्थी समूह में बैठकर '' म्यूलर लायर भ्रम '' प्रयोग कर देखे अथवा अपनी कॉपी में तीर रेखा तथा पंख रेखा बना कर उनका प्रत्यक्षण कीजिए तथा बताइये कौनसी रेखा बड़ी प्रतीत होती है

प्रमुख पद

संवेदना, संवेदी सीमांत, निरपेक्ष देहली, विभेदक सीमान्त, अवधान, प्रत्यक्षण, भ्रम

महत्वपूर्ण बिन्दु

प्रस्तुत इकाई में हमने संवेदना संवेदी ग्राहक तथा प्रत्यक्षण, अवधान को समझा ।

किसी विशेष ज्ञानंद्रिय द्वारा किसी उद्धीपक या वस्तु का प्रारम्भिक अनुभव संवेदना कहलाता है ।

- उद्धीपक एवं इनकी व्यक्ति द्वारा की गई संवेदनाओं के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा में किया जाता है उसे मनोभौतिकी कहते हैं ।
- अवधान को प्रभावित करने में व्यक्ति के बाह्य तथा आन्तरिक कारको का योगदान रहता है ।
- जब कोई उद्धीपक व्यक्ति के सामने उपस्थित होता है तो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उसकी संवेदना प्राप्त होती है। इस संवेदना की व्याख्या कर उस उद्धीपक को समझा जाता है , वह उद्धीपक क्या है । इसे प्रत्यक्षीकरण कहते हैं ।
- निकटता का सिद्धान्त, समानता का सिद्धान्त, निरन्तरता का सिद्धान्त, अविच्छिन्नता का सिद्धान्त पूर्ति का सिद्धान्त ये सभी प्रत्यक्षणात्मक संगठन सिद्धान्त हैं ।
- हमारी ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त सूचनाओ ंकी गलत व्याख्या से उत्पन्न गलत प्रत्यक्षीकरण का सामान्यतया भ्रम कहते हैं ।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्न में से कौनसी बाहय ज्ञानेन्द्रिय नहीं है?

अ. नाक　　　ब. त्वचा

स. कान　　　द. गतिसंवेदी

2. निम्न में से कौन गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक नहीं है?

अ. कोहलर　　　ब. कोफका

स. वाटसन　　　द. वर्दीमर

3. शरीर के संवेदी ग्राहकों द्वारा प्राप्त प्रारम्भिक सूचना कहलाती है ?

अ. प्रत्यक्षीकरण   ब. संवेदना

स. संज्ञान   द. अनुकूलन

4. उद्दीपक में जो लुप्त अंश होता है उसे हम प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति स्वयं भर लेता है, यह प्रत्यक्षणात्मक संगठन का कौनसा नियम है?

अ. निरन्तरता   ब. निकटता

स. पूर्ति   द. समानता

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. निरपेक्ष सीमान्त क्या है ?
2. अवधान से आप क्या समझते हैं ?
3. गेस्टाल्टवादियों के नाम बताईये ?
4. म्यूलर लायर भ्रम को बताईये ?
5. मनोभौतिकी किसे कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. हमारे शरीर की बाह्य ज्ञानेन्द्रियां कौन कौनसी है?
2. विभेदक सीमान्त को परिभाषित करें।
3. प्रत्यक्षीकरण किसे कहते है ?
4. प्रत्यक्षणात्मक संगठन का निकटता का सिद्धान्त क्या है ?
5. प्रत्यक्षणात्मक संगठन का पूर्ति का सिद्धान्त क्या है ?
6. अवधान को प्रभावित करने वाले आन्तरिक कारक कौनसे है ?
7. भ्रम को परिभाषित करें।

दीर्घत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियमों को सचित्र समझाईये।
2. संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में उदाहरण देते हुए अन्तर समझाईये।
3. अवधान को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
4. निरपेक्ष व विभेदक सीमान्त में अन्तर बताईये। उदाहरण भी दीजिए।

कार्य परियोजना

पत्रिकाओं में छपे हुए कोई भी पांच विज्ञापन संगहित कीजिए। उन्हें 10 व्यक्तियों को दिखाईये। सभी से यह पूछिये कि वे इस विज्ञापन में क्या प्रत्यक्षीकृत करते है। सभी व्यक्तियों के प्रत्यक्षीकरण की भिन्नता या समानता का अध्ययन कीजिए। यह भी देखिए कि विज्ञापन के किन पहलूओं पर व्यक्ति का ध्यान अधिक जाता है।

उत्तर

1. द   2. स   3. ब   4. स

इकाई 6

अधिगम

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात आप बता सकेंगे कि –

- अधिगम क्या है?
- अधिगम के विभिन्न प्रकार व प्रक्रियाएँ (Procedures) कौन–कौनसी है।
- अधिगम के विभिन्न सिद्धान्त कौन–कौन से है।
- अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक कौन से है।
- अधिगम नियमों के जानकारी की दैनिक जीवन में क्या उपयोगिता है ।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
अधिगम का अर्थ व स्वरूप
अधिगम के प्रतिमान
प्राचीन अनुबंधन
क्रियाप्रसूत/ साधनात्मक अनुबंधन
प्रेक्षणात्मक अधिगम
संज्ञानात्मक अधिगम
शाब्दिक/ वाचिक अधिगम
अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
अधिगम सिद्धान्तों की उपयोगिता
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति जन्म के समय केवल सीमित संख्या में अनुक्रिया की क्षमता रखता है। परन्तु जैसे–जैसे शिशु का विकास होता जाता है, वह अनेक प्रकार की अनुक्रियाएँ करने लगता है। वह अपने निकट के व्यक्तियों (माता–पिता, दादा, दादी इत्यादि), वस्तुओं (पानी, दूध इत्यादि) को पहचानना सीख लेता है। थोड़ा और विकास होने पर दूसरे व्यक्तियों को देखकर उनकी नकल कर अनेक क्रियाओं को करने लगता है। अक्षरों को पहचानना, शब्दों और वाक्यों को बनाना, उन्हें लिखना सीखता है। घटनाओं, वस्तुओं की विशेषताओं को सीख कर उनका वर्गीकरण करना सीखता है। इसके अतिरिक्त पेशीय कौशलों (जैसे साइकिल, कार चलाना) तथा सामाजिक कौशलों (जैसे दूसरों से वार्तालाप करना, प्रभावशाली तरीके से अन्तःक्रिया करना) को भी सीखता है। अपने जीवन की विविध परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने के लिए व्यवहारों को सीखता है, जिससे जीवन सुखमय तथा खुशहाल बनें। इस पाठ में अधिगम को समझाया गया है। सबसे पहले अधिगम के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। अधिगम कैसे करते हैं। अधिगम की मात्रा तथा गति को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट किया है। अंत में अधिगम प्रक्रियाओं के ज्ञान का जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यक्ति को सुखमय बनाने में उपयोगिता को समझाया गया है।

अधिगम का अर्थ व स्वरूप

(Meaning and Nature of Learning) :

सीखना व्यक्ति के व्यवहार की एक प्रमुख प्रक्रिया है। अधिगम से तात्पर्य **''व्यवहार या व्यवहार की क्षमता में तुलनात्मक रूप से स्थायी परिवर्तन है जो अनुभव अथवा अभ्यास के कारण होता है।''**

इस परिभाषा से अधिगम के निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते है :

I. सीखने की प्रक्रिया में व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास अथवा अनुभव के कारण होता है।

ii. सीखना में व्यवहार में परिवर्तन तुलनात्मक रूप से स्थायी होता है। यह इंगित करता है कि अधिगम में व्यवहार परिवर्तन लम्बे समय तक रहता है। दवा, थकान, बीमारी आदि के कारण होने वाला परिवर्तन सीखना नहीं है। उदाहरण के लिए थकान होने पर एक बालक बैठ जाता है, तो इस व्यवहार परिवर्तन को इसे सीखना नहीं कहेंगे।

iii. परिवर्तन व्यवहार की क्षमता तथा बाह्य (overt) व्यवहार दोनों में हो सकते हैं। उदाहरण के लिए नक्शे का अध्ययन कर एक व्यक्ति अपने मित्र के घर का रास्ता नक्शे से सीख लेता है यद्यपि वह वहाँ वास्तविकता में नहीं जाता है। यहां इसे सीखना कहेंगे कि बालक ने मित्र के घर का रास्ता सीख लिया है।

iv. व्यवहार में परिवर्तन अनुभव या अभ्यास के कारण होता है। उदाहरण के लिए एक बालक किसी गर्म स्टोव को छूता है और उसका हाथ जल जाता है। इस अनुभव के बाद बालक पुनः उस स्टोव को नहीं छूता है। इस व्यवहार को अधिगम कहेंगे। इसी प्रकार बार–बार प्रयास करने पर बालक पंखा कहने पर पंखे की ओर इशारा करना सीखता है।नृत्य करना, साइकिल चलाना, किसी कविता को बार–बार दोहराना अभ्यास द्वारा सीखने का उदाहरण है। व्यवहार में कोई भी परिवर्तन जो अनुभव या अभ्यास के बिना होता है उसे अधिगम नहीं कहेंगे। वृद्धि, परिपक्वता, मादक पदार्थ या थकान से होने वाला व्यवहार परिवर्तन सीखना नहीं कहलाता है।

v. अधिगम एक अनुमानित प्रक्रिया है और निष्पादन से भिन्न है। निष्पादन व्यक्ति का बाहरी व्यवहार या क्रिया है। उदाहरण के लिए आप एक कविता बार–बार दोहरा कर सीखते है। अध्यापक के कहने पर आप उस कविता को सुना देते हैं। कविता का यह सुनाना निष्पादन कहलाएगा जिसके आधार पर अध्यापक यह अनुमान करता है कि आपने कविता सीख ली।

अधिगम के प्रतिमान (Paradigm of Learning) :

अधिगम अनेक प्रकार से हो सकता है। मनोवैज्ञानिक कुछ विधियों को सरल अनुक्रियाओं के अर्जन में उपयोग लेते है तो अन्य विधियों को जटिल अनुक्रियाएं सीखने के काम लेते है। सबसे सरल प्रकार का सीखना, जो साहचर्य पर आधारित होता है, अनुबंधन (conditioning) कहलाता है।

मनोविज्ञान में दो प्रकार के अनुबंधन दिए गये है प्राचीन अनुबंधन (classical conditioning) तथा साधनात्मक (instrumental) / क्रियात्मक अनुबंधन (operant conditioning)। इसके साथ ही प्रेक्षणात्मक अधिगम (observational learning), संज्ञानात्मक अधिगम (cognitive learning) तथा शाब्दिक/वाचिक अधिगम (Verbal learning), संप्रत्यय अधिगम (concept learning) तथा कौशल अधिगम (Skill learning) भी बताए गये है। यहाँ इनमें से कुछ का वर्णन दिया गया है।

प्राचीन अनुबंधन (Classical Conditioning)

इस प्रकार का सीखना सबसे पहले इवान पी. पावलव **(Ivon P. Pavlov)** ने प्रस्तावित किया। पावलव जो शरीर वैज्ञानिक (Physiologist) थे, ने पाचन प्रक्रिया के अध्ययन के दौरान पाया कि कुत्ते उन तश्तरियों को जिनमें उन्हें भोजन दिया जाता था, देखने पर भी लार स्त्रावित करना प्रारम्भ कर देते थे। इसी के आधार पर पावलव ने कुत्तों पर प्रयोग किए और प्राचीन अनुबंधन सिद्धांत दिया। प्राचीन अनुबंधन के अनुसार जब एक तटस्थ उद्दीपक (Neutral Stimulus) को स्वाभाविक उद्दीपक (Natural Stimulus) के साथ युग्मित कर प्रस्तुत किया जाता है तो कुछ प्रयासों के पश्चात प्राणी उस तटस्थ उद्दीपक के प्रति भी वैसी ही अनुक्रिया करने लगता है जो वह स्वाभाविक उद्दीपक के साथ करता है।

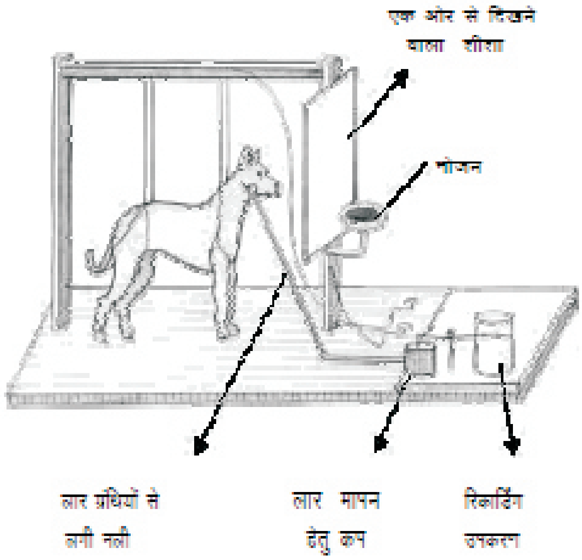

चित्र 6.1 : पावलव के प्रयोग में अनुबंधन के लिए कुत्ता

पावलव का प्रयोग : पावलव ने अपने प्रयोग के लिए एक कुत्ते को बाक्स में बांध कर रखा और उसे कुछ समय के लिए उसमें छोड़ दिया। साथ ही कुत्ते के लारग्रन्थियों से स्त्रावित होने वाले स्त्राव को एक ट्यूब के द्वारा एक मापनी ग्लास में लेने के आवश्यक उपाय किये (चित्र 6.1)। अब कुत्ते को उन्होंने भूखा रखा और घण्टी की आवाज के तुरंत बाद ही उसे भोजन दिया। कुत्ते को घंटी एक तटस्थ उद्दीपक है क्योंकि इसके प्रति कुत्ते का लार

स्त्रावित करना स्वाभाविक अनुक्रिया नहीं है, किन्तु भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक है जिसके प्रति कुत्ता लार स्त्रावित करता है। अगले कुछ दिनों तक इसी प्रकार घंटी की आवाज के बाद भोजन प्रस्तुत किया गया। ऐसे कुछ प्रयासों के बाद परीक्षण प्रयास में केवल घंटी बजाई गई किन्तु भोजन नहीं दिया गया। यह पाया गया कि कुत्ते ने घंटी की आवाज पर भी इस आशा में कि भोजन आएगा उसी तरह लार स्त्रावित की जिस प्रकार वह भोजन प्रस्तुत करने पर करता था। घंटी तथा भोजन के मध्य का यह साहचर्य अनुबंधन कहलाता है।

प्राचीन अनुबंधन के प्रमुख संप्रत्यय

अनअनुबन्धित उद्दीपक (US) :

पावलव के प्रयोग में भोजन अनअनुबंधित उद्दीपक है क्योंकि भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक है, जिसके लिए कुत्ता लार स्त्रावित करता है। अन्य शब्दों में अनअनुबन्धित उद्दीपक (US) बिना सीखा हुआ या स्वाभाविक उद्दीपक होता है जिसके लिए प्रतिवर्ती, अनैच्छिक अनुक्रिया होती है।

अनअनुबन्धित अनुक्रिया (UR) : लार भोजन के लिए स्वाभाविक अनुक्रिया है। अतः पावलव के प्रयोग में यह अनअनुबंधित अनुक्रिया है। अनअनुबंधित उद्दीपक के प्रति होने वाली प्रतिवर्ती क्रिया अनअनुबंधित अनुक्रिया कहलाती है।

अनुबंधित उद्दीपक (CS) : जब एक तटस्थ उद्दीपक **(NS)** को किसी अनअनुबंधित उद्दीपक के साथ बार–बार युग्मित करने से वह समान प्रकार की प्रतिवर्ती अनुक्रिया उत्पन्न करने का कारण बनता है, तो इस तटस्थ उद्दीपक को अनुबन्धित उद्दीपक **(CS)** कहते है (अनुबंधित अर्थात सीखा हुआ)। पावलव के प्रयोग में घंटी जो एक तटस्थ उद्दीपक है (घंटी की आवाज पर लार स्त्रावित होना स्वाभाविक अनुक्रिया नहीं है) को बार–बार भोजन के साथ देने पर कुत्ता केवल घंटी की आवाज होने पर भी लार स्त्रावित करता है (जैसा वह भोजन को देने पर करता था)। इस तरह घंटी एक अनुबंधित उद्दीपक का उदाहरण होगा।

अनुबंधित अनुक्रिया (CR) : अनुबंधित उद्दीपक के प्रति होने वाली सीखी गई प्रतिवर्ती अनुक्रिया को अनुबंधित अनुक्रिया कहते है। पावलव के प्रयोग में घंटी के प्रति होने वाली अनुक्रिया (लार)

चित्र 6.2 : प्राचीन अनुबंधन के चरणों और संक्रियाओं के बीच संबंध

अनुबंधन के चरण	उद्दीपक की प्रकृति	अनुकिया की प्रकृति
अनुबंधन के पूव	भोजन (स्वाभाविक उद्दीपक)	लार स्त्राव (स्वाभाविक अनुकिया)
	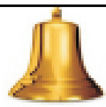 घंटी की ध्वनि (तटस्थ उद्दीपक)	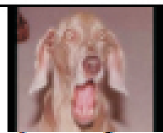 चौंकना (लार की अनुकिया नही)
अनुबंधन के समय	घंटी की ध्वनि + भोजन (तटस्थ उद्दीपक)+(स्वाभाविक उद्दीपक)	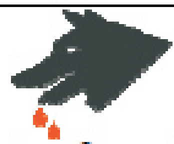 लार स्त्राव (स्वाभाविक अनुकिया)
अनुबंधन के पश्चात	घंटी की ध्वनि (अनुबंधित उद्दीपक)	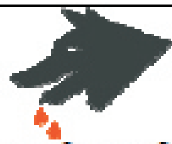 लार स्त्राव (अनुबंधित अनुकिया)

अनुबंधित अनुक्रिया का उदाहरण होगी।

दैनिक जीवन में प्राचीन अनुबंधन के अनेक घटनाएँ देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए एक बालक किसी साइकिल के पास जाता है और उसका टायर तेज आवाज के साथ फट जाता है। बच्चा डर जाता है। यदि ऐसा कुछ बार पुनः होता है तो बालक साइकिल को देखते ही डरने लगता है। इसी तरह हास्टल में अथवा विद्यालय में खाने की घंटी की आवाज सुनने पर ऐसी आशा होने लगती है कि अब भोजन आने वाला है और मुंह में लार बनने लगती है। इन उदाहरणों में साइकिल तथा घंटी अनुबंधित उद्दीपक (CS) के उदाहरण है जिनके साथ क्रमशः डरना तथा लार स्त्रावित करने की अनुबंधित अनुक्रिया (CR) साहचर्य स्थापित होने के कारण होती है। इसी प्रकार बालक को यदि चिकित्सक सफेद कोट में इंजेक्शन लगाता है तो कुछ घटनाओं के बाद बालक किसी को भी सफेद कोट में देखते ही भय की अनुक्रिया करता है। इस प्रकार के अधिकांश अतार्किक भय (Phobia) प्राचीन अनुबंधन के कारण होते है।

प्राचीन अनुबंधन के निर्धारक (Determinants of Classical Conditioning)

प्राचीन अनुबंधन में कितनी मजबूती तथा शीघ्रता से अनुक्रिया प्राप्त होती है, यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है। अनुबंधित अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक इस प्रकार है :

1. अनुबंधित तथा अनअनुबंधित उद्दीपकों के बीच का अन्तराल (Interval between CS & US)

प्राचीन अनुबंधन अनुबंधित (CS) तथा अनअनुबंधित (Ŭ) की शुरूआत के बीच के समय से प्रभावित होता है। प्राचीन अनुबंधन की इस आधार पर निम्नलिखित चार प्रक्रियाएँ होती है –

(I) सहकालिक अनुबंधन (simultaneous conditioning) में अनुबंधित तथा अनअनुबंधित उद्दीपक एक साथ दिए जाते है।

(ii) विलंबित अनुबंधन (delayed conditioning) में अनुबंधित उद्दीपक का प्रारम्भ होता है और तब अनअनुबंधित उद्दीपक दिया जाता है।

(iii) अवशेष अनुबंधन (trace conditioning) में अनुबंधित अनुक्रिया का आरम्भ तथा अंत हो जाता है, तब अनअनुबंधित उद्दीपक दिया जाता है। किन्तु इन दोनों उद्दीपकों के बीच कुछ समय का अंतर होता है।

(iv) पश्चगामी अनुबंधन (backward conditioning) में अनअनुबंधित उद्दीपक को पहले दिया जाता है और उसके पश्चात अनुबंधित उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है।

प्रयोगो में यह पाया गया कि अनुबंधित उद्दीपक तथा अनअनुबंधित उद्दीपकों के मध्य समय का अंतराल यदि कुछ सैकण्ड् का ही होता है तो प्राचीन अनुबंधन मजबूत व शीघ्र होता है। यह अंतर अधिक होने पर अनुबंधन में बहुत समय लगता है। विलंबित अनुबंधन अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त करने की प्रभावशाली विधि है। सहकालिक तथा अवशेष अनुबंधन से भी अनुबंधन प्रक्रिया प्राप्त होती है किन्तु पश्चगामी अनुबंधन प्रक्रिया में अनुक्रिया प्राप्त होने की संभावना न्यून होती है। अतः प्राचीन अनुबंधन में CS सदैव US के पहले ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

2. अनुबंधित उद्दीपकों के प्रकार तथा तीव्रता (Types and Intensity of Conditioned Stimuli) :

प्राचीन अनुबंधन में प्रयुक्त अनुबंधित उद्दीपक यदि एकदम भिन्न होता है (उदाहरण प्रयोगशाला में घंटी सामान्यतः नहीं होती) तो अनुबंधन शीघ्र होता है। अनुबंधित उद्दीपक की तीव्रता भी अनुबंधन को प्रभावित करती है। अनुबंधित उद्दीपक जितना अधिक तीव्र होगा, अनुबंधित अनुक्रिया के अर्जन की गति भी अधिक होगी अर्थात कम प्रयासों में ही अनुबंधन स्थापित होगा।

3. अनअनुबंधित उद्दीपकों के प्रकार (Types of unconditioned stimuli)

प्राचीन अनुबंधन के अध्ययनों में दो प्रकार के अनअनुबंधित उद्दीपकों का उपयोग किया जाता है – प्रवृत्यात्मक (ppetitive) तथा विमुखी (aversive)। प्रवृत्यात्मक उद्दीपक से उत्पन्न प्रक्रियाएं संतोष तथा प्रसन्नताएं देती है और स्वतः सुगम्य अनुक्रियाएं उत्पन्न करती है जैसे भोजन, पीना, दुलारना इत्यादि। विमुखी उद्दीपक जैसे शोर, पीड़ादायी सूई, आघात, कड़वा स्वाद इत्यादि दुखदायी और क्षतिकारक होते है और परिहार तथा पलायन (avoidance and escape) की अनुक्रिया उत्पन्न करते है। प्रयोगों में यह पाया गया है कि विमुखी प्राचीन अनुबंधन दो–तीन प्रयासों में ही स्थापित हो जाता है किन्तु प्रवृत्यात्मक प्राचीन अनुबंधन अनुबंधित अनुक्रिया के अर्जन में अधिक समय लगता है। अनुबंधित उद्दीपक की तीव्रता भी अनुबंधन को प्रभावित करती है।

क्रियाकलाप 6.1

अनुबंधन को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिए विद्यार्थियों से पूछा जा सकता है –

1. विद्यार्थियों को किसका भय है?
2. वे किस प्रकार विकसित हुए है?

3. उनमें से कौनसे भय को प्राचीन अनुबंधन प्रक्रिया द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है?

क्रियाप्रसूत / नैमित्तिक अनुबंधन (Operant/ Instrumental Conditioning)

सभी प्राणी दो प्रकार का व्यवहार करते है ऐच्छिक तथा अनैच्छिक। यदि आंधी के कारण आंख बंद होती है, खुलती है तो वह प्रतिवर्ती तथा अनैच्छिक व्यवहार है किन्तु आंख में कुछ गिर जाने पर यदि हम आंख को बंद करते है, खोलते है तो वह ऐच्छिक व्यवहार का उदाहरण होगा। प्राचीन अनुबंधन एक प्रकार का अधिगम है जो प्रतिवर्ती तथा अनैच्छिक व्यवहार के अधिगम को बताता है। **नैमित्तिक / क्रियाप्रसूत अनुबंधन** ऐच्छिक व्यवहार के अधिगम को स्पष्ट करता है। ऐच्छिक अनुक्रियाएं प्राणी द्वारा अपने वातावरण में सक्रिय होने पर होती है, ऐच्छिक रूप से प्रकट होती है और प्राणी के नियंत्रण में रहती है। स्किनर ने इसे क्रियाप्रसूत (operant) कहा और क्रिया प्रसूत व्यवहार का अनुबंधन क्रियाप्रसूत अनुबंधन (operant conditioning) कहा गया।

थार्नडाइक का प्रयोगः

थार्नडाइक ने ऐच्छिक अनुक्रियाओं को समझने के लिए कुछ प्रयोग किए। उन्होंने एक भूखी बिल्ली को पिंजरे में रखा जिसमें एक लीवर दबा कर बिल्ली बाहर आकर पिंजरे के बाहर रखे भोजन को पा सकती थी। थार्नडाइक ने पाया कि बिल्ली ने बाहर निकलने के प्रयास में अनेक अनुक्रियाएँ की। पिंजरे में इधर–उधर घूमी, अपने पंजे से इधर–उधर खरोंचा, धक्का दिया इत्यादि। इन्हीं प्रयासों में संयोगवश बिल्ली से लीवर दब जाने से पिंजरे का दरवाजा खुल गया और बिल्ली ने बाहर आकर भोजन खा लिया। इसमें लीवर एक उद्दीपक है, लीवर दबाना अनुक्रिया है और परिणाम पिंजरे से बाहर निकलना और भोजन प्राप्त करना है (संतोषजनक)। बिल्ली ने लीवर दबाने तथा बाहर निकलने के मध्य संबंध को अभी नहीं सीखा। किन्तु इसी तरह के कुछ प्रयासों के बाद बिल्ली ने लीवर को दबाने और दरवाजा खुलने के मध्य साहचर्य को सीख लिया। बिल्ली को अब पिंजरे में रखते ही वह लीवर दबा कर बाहर आने लगी।

इस अनुसंधान के बाद थार्नडाइक ने **प्रभाव का नियम (law of effect)** दिया। इसके अनुसार यदि एक अनुक्रिया के संतोषजनक परिणाम होते है तो उसकी पुनरावृत्ति होती है और यदि असंतोषजनक परिणाम होते है तो अनुक्रिया के पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति नहीं होगी।

थार्नडाइक के इस प्रयोग से ऐच्छिक व्यवहार का अध्ययन शुरू हुआ किन्तु इस क्षेत्र में **बी.एफ.स्कीनर (B.F. Skinner)** के अनुसंधान तथा कार्य महत्वपूर्ण रहे और उन्होंने क्रियाप्रसूत अनुबंधन दिया।

स्किनर का प्रयोगः

स्किनर ने क्रियाप्रसूत अनुबंधन से सम्बन्धित अध्ययन चूहों और कबूतरों पर किए थे। प्रयोग हेतु स्किनर ने चूहे को पिंजरे में रखा। पिंजरे में दीवार पर एक लीवर लगा था जिसका संबंध एक भोजन पात्र से था। जब लीवर को दबाया जाता था तो भोजन पात्र से निश्चित मात्रा में भोजन लीवर के नीचे रखे प्लेट में गिर जाता था। भूखे चूहे को पिंजरे में रखने पर वह भूख से परेशान होकर इधर–उधर घूमने लगा और पंजों से दीवारों को खरोचने लगा (अन्वेषी व्यवहार)। इन्हीं प्रयासों में चूहे से संयोग से लीवर दब गया जिससे प्लेट में भोजन आ गया और चूहे ने भोजन खा लिया।

कुछ समय बाद पुनः यही अन्वेषी व्यवहार पुनः आरम्भ हुआ। जैसे–जैसे प्रयासों की संख्या बढ़ती गई, चूहे को बाक्स में रखने और उसक द्वारा लीवर दबाने के बीच का समय घटता गया। कुछ प्रयासों के बाद चूहे ने लीवर दबाने की अनुक्रिया और भोजन प्राप्त करने के मध्य साहचर्य को सीख लिया। इसे क्रियाप्रसूत अनुबंधन कहा गया। अब चूहा स्किनर बाक्स में रखते ही लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करने लगा। यहां लीवर दबाने की अनुक्रिया क्रियाप्रसूत अनुक्रिया है, जिसका परिणाम भोजन प्राप्ति (सुखद) है। इस तरह क्रियाप्रसूत अनुबंधन में सीखना अनुक्रिया के परिणामों पर आधारित है।

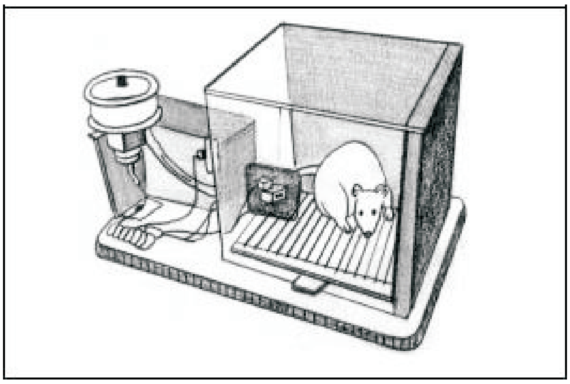

चित्र 6.3 : स्किनर के प्रयोग में पिंजरे में चूहा

इस प्रकार के अधिगम को **नैमित्तिक अनुबंधन (instrumental conditioning)** भी कहते है क्योंकि इसमें लीवर दबाने की अनुक्रिया भोजन प्राप्ति का एक निमित्त या साधन है। दैनिक जीवन में नैमित्तिक अनुबंधन के अनेक उदाहरण देखने को मिलते है। बच्चे रेड़ियो, टीवी, मोबाईल, कैमरा इत्यादि को नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धान्त के आधार पर

चलाना सीखते है। बच्चे उन व्यक्तियों से विनम्रतापूर्वक बात करते है, जिनसे वे कुछ पाना चाहते है। चाकलेट रखने के स्थान को खोजकर चाकलेट खा लेते है। इस तरह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्राणी नैमित्तिक अनुबंधन द्वारा बहुत से कार्यो को सीखता है।

क्रियाप्रसूत अनुबंधन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting operant conditioning)

नैमित्तिक/क्रियाप्रसूत अनुबंधन में अनुक्रिया (व्यवहार) परिणाम पर आधारित होती है। ऐसे परिणाम को पुनर्बलन (reinforcement) कहते है। **पुनर्बलन ऐसी कोई भी घटना या उद्दीपक है जो किसी वांछित अनुक्रिया के घटित होने की संभावना को बढ़ाता है।** पुनर्बलन की विशेषताएं अनुक्रिया की दिशा तथा मजबूती को प्रभावित करती है। पुनर्बलन के प्रकार, संख्या, अनुसूची, गुणवत्ता इत्यादि विशेषताएं क्रियाप्रसूत अनुबंधन को निर्धारित करती है। अनुक्रिया के घटित होने व पुनर्बलन के मध्य समयांतराल, अनुबंधित की जाने वाली अनुक्रिया का स्वरूप भी एक महत्वपूर्ण कारक है जो अधिगम को प्रभावित करता है। इनमें से कुछ कारकों का विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।

पुनर्बलन के प्रकार (types of reinforcement):

कोई भी उद्दीपक या घटना जो व्यवहार को पुनर्बलित करने के लिए उपयोग की जाती है, समान नहीं होती। ये पुनर्बलन प्राथमिक या द्वितीयक हो सकते है, धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकते है। **प्राथमिक पुनर्बलक (primary reinforcer)** जैविक रूप से महत्वपूर्ण होता है जैसे भोजन, पानी इत्यादि। **द्वितीयक पुनर्बलक (Secondary reinforcer)** वह पुनर्बलक है जिसने प्राणी के अनुभव के कारण पुनर्बलक की विशेषताएं प्राप्त कर ली है। धन, प्रशंसा, श्रेणियां द्वितीयक पुनर्बलक के उदाहरण है। पुनर्बलकों के उपयोग से वांछित अनुक्रियाएं प्राप्त हो सकती है।

धनात्मक पुनर्बलक वे उद्दीपक होते है जिनका परिणाम सुखद होता है और जो अनुक्रिया को दृढ़ करते हैं और उसे बनाए रखते है। भोजन, पैसा, प्रशंसा इत्यादि धनात्मक पुनर्बलक के उदाहरण है। **ऋणात्मक पुनर्बलक** अप्रिय, दुखद तथा पीडादायी होते हैं। ये पुनर्बलक प्राणी को पलायन तथा परिहार (escape and avoidance) की अनुक्रिया सिखाते है। डांट से बचने के लिए समय पर गृहकार्य करना, ठंड से बचने के लिए ऊनी कपड़े पहनना, कार्यालय में जुर्माने से बचने के लिए समय पर पहुंचना आदि ऋणात्मक पुनर्बलन के उदाहरण है। ऋणात्मक पुनर्बलन दण्ड़ से भिन्न है। ऋणात्मक पुनर्बलन में अनुक्रिया के परिणामस्वरूप दुखद उद्दीपक हटता है। दुखद उद्दीपक के हटने से प्राणी की अनुक्रिया दृढ़ होती है।

प्राचीन अनुबंधन	क्रियाप्रसूत अनुबंधन
1 अनुक्रियाएँ अनैच्छिक तथा प्रतिवर्ती होती है।	अनुक्रियाएँ ऐच्छिक होती हैं।
2 पूर्वगामी उद्दीपक साहचर्य निर्माण में महत्वपूर्ण होता हैं।	साहचर्य निर्माण में परिणाम में महत्वपूर्ण होता हैं।
3 अनअनुबंधित उद्दीपक (US) का प्रस्तुतिकरण प्रयोगकर्ता के नियंत्रण में होता हैं।	पुनर्बलन का मिलना या न मिलना प्राणी के नियंत्रण में होता हैं।
4 प्राणी निष्क्रिय होता हैं।	प्राणी सक्रिय होता हैं।
5 अनुबंधित उद्दीपक के बाद अनअनुबंधित उद्दीपक के आने की प्रत्याशा होती हैं।	एक सही अनुक्रिया के पश्चात पुनर्बलन की प्रत्याशा होती है।
6 लक्ष्य एक उद्दीपक के प्रति एक नई अनुक्रिया उत्पन्न करना है जो सामान्यतया नही होती है।	लक्ष्य किसी पूर्वउपलब्ध अनुक्रिया की दर को बढाना हैं।

दण्ड़ के उपयोग से अनुक्रिया की संभावना कम होती है। दण्ड़ अनुक्रिया को दबाता है जबकि पुनर्बलन अनुक्रिया की संभावना बढ़ाता है। अपशब्द बोलने पर बालक की पिटाई करना, कक्षा में शोर करने पर विद्यार्थी को बेंच पर खड़ा करना दण्ड़ के उदाहरण होंगे। इन उदाहरणों में दण्ड़ से क्रमशः अपशब्द बोलने तथा शोर करने की अनुक्रिया कम होने की संभावना होगी।

यह ध्यान देने योग्य है कि दण्ड़ से कोई भी अनुक्रिया स्थाई रूप से समाप्त नहीं होती। दण्ड़ यदि हल्का और विलम्बित हो तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता। दण्ड़ कठोर होने पर अवांछित व्यवहार के दमन का प्रभाव भी अधिक होगा किन्तु यह प्रभाव लम्बे समय तक नहीं होता। दैनिक जीवन में भी देखते है कि कुछ बालकों को अपशब्द बोलने पर दण्ड़ मिलता है। यदि यह दण्ड़ कम है तो बालक के व्यवहार में अंतर नहीं होता परन्तु यह दण्ड़ बहुत अधिक है तो कुछ समय बाद कभी–कभी पुनः वह इस व्यवहार को करता दिखाई देता है।

इस प्रकार कभी–कभी दण्ड़ चाहे जितना भी कठोर क्यों न हो इसका अनुक्रिया के दमन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत दण्ड़ देने वाले व्यक्ति के लिए नकारात्मक भाव (घृणा/क्रोध) के भाव विकसित हो जाते है।

पुनर्बलन की संख्या, गुणवत्ता तथा मात्रा (number, quality and amount of reinforcement) :

पुनर्बलन की संख्या तथा गुणवत्ता बढ़ने से क्रियाप्रसूत अनुबंधन की गति व दृढ़ता में भी वृद्धि होती है। पुनर्बलन की संख्या से तात्पर्य प्रयासों की संख्या से है जिनमें प्राणी को पुनर्बलन प्राप्त हुआ हो। पुनर्बलन की गुणवत्ता से आशय प्राणी का पुनर्बलन के प्रति आकर्षण से है। मिठाई की तुलना में रोटी अथवा ब्रेड कम गुणवत्ता का पुनर्बलन है। पुनर्बलन की मात्रा से अर्थ पुनर्बलित करने वाले उद्दीपक (भोजन या पानी या डांट, जुर्माना इत्यादि) की प्रत्येक प्रयास में दी जाने वाली मात्रा से है।

पुनर्बलन अनुसूची (reinforcement schedule):

पुनर्बलन अनुसूची अनुबंधन के प्रयासों में पुनर्बलन देने की व्यवस्था को कहते है। क्रियाप्रसूत अनुबंधन में कितने प्रयासों में अथवा किन–किन प्रयासों में पुनर्बलन उपलब्ध होगा यह अनुबंधन के अर्जन तथा उसके स्थायित्व को प्रभावित करता है। पुनर्बलन प्राणी को यदि प्रत्येक वांछित अनुक्रिया घटित होने पर दिया जाता है तो उसे **सतत पुनर्बलन अनुसूची** कहते है। इसके विपरीत **आंशिक पुनर्बलन** (partial reinforcement) अनुसूची में वांछित अनुक्रियाओं पर कभी पुनर्बलन उपलब्ध कराया जाता है और कभी नहीं। यह पाया गया है कि आंशिक पुनर्बलन द्वारा सीखी गई अनुक्रिया अधिक स्थायी होती है और उसका विलोप देरी से होता है। सतत पुनर्बलन में अनुक्रिया का अधिगम और विलोप दोनों ही शीघ्र होता है।

विलम्बित पुनर्बलन : वांछित अनुक्रिया के देरी से पुनर्बलन उपलब्ध कराने पर अनुबंधन का स्तर निम्न हो जाता है। पुनर्बलन यदि अनुक्रिया के तत्काल बाद दिया जाए तो यह सर्वाधिक प्रभावी होता है। उदाहरण के लिए बालक द्वारा किसी अच्छे कार्य को करने पर तत्काल प्रशंसा अधिक प्रभावी होगी।

प्रमुख अधिगम प्रक्रियाएं :

प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत दोनों ही प्रकार के अनुबंधनों में अनेक प्रक्रियाएं घटित होती हैं। ऐसी ही कुछ प्रक्रियाओं में विलोप, स्वतः पुनः प्राप्ति, सामान्यीकरण, विभेदन आदि का विवरण नीचे दिया गया है।

विलोप: विलोप (extinction) का अर्थ सीखी गई अनुक्रिया के लुप्त होने से है जो वांछित अनुक्रिया के बाद उपलब्ध पुनर्बलक को उस परिस्थिति से हटा लेने के कारण होती है। प्राचीन अनुबंधन में अनुबंधित उद्दीपक–अनुबंधित अनुक्रिया (CS-CR) (घंटी लार) के मध्य साहचर्य स्थापित होने के बाद यदि अनअनुबंधित उद्दीपक (भोजन) उपस्थित न हो तो अनुबंधन दुर्बल होता हुआ लुप्त हो जाता है। इसी प्रकार क्रियाप्रसूत अनुबंधन में यदि एक बार अनुबंधन स्थापित हो जाने के बाद में अनुक्रिया करने पर पुनर्बलन (लीवर दबाने की अनुक्रिया पर भोजन) मिलना समाप्त कर दिया जाए तो धीरे धीरे अनुक्रिया (लीवर दबाना) कम होते हुए लुप्त हो जाती है। अन्य शब्दों में प्राणी अनुक्रिया करना बंद कर देता है।

सीखी हुई अनुक्रिया का पुनर्बलन न होने पर भी वह कुछ समय तक रहती है। अन्य शब्दों में अधिगम की प्रक्रिया विलोप का प्रतिरोध (resistance to extinction) करती है। कोई सीखी हुई अनुक्रिया कितने समय तक विलुप्त नहीं होगी यह कई कारकों से प्रभावित होता है। सीखते समय पुनर्बलित प्रयासों की संख्या अधिक होने पर सीखी हुई अनुक्रिया दृढ़ता के अधिकतम स्तर पर पहुंचती है। इस स्तर पर प्रयासों की संख्या का अनुक्रिया की दृढ़ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रयासों के दौरान पुनर्बलनों की संख्या बढ़ने के साथ विलोप का प्रतिरोध बढ़ता है। एक अधिकतम स्तर से प्रयास संख्या बढ़ाने के बाद विलोप का प्रतरोध कम होता है। यह पाया गया है कि जैसे–जैसे अर्जन प्रयासों के दौरान पुनर्बलनों की मात्रा (भोजन) बढ़ती है, विलोप का प्रतिरोध घटता है।

यदि अर्जन प्रयासों के समय पुनर्बलन विलंब से उपलब्ध किया जाए तो विलोपन देरी से होता है। आंशिक पुनर्बलन

अनुसूची से सीखी गई अनुक्रिया का विलोप के लिए अधिक प्रतिरोध होता है अर्थात् इसका विलोप कठिनाई से होता है।

स्वतः पुनप्राप्ति (spontaneous recovery): विलोपन के कुछ समय पश्चात अनुबंधित अनुक्रिया पुनः होते पाई गई है। इसे स्वतः पुनर्प्राप्ति कहते है। विलोपन के बाद अनुबंधित अनुक्रिया पूरी तरह विलुप्त नहीं होती और काफी समय बीत जाने के बाद सीखी गई अनुक्रिया अनुबंधित उद्दीपक के प्रति पुनः घटित होती है। ऐसी पुनर्प्राप्ति स्वाभाविक होती है और प्राचीन अनुबंधन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन दोनों में पाई जाती है। स्वतः पुनर्प्राप्ति को चित्र 6.4 में प्रदर्शित किया गया है।

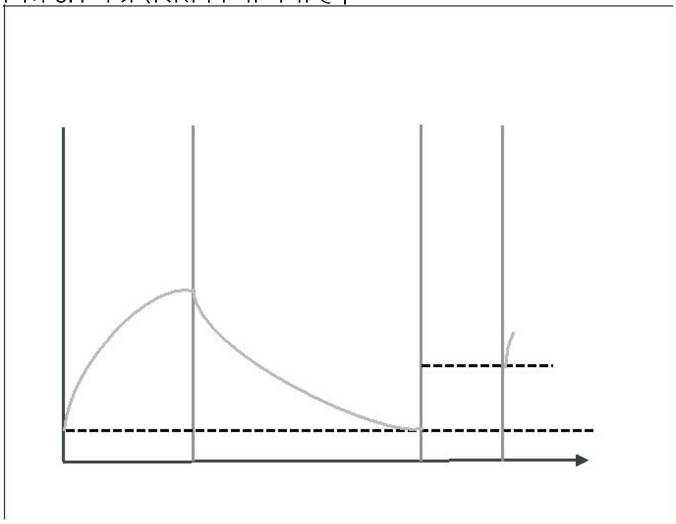

चित्र 6.4 : स्वतः पुनःप्राप्ति की घटना

सामान्यीकरण (Generalization): समान उद्दीपकों के प्रति समान अनुक्रिया करने को सामान्यीकरण कहते है। इसमें सीखी गई अनुक्रिया एक नए उद्दीपक से प्राप्त होती है। सामान्यीकरण की प्रक्रिया प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत दोनों अनुबंधनों में पाई जाती है। उदाहरण के लिए प्राचीन अनुबंधन में यदि कुत्ते ने घंटी की आवाज पर लार स्त्रावित करना सीख लिया। अनुबंधन स्थापित हो जाने पर जब अनुबंधित उद्दीपक से मिलता जुलता अन्य उद्दीपक (जैसे अन्य कोई आवाज) प्रस्तुत की जाए तो प्राणी इसके प्रति भी अनुबंधित अनुक्रिया (लार स्त्रावित) करता है। इसी प्रकार यदि एक बालक का डर किसी दाढ़ी वाले व्यक्ति से है और वह अन्य दाढ़ी वाले व्यक्तियों से भी डर प्रदर्शित करता है तो यह सामान्यीकरण का उदाहरण है।

विभेदन (Discrimination): सामान्यीकरण की पूरक प्रक्रिया विभेदन कहलाती है। विभेदन भिन्नता के प्रति अनुक्रिया होती है। उदाहरण के लिए पावलव के प्रयोग में यदि कुत्ते को किसी एक घंटी की आवाज का लार स्त्रावित होने की अनुक्रिया के साथ अनुबंधन होने के बाद यदि उस विशिष्ट घंटी से मिलती–जुलती आवाज की घंटी के प्रति लार स्त्रावित होने की अनुक्रिया नहीं करता तो वह विभेदन अधिगम का उदाहरण है। दैनिक जीवन में सामान्यीकरण और विभेदन अधिगम के उदाहरण देखने को मिलते है। प्रारम्भ में बालक अपनी मां से मिलती जुलते आकृति वालों को भी मां समझता है। किन्तु कुछ दिनों बाद वह मां को अन्य महिलाओं से विभेद कर अनुक्रिया करता है। विभेदन की अनुक्रिया प्राणी की विभेदन क्षमता या विभेदन के अधिगम पर निर्भर करती है।

प्रेक्षणात्मक अधिगम (Observational Learning):

प्रेक्षणात्मक अधिगम में व्यवहार का सीखना दूसरों को उस व्यवहार को करते हुए देखने/प्रेक्षण करने से होता है। बंदूरा (Bandura) और उनके सहयोगियों ने प्रेक्षणात्मक अधिगम पर प्रयोग किये हैं। एक अध्ययन में उन्होंने बालकों को पांच मिनिट की अवधि की एक फिल्म दिखाई। फिल्म में एक बड़े कमरे में बहुत से

बाक्स 6.2 अधिगम असहायता (learned helplessness)

सैलिगमैन तथा मायर (Saligman &Maier) ने सर्वप्रथम अधिगम असहायता की परिघटना को कुत्तों पर किये गये अध्ययन में पाया। उन्होने कुत्तों के एक समूह को प्राचीन अनुंबधन विधि से ध्वनि तथा विद्युत आघात दिया, जिसमें यें कुत्ते किसी भी तरह से आघात से नही बच सकते थे। इसके बाद उन्होने इन कुत्तो को ऐसी परिस्थिति में रखा जिसमें कुते ध्वनि के पश्चात पिंजरे के दूसरी ओर कूद कर विद्युत आघात से बच सकते थे।

सैलिगमैन तथा उनके साथियों ने पाया कि इस समूह के कुत्तो ने विद्युत आघात से बचने का कोई प्रयास नही किया और इन्होने आघात सहन किया दूसरे समूह के कुत्ते जिन्हें प्रथम परिस्थिति में नही रखा गया था वे ध्वनि की आवाज के बाद कूद कर आघात से बचने लगे।

यह परिघटना मनुष्यों में भी पाई जाती है। लगातार अफलता के बाद व्यक्ति कार्य के प्रति अपने प्रयासों को छोड देता है। अध्ययनों से प्रमाणित हुआ है कि अवसाद (depression) का एक कारण अधिगम असहायतापन है।

खिलौने रखे थे और उसमें एक खिलौना बड़ा सा गुड्डा (बोबो डाल) था। अब कमरे में एक लड़का प्रवेश करता है। एक स्थिति में लड़का खिलौनों विशेषरूप से बोबो डाल के प्रति आक्रमक व्यवहार प्रदर्शित करता है, उसे लात लगाता है, उस पर चिल्लाता है, उसे फेंकता है इत्यादि। दूसरी स्थिति में वह लड़का गैरआक्रमक तरीके से 'बोबो डॉल' व अन्य खिलौनों से व्यवहार करता है।

फिल्म दिखाने के बाद जब बच्चों को कमरे में अकेले रखा गया तो यह पाया गया कि जिन बच्चों ने आक्रामक व्यवहार का प्रेक्षण किया उन्होंने आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित किया। यद्यपि यहां किसी भी तरह का पुनर्बलन नहीं था। दूसरा समूह जिसने आक्रामक व्यवहार नहीं देखा उन्होंने आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित नहीं किया।

आगे के अध्ययनों में बंदूरा ने एक फिल्म में बालक (मॉडल) को बोबो डॉल को पीटते हुए दिखाया। अब एक प्रायोगिक परिस्थिति में बच्चों के एक समूह ने उस बालक को पुरस्कृत होते हुए देखा। दूसरी प्रायोगिक परिस्थिति में दूसरे समूह को उस बालक को दण्ड़ित होते दिखाया गया तथा तीसरी प्रायोगिक परिस्थिति में उस बालक को न दण्ड़ित किया गया और न ही इनाम दिया गया। इस प्रकार बच्चों के तीन समूहों को अलग–अलग फिल्में दिखाई गई। अब इन बच्चों को एक कमरे में खेलने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया। यह पाया गया कि वे बच्चे, जिन्होंने आक्रामक व्यवहार को इनाम पाते देखा था, सर्वाधिक आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित किया। जिन बच्चों ने आक्रामक व्यवहार को दंडित होते प्रेक्षण किया वे सबसे कम आक्रामक थे।

इस प्रयोग से स्पष्ट है कि बच्चों ने फिल्म का प्रेक्षण कर आक्रामकता सीखी। प्रेक्षण द्वारा अधिगम की प्रक्रिया में प्राणी ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु वह किस प्रकार से आचरण करेगा यह इस पर निर्भर करता है कि उसने मॉडल को पुरस्कृत होते देखा है या दंड़ित होते हुए।

बच्चे अधिकांश सामाजिक व्यवहार दूसरों का प्रेक्षण तथा नकल कर सीखते है। छोटे बालक विवाह, घर–घर, प्रीतिभोज आदि के खेल खेलते है। बड़ों की नकल करते है। टेलीविजन, पत्र–पत्रिकाओं इत्यादि में अपने पसन्द के और श्रेष्ठ व्यक्तियों को देखकर उसी तरह के व्यवहारों व जीवन शैली, कपड़े पहनना, बाल संवारना इत्यादि का अनुकरण करते है। परोपकार, नम्रता, परिश्रम, आलस्य, आदर इत्यादि गुण भी इस अधिगम विधि द्वारा सीखे जाते है। विभिन्न परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका ज्ञान भी हम दूसरों का प्रेक्षण कर अर्जित करते है और अनुकरण करते है। इस विधि को माडलिंग भी कहा जाता है।

बंदूरा ने अध्ययनों द्वारा **प्रेक्षण अधिगम के चार प्रमुख तत्व बताये।**

अवधान (*Attention*) : प्रेक्षण विधि से सीखने के लिए सीखने वाले का मॉडल पर ध्यान देना आवश्यक है। उदाहरण के लिए टेलीविजन या समाचार पत्र में देखकर हम उन्हीं व्यक्तियों के व्यवहार का अनुकरण कर सीखते है, जिन पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है अथवा जो आकर्षक होते है।

स्मृति (*Memory*) : सीखने वाले को माडल ने क्या किया है उसका स्मरण रहना आवश्यक है। उदाहरण के लिए किसी पकवान को देखकर बनाना सीखने के लिए उसके चरणों का स्मरण रखना आवश्यक है।

अनुकरण (*Ӏmitation*) : अधिगमकर्ता के लिए आवश्यक है कि उसमें मॉडल की क्रियाओं को अनुकरण करने की योग्यता हो। एक दो वर्ष का बालक किसी को जूते के फीते बांधते देखकर फीता बांधना तभी सीख सकता है जब उसके अनुकरण के लिए आवश्यक क्षमता उसके हाथों में हो।

अभिप्रेरणा (*Motivation*) : अधिगमकर्ता में क्रिया करने की पर्याप्त इच्छा होना आवश्यक है। नृत्य को देखकर वही व्यक्ति नृत्य सीख पाते है जिनमें उसकी अभिप्रेरणा हो अथवा जिनके उस व्यवहार को अभिप्रेरित किया गया हो।

क्रियाकलाप :

निम्नलिखित अभ्यास द्वारा प्रेक्षणात्मक अधिगम का अनुभव प्राप्त कर सकते है। विद्यालय जाने वाले सात–आठ बच्चों को एकत्र कर उनके सामने कागज की नाव या कोइ चित्र या कुछ अन्य जो बालकों को रूचिकर हो, के बनाने की क्रिया का प्रदर्शन दो–तीन बार दोहराइए और बच्चों को देखने के लिए कहिए। दो–तीन बार दोहराने के बाद उन बालकों को नाव या उस वस्तु को बनाने के लिए दीजिए। बालक आसानी से उस नाव या वस्तु को बना पायेंगे।

संज्ञानात्मक अधिगम (Cognitive Learning)

प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन में अधिगम में केवल बाह्य व्यवहार (S-R या S-S सम्बन्ध जो प्रेक्षणीय है) पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यवहार के समय होने वाली मानसिक प्रक्रियाओं जिससे ज्ञान में परिवर्तन आता है, को महत्वपूर्ण माना और अधिगम प्रक्रिया को संज्ञान के आधार पर समझने का प्रयास किया। **अंर्तदृष्टि अधिगम तथा अव्यक्त अधिगम** संज्ञानात्मक उपागम को स्पष्ट करते है।

अन्तर्दृष्टि अधिगम (Insight Learning):

कोहलर जो एक गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक थे, ने चिम्पांजी पर प्रयोगों के आधार पर अन्तर्दृष्टि/सूझ का सिद्धान्त दिया। कोहलर ने अपने समस्या समाधान के प्रयोगों में चिम्पांजी के पिंजरे के बाहर केले रखे जिसे केवल हाथों से नहीं लिए जा सकते थे। चिम्पांजी ने उन केलों को पहले हाथों से लेने का असफल प्रयास किया। तत्पश्चात् पिंजरे में रखे डंडे की सहायता से उन केलों को प्राप्त किया। आगे के प्रयोगों में केलों को और अधिक दूरी पर रखा गया कि केले केवल एक डंडे की सहायता से न मिल पाये। पिंजरे में दो डंडे रखे गये जो एक दूसरे में जुड़ सकते थे। चिम्पांजी ने पहले केवल एक और तब दूसरे डंडे से केले प्राप्त करने का असफल प्रयास किया। काफी प्रयासों के बाद चिम्पांजी को अचानक ही सूझ विकसित हुई और उसने दोनों डंडों को ध्यान से देखा और एक दूसरे में फिट किया और केले प्राप्त किए। कोहलर ने इसे अन्तर्दृष्टि कहा जो समस्या के विभिन्न भागों के बीच संबंधों के प्रत्यक्षीकरण से अचानक आती है।

अन्तर्दृष्टि अधिगम में एक बार समाधान मिल जाने पर अगली बार समस्या उपस्थित होने पर उसकी पुरावृत्ति तत्काल की जा सकती है। इससे स्पष्ट है कि अधिगम केवल उद्दीपकों व अनुक्रियाओं के बीच अनुबंधित साहचर्य नहीं है, वरन् साधन तथा साध्य के बीच एक संज्ञानात्मक संबंध है जिसका सामान्यीकरण अन्य परिस्थिति में भी हो सकता है।

अव्यक्त अधिगम (Latent Learning):

अव्यक्त अधिगम में एक नया व्यवहार सीख लिया जाता है किन्तु व्यवहार प्रदर्शित नहीं होता जब तक कि उसे पुनर्बलित नहीं किया जाता है। टोलमैन (Tolman) ने अव्यक्त अधिगम के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयोग किए है। टोलमैन ने चूहों के दो समूहों को भूल–भुलैया में छोड़ा। एक समूह को भूल–भुलैया के अंत में भोजन दिया गया और दूसरे समूह को कोई पुरस्कार नहीं दिया गया। पहले समूह ने आरंभ से अंत तक का रास्ता जल्दी ही खोज लिया, किन्तु दूसरे समूह ने अधिगम का संकेत प्रदर्शित नहीं किया। बाद में जब दूसरे समूह के चूहों को भी पुरस्कृत किया गया तो वे भी भूल–भुलैया के आरम्भ से अंत तक उतनी ही क्षमता से दौड़ने लगे जितना कि प्रथम समूह के दौड़ते थे।

टोलमैन ने बताया कि दूसरे समूह (जिन्हें पुनर्बलित नहीं किया गया था) ने भी भूल–भुलैया के मानचित्र को समझ लिया था और उसका संज्ञानात्मक मानचित्र विकसित किया। उन्होंने अव्यक्त अधिगम का केवल तब ही प्रदर्शन किया जब उन्हें पुनर्बलन दिया गया।

वाचिक अधिगम (Verbal Learning) :

वाचिक अधिगम मनुष्यों तक ही सीमित है। शाब्दिक अधिगम से तात्पर्य चिन्हों प्रतीकों, संख्याओं, सप्रत्ययों, अक्षरों, अक्षरों के समूह, वाक्य इत्यादि के अर्थ सीखने तथा उनके आशय को समझने से है। इसमें व्यक्ति शाब्दिक एकांशों को संबधित करता है, उन क्रमों को सीखता है जिसमें शाब्दिक एकांशों को उपस्थित किया जाता है, एकांशों के मध्य अंतर करता है और एकांशों को दिखाए गए क्रम से भिन्न स्वतंत्र क्रम में प्रत्याहान करता है। मनुष्य अपना ज्ञान साधारणतया शब्दों के माध्यम से ही अर्जित करते है। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य बन जाता है। वाचिक अधिगम की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक कई तरह की सामग्रियों का उपयोग करते है, जैसे निरर्थक शब्द (कचट, नरप), सार्थक शब्द (कमल, निगम), वाक्य तथा अनुच्छेद।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक (Factors influencing Learning)

अधिगम की प्रक्रिया को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। कुछ कारक सीखी जाने वाली सामग्री से संबंधित है तो कुछ अधिगमकर्ता से तो कुछ वातावरण से सम्बन्धित है। इनमें से कुछ प्रमुख कारकों का वर्णन नीचे दिया गया है :

1. सीखी जाने वाली सामग्री की विशेषताऐं:

सीखी जाने वाली सामग्री की लम्बाई, अर्थपूर्णता, परिचितता, सामग्री के मध्यम साहचर्य, आकर्षकता, स्पष्टता इत्यादि अधिगम को प्रभावित करते हैं। अर्थपूर्ण, परिचित सामग्री का अधिगम शीघ्र होता है। सामग्री के मध्य सबंध भी अधिगम को सुगम बनाता है। एक कहानी का एक भूगोल के पाठ की तुलना में जल्दी अधिगम होता है क्योंकि कहानी में घटनाओं के मध्य सबंध होता है। यदि पाठ्यसामग्री के मध्य भी सबंध बनाकर अधिगम किया जाए तो वह सरलता से सीखा जाएगा।

पुनः स्मरण विधि से सीखने में वाचिक अधिगम संगठित हो जाता है। **संगठनात्मक प्रक्रिया** से तात्पर्य है कि प्रतिभागी शब्दों का पुनः स्मरण नए क्रम में करता है न कि उस क्रम में जिसमें वे प्रस्तुत किये गये थे। यह संगठन दी गई सामग्री पर तथा व्यक्ति स्वयं पर भी निर्भर कर सकता है। बोसफिल्ड ने चार श्रेणियों (पशु, नाम, पेशा तथा सब्जी) के कुल 60 शब्दों की एक सूची यादच्छिक क्रम में प्रस्तुत की। पुनः स्मरण में प्रतिभागियों ने शब्दों को वर्ग के अनुसार संगठित किया यद्यपि वे उस क्रम में नहीं दिये गये थे। इसे **वर्ग गुच्छन (Category Clustering)** कहा गया। व्यक्तिनिष्ठ संगठन में प्रतिभागी शब्दों या एकांशों का अपने–अपने तरीकों से

संगठित कर उनका पुनः स्मरण करते है। संगठनात्मक प्रक्रियाओं द्वारा अधिगम सरल होता है।

क्रियाकलाप

विद्यार्थियों को 5 विषयों, 5 फलों, 5 जानवरों तथा 5 फर्नीचरों के नाम की सूची यादच्छिक क्रम में दीजिए। शब्दों को प्रस्तुत करने के बाद विद्यार्थियों को उन्हें बिना क्रम का ध्यान रखे लिखने के लिए दीजिए। अब विद्यार्थियों को विश्लेषण करने के लिए कहिए कि क्या उन्होंने पुनः स्मरण में शब्दों का संगठन किया है, और यदि किया है, तो किस प्रकार किया है। चर्चा कीजिए कि किस प्रकार पाठ्यक्रम विषयों को याद करने के लिए इस परिघटना का उपयोग कर सकते हैं।

2. वातावरण:

अधिगम वातावरण द्वारा भी प्रभावित होता है। शांत व स्वच्छ वातावरण उचित रोशनी, तापमान, वातायन में अधिगम सुगम होता है।

3. अधिगमकर्ता से संबंधित कारक (Factors related to the Learner)

अभिप्रेरणा : अभिप्रेरणा से तात्पर्य प्राणी की ऐसी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था से है जो प्राणी को उसकी वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उद्वेलित करती है। अभिप्रेरणा व्यक्ति को लाभ प्राप्त करने के लिए प्रबलता से काम करने के लिए उर्जा प्रदान करती है। अधिगम के लिए प्राणी का अभिप्रेरित होना आवश्यक है। यदि बालक मिठाई खाना चाहता है तो इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह रसोई में रखे विभिन्न जारों को टटोलता है और मिठाई का जार खोज लेता है। इसी प्रकार कक्षा में भी वही बालक अधिक परिश्रम करते है जिनमें विभिन्न विषयों को सीखने की अभिप्रेरणा होती है। सीखने के लिए अभिप्रेरणा आन्तरिक अथवा बाह्य हो सकती है। कक्षा में विद्यार्थी मेहनत करके पढ़ता है क्योंकि अच्छे अंकों की प्राप्ति पर उसे नई साइकिल या प्रशंसा मिलेगी। यह बाह्य अभिप्रेरणा होगी। इसके विपरीत यह विद्यार्थी इसलिए कक्षा में परिश्रम करके सीखता है कि इससे उसे आनन्द मिलता है तो यह आन्तरिक अभिप्रेरणा का उदाहरण होगा।

अभिप्रेरणा के लिए दिए जाने वाले **पुनर्बलन की अनुसूची** भी सीखने को प्रभावित करती है । सतत पुनर्बलन अनुसूची (प्रत्येक प्रयास में पुनर्बलन) में प्राणी सीखता भी जल्दी है और सीखी गई अनुक्रिया का विलोप भी शीघ्र होता है । आंशिक पुनर्बलन (कुछ प्रयासों में पुनर्बलन और कुछ में नहीं) अनुसूची द्वारा सिखाई गई अनुक्रिया का विलोप भी कठिनाई से होता है।

संवेदी क्षमता : विभिन्न प्रजातियों के प्राणियों की संवेदी क्षमताओं तथा अनुक्रिया करने की योग्यताओं में भिन्नता होती है । अन्य शब्दों में प्राणियों में अधिगम क्षमता उनके जैविक क्षमता के कारण परिसीमित हो जाती है। अधिगम विभिन्न संवेदी अंगों की क्षमताओं और प्रत्यक्षीकरण की योग्यता पर भी निर्भर करता है। संवेदी अंग वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की जानकारी के लिए आवश्यक है।

आयु तथा परिपक्वता (Age and Maturation):
अधिगम आयु तथा परिपक्वता पर भी निर्भर करता है। विभिन्न कार्यो को सीखने के लिए पर्याप्त परिपक्वता का होना आवश्यक है।

थकान तथा ऊब (Fatigue and Boredom): थकावट तथा ऊब, एकरसता (Manatony), तथा नीरसता अधिगम को कम करती है। थकान मानसिक तथा शारीरिक शिथिलता से संबंधित है, जो सीखने की क्षमता और सामर्थ्य को कम करती है। ऊब कार्य में विरक्तता या इच्छा की कमी को इंगित करती है। दैनिक जीवन में भी हम देखते है कि थकान होने पर हम किसी भी पाठ को अच्छी तरह नहीं सीख पाते है। शारीरिक व मानसिक ताजगी (जैसे नींद पूरी होने के पश्चात) की अवस्था में अधिगम सुगम होता है।

संवेगात्मक स्थिति (Emotional Condition): खुशी, प्रसन्नता तथा संतुष्टि की अवस्थाओं में सीखना सुगम होता है जबकि नकारात्मक संवेग जैसे क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, अवसाद इत्यादि अधिगम में बाधा पैदा करते है।

पूर्व अधिगम (Previous learning): नए अधिगम पर पूर्व अधिगम का प्रभाव पडता है, इसे अधिगम अंतरण (transfer of learning/ training) कहते हैं। पूर्व अधिगम यदि नए अधिगम में सहायक होता है तो धनात्मक अंतरण कहलाता है, यदि बाधक होता है तो ऋणात्मक अंतरण, और यदि नए अधिगम पर कोइ प्रभाव नहीं डालता है तो शून्य अंतरण कहलाता है। उदाहरण के लिए संस्कृत सीखने के बाद हिन्दी सीखना सरल होता है तो यह धनात्मक अंतरण होगा। अंग्रेजी का पाठ सीखने का गणित सीखने पर कोइ प्रभाव नहीं होता तो यह शून्य अंतरण होगाा। साइकिल में ब्रेक का उपयोग हाथों से करने के बाद दो पहिया वाहन में पांवों से ब्रेक का उपयोग सीखना यदि बाधक है तो यह ऋणात्मक अंतरण का उदाहरण होगा।

उपर्युक्त कारकों के अतिरिक्त अधिगमकर्ता की रूचि (Interest), बुद्धि (Intelligence), अभियोग्यता (Aptitude), अभिवृत्ति (Attitude) भी अधिगम को प्रभावित करते है।

अधिगम सिद्धांतों के अनुप्रयोग
(Applications of Learning Theories)

अधिगम सिद्धांतों का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वांछित व्यवहारों के अर्जन व बढ़ाने तथा अवांछित व्यवहार को कम व समाप्त करने के लिए किया जाता है। प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन सामाजिक अधिगम, वाचिक अधिगम, प्रेक्षण अधिगम आदि के आधार पर विकसित तकनीकों और विधियों का उपयोग जीवन को समृद्ध व आनन्ददायक बनाने व समस्याओं को दूर करने के लिए किया जाता है।

बच्चों के पालन–पोषण में अधिगम सिद्धांतों का उपयोग हो सकता है। प्राचीन अनुबंधन का उपयोग कर बच्चों को खतरे तथा सुरक्षा के संकेतों को सिखाया जाता है। पुरस्कार के उपयोग से तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन सिद्धांत के उपयोग से बालकों को उचित व्यवहार जैसे पढ़ना, जीवन में अनुशासन, समय प्रबंधन का अपनाना इत्यादि बढ़ाया जा सकता है, अवांछित व्यवहार जैसे जिद करना, अंगूठा चूसना, मिट्टी खाना इत्यादि को खत्म किया जा सकता है। मॉडल के रूप में माता–पिता सामाजिक व्यवहारों को सीखने, मूल्यों के विकास में सहयोगी हो सकते है।

शिक्षण के क्षेत्र में विद्यार्थियों के अधिगम को सुगम बनाने, नई सूचनाओं के अर्जन लिए, विद्यार्थियों को अधिगम के लिए उत्साही बनाने में अधिगम सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है। अध्यापक द्वारा सही गृहकार्य/उत्तर देने पर प्रशंसा करना, टॉफी देना इत्यादि क्रियाप्रसूत अनुबंधन सिद्धांत का उपयोग है।

संगठन में कर्मचारियों की अनुशासनहीनता, अनुपस्थिति को कम करने, कार्य के प्रति रूचि बढ़ाने, आवश्यक कौशल विकसित करने, सुरक्षा उपकरणों का उपयोग करने इत्यादि के लिए अधिगम सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है।

प्रमुख पद

अधिगम, अनुबंधन, प्राचीन अनुबंधन, क्रियाप्रसूत अनुबंधन, अनुबंधित उद्दीपक, अनुबंधित अनुक्रिया, अनअनुबंधित उद्दीपक, अनअनुबंधित अनुक्रिया, सामान्यीकरण, विभेदीकरण, विलोपन, स्वत:पुनर्लाभ, प्रेक्षणात्मक अधिगम, पुनर्बलन, पुनर्बलन अनुसूची, धनात्मक व ऋणात्मक पुनर्बलन, दण्ड़, वाचिक अधिगम।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- अधिगम अनुभव तथा अभ्यास के कारण व्यवहार में या व्यवहार की क्षमता में होने वाला अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन है। सीखना अनुमान पर आधारित प्रक्रिया है और निष्पादन से भिन्न है। निष्पादन व्यक्ति का प्रेक्षित व्यवहार/अनुक्रिया है।

बाक्स 6.3 अधिगम अशक्तता (Learning disability) :

विद्यालय में कुछ बालक पढाई मे कठिनाई अनुभव करते है। इसके अनेक कारण हो सकते है ; जैसे – गरीबी , सांस्कृतिक , विश्वास ,बौद्विक अशक्कता ,संवेदी अक्षमता इत्यादि। इन्ही मे से एक कारक अधिगम अशक्तता है जिसके कारण किसी व्यक्ति को सीखने ,पढने , लिखने ,बोलने ,गणित के प्रश्न हल करने इत्यादि में कठिनाई होती है। अधिगम अशक्तता उन बच्चों में भी पाई जा सकती हैं जो सामान्य से श्रेष्ठ बुद्विवाले, सामान्य संवेदी प्रेरक तंत्र वाले होते हैं। अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में निम्नलिखित मे से कुछ लक्षण हो सकते है।

1 अक्षरों, शब्दों तथा वाक्याों को लिखने, लिखी हुई सामग्री को पढने तथा बोलने मे कठिनाई।

2 किसी एक विषय पर देर तक ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई।

3 स्थान व समय के बोध में कठिनाई।

4 पेशीय समन्वय तथा हस्तनिपुणता, शारीरिक संतुलन में कमी।

5 मौखिक निर्देशों को समझने और अनुसरण करने मे कठिनाई।

6 सामाजिक संबंधों के मूल्यांकन में कठिनाई।

7 दृष्टि, श्रवण, स्पर्श तथा गति से जुडे संकेतों के प्रत्यक्षीकरण में कठिनाई।

8 पठनवैकल्य (dyslexia) के लक्षण। जैसे प तथा फ, व तथा ब में अंतर करना कठिन होता हैं। समय पर उपचारी अध्यापन विधि द्वारा इन बालको की कठिनाई को कम किया जा सकता है। अन्यथा ये समस्याएँ जीवन पर्यन्त बनी रह सकती है और व्यक्ति के दिन प्रतिदिन की क्रियाओं, सामाजिक व पेशेवर जीवन को प्रभावित कर सकती हैं।

- प्राचीन अनुबंधन सर्वप्रथम पावलव ने सुझाया। इसमें प्राणी दो उद्दीपकों (तटस्थ तथा स्वाभाविक) के मध्य साहचर्य को सीखता है। जब तटस्थ (अनुबंधित) एवं स्वाभाविक (अनअनुबंधित) उद्दीपक को युग्मित कर प्रस्तुत किया जाता है तो प्राणी अनुबंधित उद्दीपक के प्रस्तुत होते ही अनअनुबंधित उद्दीपक के आने की प्रत्याशा में अनुबंधित अनुक्रिया करने लगता है।
- क्रियाप्रसूत अनुबंधन सर्वप्रथम स्किनर द्वारा बताया गया। क्रियाप्रसूत अनुबंधन अधिगम का एक प्रकार है जिसमें अनुक्रिया को पुनर्बलन द्वारा मजबूत बनाया जाता है। पुनर्बलन कोई भी वस्तु या घटना है जो पूर्वगामी अनुक्रिया की आवृत्ति बढ़ाता है। इस प्रकार अनुक्रिया परिणाम आधारित होती है। क्रियाप्रसूत अनुबंधन पुनर्बलन के प्रकार, अनुसूची पुनर्बलित प्रयासों की संख्या और पुनर्बलन में विलम्ब से प्रभावित होती है।
- प्रेक्षणात्मक अधिगम में मॉडल के व्यवहार का प्रेक्षण कर ज्ञान अर्जित करते है। निष्पादन इस पर निर्भर करता है कि मॉडल के व्यवहार को पुरस्कार दिया है अथवा दण्ड।
- वाचिक / शाब्दिक अधिगम चिन्हों, प्रतीकों, संख्याओं या अक्षरों, शब्दों या वाक्यों से सम्बन्धित है। वाचिक अधिगम को वातावरण, सामग्री की अर्थपूर्णता, परिचितता, व्यक्तिनिष्ठ संगठन, श्रेणी गुच्छन तथा अधिगमकर्ता से संबंधित कारक प्रभावित करते है। अधिगमकर्ता से संबंधित कारकों में अभिप्रेरणा, आयु व परिपक्वता, संवेदी अंगों तथा प्रत्यक्षीकरण की क्षमता, रूचि, बुद्धि, अभियोग्यता, अभिवृत्ति, पूर्व अधिगम, थकान व ऊब, संवेगात्मक स्थिति इत्यादि सम्मिलित है।
- अधिगम सिद्धान्तों का उपयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों संगठन, चिकित्सा, बच्चों के पालन–पोषण, शिक्षा इत्यादि में वांछिक व्यवहार के अर्जन व बढ़ाने तथा अवांछित व्यवहार को कम तथा समाप्त करने के लिए किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न :–

1. निम्नलिखित में से कौनसे अधिगम सिद्धान्त में उद्दीपक–उद्दीपक के बीच साहचर्य होता है?
   (अ) प्रेक्षणात्मक अधिगम
   (ब) प्राचीन अनुबंधन
   (स) क्रियाप्रसूत अनुबंधन
   (द) अव्यक्त अधिगम
2. बालकों के सामने अनुकरणीय व्यवहार करना चाहिए। यह उक्ति अधिगम के किस सिद्धान्त से संबंधित है?
   (अ) प्रेक्षणात्मक अधिगम (ब) प्राचीन अनुबंधन
   (स) क्रियाप्रसूत अनुबंधन (द) अव्यक्त अधिगम
3. अधिगम के बारे में कौनसा कथन असत्य है?
   (अ) अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है।
   (ब) अधिगम निष्पादन से भिन्न होता है।
   (स) अधिगम में व्यवहार में तुलनात्मक रूप से स्थायी परिवर्तन होता है।
   (द) अधिगम वृद्धि व परिपक्वता के कारण होता है।
4. बालक द्वारा प्रश्न का सफाई से तथा सही उत्तर लिखने पर अध्यापक प्रशंसा करता है। इससे बालक के सफाई से तथा सही उत्तर देने का व्यवहार बढ़ता है। यह कौनसे अधिगम सिद्धान्त पर आधारित है?
   (अ) प्रेक्षणात्मक अधिगम (ब) प्राचीन अनुबंधन
   (स) क्रियाप्रसूत अनुबंधन (द) अन्तर्दृष्टि सिद्धांत
5. कौन सा अधिगम सिद्धांत संज्ञानात्मक सिद्धांत है?
   (अ) प्रेक्षणात्मक अधिगम (ब) प्राचीन अनुबंधन
   (स) क्रियाप्रसूत अनुबंधन (द) अव्यक्त अधिगम

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न :–

1. अधिगम क्या है?
2. वाचिक अधिगम में संगठनात्मक प्रकिया क्या है?
3. प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन किसने प्रस्तावित किया?
4. अव्यक्त अधिगम क्या है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न :–

1. विलोपन तथा स्वतःपुनर्प्राप्ति क्या है?
2. सामान्यीकरण और विभेदन में अंतर बताइए।
3. पुनर्बलन अनुसूची किस प्रकार अधिगम को प्रभावित करती है?

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. प्राचीन अनुबंधन को प्रयोग द्वारा स्पष्ट कीजिए।
2. क्रियाप्रसूत अनुबंधन क्या है? क्रियाप्रसूत अनुबंधन को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाइए।
3. माता–पिता या एक अध्यापक को अच्छे माडल की तरह व्यवहार करना चाहिए। अधिगम के उस सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए जो इसका समर्थन करता है।
4. वाचिक अधिगम के कारकों को स्पष्ट कीजिए।

परियोजना विचार

1. अधिगम सिद्धांतों के उपयोग से अपने अधिगम को अधिक सुगम बनाइए।
2. माता–पिता तथा अध्यापक आपको अच्छा व्यवहार करने के लिए किस प्रकार पुनर्बलित करते है, चर्चा कीजिए।
3. अपने छोटे भाई अथवा बहिन के किसी अवांछित व्यवहार से मुक्ति पाने में अधिगम सिद्धांतों का उपयोग कीजिए।
4 किसी नए कार्य को सीखने के लिए प्रेक्षणात्मक अधिगम विधि का उपयोग कीजिए तथा इस विधि की प्रभावशीलता की विवेचना कीजिये।

उत्तर– **1** (ब), 2 (अ), 3 (द), 4 (स), 5 (द)

इकाई–7

स्मृति एवं विस्मरण

इस अध्याय को पढने के बाद आप

- स्मृति के स्वरूप को समझ सकेगें,
- विभिन्न प्रकार की स्मृतियों के बीच विभेद कर सकेंगे,
- दीर्घकालिक स्मृति की सामग्री के संगठन एवं प्रस्तुतीकरण की व्याख्या कर सकेंगे,
- विस्मरण के स्वरूप एवं कारणों को समझ सकेंगे, तथा
- स्मृति सुधार के उपायों को सीख सकेंगे।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
स्मृति का स्वरूप
सूचना प्रक्रमण उपागम : अवस्था मॉडल
स्मृति तंत्र : संवेदी, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृतियाँ
कार्यकारी स्मृति (बॉक्स)
प्रक्रमण स्तर
दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार
दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार
विस्मरण के स्वरूप एवं कारण
स्मृति वृद्धि तकनीक
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

स्मृति का हमारे जीवन में क्या महत्व है, इससे हम सभी भली–भाँति परिचित हैं। स्मृति शब्द का प्रयोग दैनिक जीवन में एक दूसरे के साथ वाचिक अर्न्तक्रियाओं के दौरान सर्वाधिक रूप से किया जाता है। कुछ कतिपय उदाहरण ऐसे हैं जो स्मृति जैसे संप्रत्यय को समझने के लिए बाध्य करते हैं। उदाहरणार्थ–क्यों निदेशिका (Directory) से किसी के टेलीफोन का नम्बर व्यक्ति से बातचीत करते समय स्मृति से विलुप्त हो जाता है ?इसी प्रकार क्यों व्यक्ति की संचयन में सीखी हुई कवितायें, पहाडे जीवन पर्यन्त स्मृति में बने रहते हैं ? स्मृति एक अत्यन्त व्यापक शब्द है, स्वंय को समझने, हमारे अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्धों को समझने में, समस्या समाधान में, निर्णय लेने में, किसी भी प्रकार की कार्यप्रणाली को समझने जैसे कार्यों में स्मृति हमें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान करती है। चूंकि स्मृति प्रत्यक्षण, समस्या समाधान एवं चिन्तन के सदृश एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है, इसलिए मनोवैज्ञानिकों ने प्रायोगिक अध्ययनों के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया कि सूचनाएँ स्मृति में किस प्रकार क्रमबद्ध रूप से संसाधित होती हैं ?स्मृति किन कारणों से विलुप्त हो जाती है ?कौन सी युक्तियों के माध्यम से स्मृति में वृद्धि संभव है ?इस अध्याय में हम स्मृति के उपरोक्त सभी पक्षों की चर्चा करेंगे तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित मॉडल की सहायता से स्मृति तंत्र को समझेंगे।

वैसे यूं तो स्मृति के क्षेत्र में प्रायोगिक शोधों का इतिहास सौ वर्षों से अधिक का है परन्तु स्मृति पर सर्वप्रथम क्रमबद्ध अध्ययन जर्मन मनोवैज्ञानिक हर्मन एबिन्गहास (Hermann Ebbinghaus) द्वारा 1885 में किया गया। एबिंगहास के अध्ययनों में वह स्वंय प्रयोज्य थे– आपने पाया कि किसी भी अधिगम सामग्री का ह्यास समय अन्तराल बढने के साथ–साथ समान गति से और पूरी तरह से नहीं होता है। प्रारम्भ में भूलने की गति तीव्र होती है फिर क्रमशः न्यूनतम एवं बाद में स्थिर हो जाती है। इसके विपरीत ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक फ्रेड्रिक बार्टलेट (Frederick Bartlett, 1932) ने अपने कहानी संबंधी प्रयोगों एवं चित्र आरेखण सम्बन्धी प्रयोगों

के आधार पर बतलाया कि स्मृति कोई निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर सक्रिय एवं रचनात्मक प्रक्रिया है जिसमें समय अन्तराल के साथ–साथ पुनः प्राप्ति में उत्तरोत्तर परिवर्तन एवं संशोधन होता है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी स्मृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रयोग किये हैं उनकी चर्चा हम अध्याय में यथास्थान सम्मिलित करेंगे।

स्मृति से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अर्जित सूचनाओं मस्तिष्क में संचित करके रखने की क्षमता से होता है। जिसका सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के दैनिक जीवन के क्रियाकलापों से है। व्यक्ति अपने सामान्य दैनिक जीवन में अक्सर यह कहते रहते हैं कि याद्दाश्त या स्मृति अच्छी है अथवा कमजोर पड़ गई है। ऐसे दैनिक कथनों से प्रतीत होता है कि स्मरण कोई आन्तरिक शक्ति है, जो कम या अधिक होती रहती है, परन्तु ऐसा मानना गलत है। स्मरण कोई आन्तरिक शक्ति नहीं है, वरन् दूसरी मानसिक प्रक्रियाओं; जैसे–प्रत्यक्षीकरण, संवेदना, चिन्तन आदि की तरह यह भी एक मानसिक प्रक्रिया है। इसलिए आजकल स्मृति को अब स्मरण शक्ति न कहकर स्मरण करने की क्रिया या याद करना कहा जाता है। अतः मनोवैज्ञानिक भाषा में कहा जा सकता है, कि **स्मृति** एक ऐसा सक्रिय संज्ञानात्मक तंत्र है जिसमें व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अर्जित सूचनाओं को संगठित एवं परिमार्जित कर मस्तिष्क में संचित करता है एवं आवश्यकता पडने पर संचयन से सूचनाओं की पुनः प्राप्ति करता है। **वुडवर्थ** के अनुसार, ''सीखने के पश्चात् उस बात को याद रखना या पुनः प्रस्तुत करना 'स्मृति' कहलाता है।''

चैपलिन के अनुसार, ''पूर्व में सीखे गए विषय के स्मृति चिन्हों को धारण करने तथा उन्हें वर्तमान चेतना में लाने की प्रक्रिया को स्मृति कहते हैं।''स्मृति की तीन प्रमुख प्रक्रियाएँ या तत्व हैं–कूटसंकेतन (encoding), संचयन (storage), पुनः प्राप्ति (retrieval)।

कूटसंकेतन (encoding) स्मृति की पहली अवस्था होती है जिसे पंजीकरण (registration) भी कहा जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी सूचना या बाह्य उत्तेजन का प्रत्यक्षण करके व्यक्ति उसे एक निश्चित रूप या कूटसंकेतन के रूप में तंत्रिका तंत्र में ग्रहण करता है। कूटसंकेतन दो प्रकार का होते हैं– प्रयासयुक्त कूटसंकेतन (effortful encoding) तथा स्वचालित कूटसंकेतन (automatic encoding) प्रयासयुक्त कूटसंकेतन में व्यक्ति सीखे हुए पाठ को बहुत प्रयास करके अपने चेतना पटल पर लाता है जबकि स्वचालित कूटसंकेतन में सूचनाएँ व्यक्ति बिना किसी प्रयास के ही इस रूप में परिवर्तित हो जाती है कि उन्हें स्मृति में रखा जा सके। जैसे, यदि किसी विद्यार्थी से यह पूछा जाय कि गत वर्ष उसने कितने पुरस्कार प्राप्त किए, तो इसका उत्तर वैसी सूचना पर आधारित होगा जो व्यक्ति के बिना प्रयास के ही स्मृति में संचित होगी। इस तरह का कूटसंकेतन स्वचालित कूटसंकेतन का उदाहरण होगा।

संचयन/भंडारण (storage) स्मृति की द्वितीय अवस्था होती है जिसमें कूटसंकेतन द्वारा व्यक्ति जिन सूचनाओं एवं उत्तेजनाओं को प्राप्त करता है उन्हें कुछ समय के लिए संचित करके रखा जाता है। कूटसंकेतिक सूचनाओं को संचित करके रखने के लिए मस्तिष्क में विशेष प्रक्रिया सम्पन्न होती है जिसे **दृढीकरण (consolidation)** कहा जाता है। सामान्यतः दृढीकरण स्वतः होता है परंतु यदि किसी कारण से व्यक्ति अपनी चेतनावस्था को खो देता है, तो दृढीकरण प्रक्रिया भंग हो जाती है और तब स्थायी स्मृति नहीं बन पाती है।

पुनरूद्धार या पुनः प्राप्ति (retrieval) स्मृति की तीसरी अवस्था होती है यह वह प्रक्रिया है जिसमें आवश्यकता पड़ने पर संग्रहित सूचनाओं का उपयोग किया जाता है। व्यक्ति संचयन में उपस्थित सूचनाओं में से चयनात्मक ध्यान द्वारा विशिष्ट/आवश्यक सूचनाओं की खोज करता है तथा उन तक पहुँचने का प्रयास करता है। जिन सूचनाओं का संचयन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता, उनकी पुनः प्राप्ति में कठिनाई का अनुभव होता है।

इन तीनों प्रक्रियाओं को एक उदाहरण द्वारा सरलतम रूप से समझा जा सकता है, जैसे– एक बस द्वारा कार की टक्कर लगने पर चालक दृष्टि संवेदनाओं द्वारा दुर्घटना की कल्पना एक सादृश्य के रूप में करेगाा और उसका संग्रहण कुछ संकेतों के रूप में उसकी स्मृति में होगा ताकि बाद में जब वह बीमा एजेंटों आदि से बात करे तो उस घटना का पुनरूद्धार उसी रूप में कर सके।

सूचना प्रक्रमण उपागम : अवस्था मॉडल (Information Processing Model : Stage Model)

सूचना प्रक्रमण उपागम स्मृति का एक उपागम है। जिसमें मनुष्य स्मृति एक सूचना संसाधन तंत्र की भाँति कार्य करती है। इस उपागम के अर्न्तगत मनुष्य स्मृति में सूचनाओं का प्रक्रमण कम्प्यूटर की भाँति होता है। जिस तरह से कम्प्यूटर में सूचनाओं का कूटसंकेतन कर उनका संचयन किया जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन सूचनाओं में कुछ फेरबदल कर उन्हें पुनः प्राप्त किया जाता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी सूचना का कूटसंकेतन, संचयन तथा आवश्यकतानुसार संचित सूचना में फेरबदल कर पुनः प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ– व्यक्ति किसी घटना का कूटसंकेतन

कर उसका संचयन अपनी स्मृति में करता है तथा अन्य व्यक्तियों के समक्ष उसका वर्णन करते समय आवश्यकतानुसार उसमें फेरबदल कर सूचना की पुनः प्राप्ति करता है। इस सादृश्य से प्रेरित होकर **एटकिन्सन–शिफरिन (Atkinson-Shiffrin)** ने 1968 में स्मृति का प्रथम **अवस्था मॉडल (Stage Model)** प्रस्तुत किया, जिसे मॉडेल मॉडल (modal model) भी कहा जाता है। जिसके तहत कम्प्यूटर स्मृति के समान मानव स्मृति भी तीन मौलिक कार्य अर्थात् कूटसंकेतन, संचयन तथा पुनः प्राप्ति करता है। अवस्था मॉडल के अनुसार स्मृति तंत्र तीन प्रकार के होते हैं: **संवेदी स्मृति** (Sensory memory**), अल्पकालिक स्मृति** (Short-term memory) एवं **दीर्घकालिक स्मृति** (Long-term memory)।

इस मॉडल के अनुसार सूचनाएँ पहले संवेदी स्मृति में प्रवेश करती हैं। संवेदी स्मृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें संचित सूचनाएँ बहुत जल्द ही अपना अस्तित्व खो देती हैं। इस स्मृति की संचयन क्षमता काफी बडी होती है, परन्तु संचयन अवधि कम (एक सेकण्ड से कम) होती है। संवेदी स्मृति में सूचनाओं के प्रवेश के उपरान्त सूचनाएँ अल्पकालिक स्मृति में चयनात्मक अवधान के माध्यम से प्रवेश करती है। अल्पकालिक स्मृति की संचयी क्षमता कम तथा संचयी अवधि 30 सेकण्ड से कम होती है। इस मॉडल में लघुकालीन स्मृति से सूचनाएँ दीर्घकालीन स्मृति में विस्तारपरक पूर्वाभ्यास के कारण प्रवेश करती हैं। इस तरह के पूर्वाभ्यास में व्यक्ति न केवल मन ही मन सूचनाओं को दोहराता है, बल्कि उनका अर्थ समझकर अन्य सूचनाओं से उसका संबंध जोडने का प्रयत्न करता है। एक बार जब सूचनाएँ दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश कर जाती हैं, तो उनका रिहर्सल की आवश्यकता नहीं होती है और वे स्थायी तौर पर वहाँ संचित होती हैं। दीर्घकालीन स्मृति में संचित सूचनाएँ क्षीणता तथा बाधा दोनों के प्रभावों के कारण लुप्त होती हैं। दीर्घकालीन स्मृति से सूचनाएँ उतनी तेजी से क्षीण नहीं होती हैं जितनी तेजी से लघुकालीन स्मृति से होती हैं, परन्तु फिर भी सूचनाओं का क्षीण होना दीर्घकालीन स्मृति से विस्मरण का एक प्रमुख कारण है। बाधक कारकों में अग्रलक्षी अवरोध (proactive interference), पूर्वलक्षी अवरोध (retroactive interference), अनाधिगम, अनुक्रिया प्रतियोगिता (response competition) आदि को माना गया है।

संवेदी स्मृति (Sensory Memory)

संवेदी स्मृति से अभिप्राय ऐसी स्मृति से हैं, जिसमें सूचनाओं को सामान्यतः एक सेकण्ड या उससे भी कम समय के लिए व्यक्ति रख पाता है। इस स्मृति में अलग–अलग ज्ञानेद्रियों से सम्बन्धित सांवेदिक स्मृति अलग–अलग होती है। इस स्मृति में उद्दीपक से मिलने वाली सूचनाओं को मौलिक रूप में अर्थात् उनमें बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किए वैसे ही संचित रखा जाता है। संवेदी स्मृति के कारण ही व्यक्ति के सामने से उद्दीपक के हट जाने के बाद भी उसका चिन्ह थोड़े समय के लिए बना रहता है। इसी कारण इसे संवेदी संचयन या संवेदी रजिस्टर भी कहा जाता है। दृष्टि उद्दीपकों की संवेदी स्मृति केवल 1/4 सेकण्ड तक रहती है। इस अवधि के बाद उसकी पूर्ण स्मृति रखना सम्भव नहीं है।

प्रतिमा संबंधी स्मृति या दृष्टि संवेदी स्मृति(Iconic

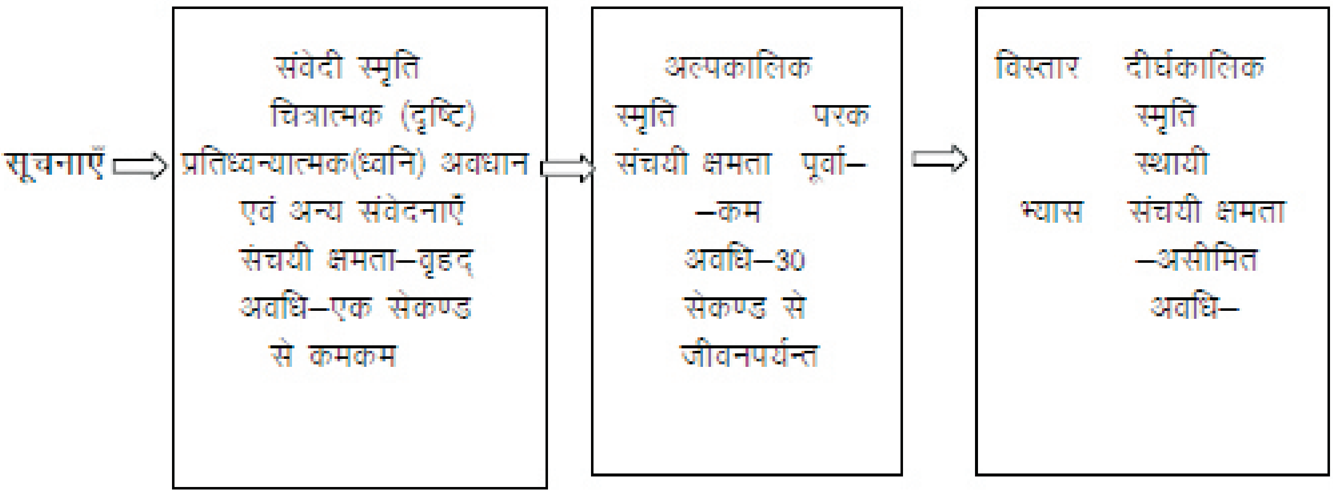

स्मृति का अवस्था मॉडल

memory) में व्यक्ति देखी गई वस्तु या व्यक्ति के बारे में एक सेकण्ड तक एक दृष्टि चिन्ह रख पाता है जबकि प्रतिध्वनिक स्मृति या श्रवण संवेदी स्मृति (Echoic memory) में व्यक्ति किसी सुनी हुई आवाज का उद्दीपक चिन्ह अपने मन में एक सेकण्ड से भी कम समय के लिए रख पाता है।

2. अल्पकालिक स्मृति (Short-term memory)

अल्पकालिक स्मृति को विलियम्स जेम्स ने प्राथमिक स्मृति भी कहा है। इसे सक्रिय स्मृति, तात्कालिक स्मृति, लघुकालीन संचयन भी कहा जाता है। इस तरह की स्मृति का स्थायीपन लगभग 30 सेकण्ड तक होता है। इसमें धारणा का शीघ्र हास होता है।

इस तरह की स्मृति में दो मुख्य विशेषताएँ पाई जाती हैं–

पहली STM में किसी सूचना को अधिक से अधिक 20–30 सेकण्ड तक संचित करके रखा जा सकता है, दूसरी, इसमें प्रवेश पाने वाली सूचनाएँ कमजोर प्रकृति की होती हैं, क्योंकि उन्हें व्यक्ति मात्र एक दो प्रयास में ही सीख लेता है। उदाहरणस्वरूप मान लीजिए कि कोई आदमी किसी अन्य व्यक्ति से टेलीफोन पर बातचीत कर सामान की सूची पूछता है। 15 सेकण्ड रुककर वह सामान की सूची को कागज पर लिखता है परन्तु इस बार वह सामग्री की सही मात्रा को भूल जाता है, जबकि व्यक्ति अन्य व्यक्ति से बातचीत करते समय सामान की सूची को भी मात्र एक ही अभ्यास में ही सीख लिया था। इस उदाहरण में लघु अवधि स्मृति 15 सेकण्ड की दिखाई गई है।

कार्यकारी स्मृति (working memory)

अल्पकालिक स्मृति ऐकिक नहीं होती है, बल्कि इसमें बहुत से घटक हो सकते हैं। कार्यकारी स्मृति में सूचनाओं को सिर्फ लघु अवधि के लिए संचित ही नहीं किया जाता है, वरन् उनको संसाधित भी किया जाता है अर्थात् उनका कूटसंकेतीकरण भी किया जाता है। कार्यकारी स्मृति में सूचनाओं को ज्यों का त्यों धारण न करके उसके आवाज तथा अर्थ के अनुसार कूटसंकेतन किया जाता है। जैसे– अक्षर B(c) तथा D(M+) को उसके आकार के अनुसार नहीं बल्कि आवाज के अनुसार कार्यकारी स्मृति में कूटसंकेतन किया जाता है। इसी कारण इसे चेतन का वर्कबेंच कहा जाता है (working memory is the workbench of conciousness)। सबसे पहले **बेडेले** (Baddeley, 1986) ने कार्यकारी स्मृति की व्याख्या करने के लिए एक मॉडल जिसे **बहुतत्व मॉडल** (multiple components model) कहा जाता है। इस मॉडल के अनुसार कार्यकारी स्मृति के तीन भाग– पहला घटक, स्वनिमिक घेरा (phonological loop) जो शब्दों के आवाज से संबंद्ध सूचनाओं को संसाधित करता है, जिसमें ध्वनियों की संख्या सीमित होती है तथा अगर उनको दोहराया न जाए तो वे दो सेकण्ड के भीतर उनका ह्यास हो जाता है। दूसरा घटक, दृष्टिस्थानिक स्केच पैड (visuospatial sketch pad) जो दृष्टि एवं स्थानिक सूचनाओं का कूटसंकेतन करता है, इसकी क्षमता भी सीमित होती है। तीसरा घटक, केन्द्रीय प्रबंधक (central executive) जो उक्त दोनों घटकों के कार्यों को समन्वित, संगठित तथा उनका निरीक्षण करता है। कार्यकारी स्मृति का समर्थन क्रमिक स्थिति वक्र (serial position curve) से होता है। सूची के ऊपरी एवं निचले भागों में अवस्थित एकांशों का प्रत्याह्यान सूची के बीच के भागों में अवस्थित एकांशों की तुलना में उत्तम होता है।ऊपरी भाग में अवस्थित एकांशो के प्रत्याह्यान का कारण प्राथमिकी प्रभाव, जिससे दीर्घकालिक स्मृति के अस्तित्व का तथा निचले भाग में अवस्थित एकांशो के प्रत्याह्यान का कारण नवीनता प्रभाव, जिससे कार्यकारी स्मृति का पता चलता है।

अल्पकालिक स्मृति की क्षमता को बढ़ाने के लिए एक उत्तम तरीका जिसे मिलर (Miller, 1956)ने बतलाया, **खंडीयन विधि** (chunking) है। इसके द्वारा अल्पकालिक स्मृति की क्षमता को 7̸2 की सीमा से बढ़ाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, व्यक्ति अंकों की कोई श्रृंखला 194719481993 को याद करना चाहे (संख्या अल्पकालिक स्मृति की क्षमता से अधिक है) तो व्यक्ति इसके खंड 1947 1948 1993 बना सकता है तथा इसे भारतवर्ष की स्वतंत्रता का वर्ष, महात्मा गाँधीजी की पुण्यतिथि तथा मुम्बई धमाका के रूप में याद कर सकता है।

3. दीर्घकालीन स्मृति (Long-Term Memory)

विलियम्स जेम्स ने इस स्मृति को गौण स्मृति भी कहा है। इस तरह की स्मृति में धारणा का हास या विस्मरण कम होता है। इसमें अधिगम की मात्रा अधिक होने के कारण धारणा अधिक पाई जाती है और अधिक दिनों तक याद रहती है। इस तरह की स्मृति में किसी सूचना को व्यक्ति कम से कम 30 सेकण्ड तक तो अवश्य ही धारण करके रखता है तथा जिसकी कोई अधिकतम सीमा कुछ भी नहीं होती है क्योंकि एक 100 वर्ष का व्यक्ति भी अपने बाल्यावस्था की अनुभूतियों को अच्छी तरह से दीर्घकालीन स्मृति में संचित करके रखता है। विलियम जेम्स ने उसे गौण स्मृति (Secondary Memory) कहा है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इसे असक्रिय स्मृति भी कहा है। किसी सूचना को पूरे जीवन काल के लिए तक संचित रखा जा सकता है या किसी को सिर्फ दो घण्टे तक ही संचित रखा जा सकता है; जैसे– यदि कोई व्यक्ति सिनेमा हॉल में कल देखी गयी फिल्म का प्रत्याह्यान या पुनः प्राप्ति कर सकने में सफल हो पाता है, तो यह कहा जाता है कि फिल्म की कहानी व्यक्ति के दीर्घकालीन स्मृति में संचित थी।

एटकिन्सन एवं शिफरिन स्मृति मॉडल के अनुसार, संवेदी स्मृति में जो सूचनाएँ प्रवेश करती हैं, उनमें से कुछ ही चयनात्मक अवधान के माध्यम से लघुकालीन स्मृति में प्रवेश करती हैं और फिर लघुकालीन स्मृति में प्रवेश पाने वाली सूचनाओं में से कुछ ही सूचना दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश करती हैं, परन्तु जो भी सूचनाएँ दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश करती हैं वे स्थायी तौर पर संचित हो जाती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सभी सूचनाएँ जो संवेदी स्मृति में प्रवेश करती हैं, लघुकालीन स्मृति में प्रवेश नहीं कर पाती हैं और जो लघुकालीन स्मृति में प्रवेश करती हैं, उनमें से सभी दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश नहीं कर पाती हैं और जो दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश कर पाती हैं, व्यक्ति उन सभी को धारण करके नहीं रख पाता है।

नीचे लिखे अंकों की सूची को याद करने का प्रयास करें :–

1 9 2 5 4 9 8 1 1 2 1

अब इन्हें निम्न समूहों में याद करने का प्रयास कीजिए :–

1 9 25 49 81 121

आपने इनमें क्या अन्तर पाया ? आपके द्वारा एक पंक्ति के सभी अंकों को पढ़ने के बाद आपका मित्र प्रत्याह्न करेगा । आपके मित्र द्वारा प्रत्याह्न की गई अंकों की सही मात्रा ही उसका स्मृति प्राप्तांक होगा । अपने सहपाठियों और शिक्षकों के साथ अपने परिणाम की विवेचना कीजिए ।

प्रक्रमण स्तर

प्रक्रमण स्तर दृष्टिकोण क्रैक (Craik) एवं लोकहार्ट (Lockhart) द्वारा सन् 1972 में प्रतिपादित किया गया था। इस दृष्टिकोण के अनुसार सूचनाओं का प्रक्रमण विभिन्न तंत्रों द्वारा न होकर एक ही तंत्र द्वारा होता है तथा सूचनाओं को उसी तंत्र में विभिन्न स्तरों पर संसाधित किया जा सकता है। प्रक्रमण के प्रथम एवं सबसे निम्न स्तर में सूचना को उसके भौतिक एवं संरचनात्मक विशेषताओं अथवा उसके संवेदी गुणों के आधार पर प्रक्रमण किया जाता है। उदाहरणार्थ, 'कुत्ता' शब्द को उसके अक्षरों के आकार (बड़े अथवा छोटे अक्षर), उसके स्याही के रंग, तथा उसके लिखने के तरीके के आधार पर प्रक्रमण किया जा सकता है। प्रक्रमण के मध्य अथवा दूसरे स्तर पर सूचना को उसके आवाज के आधार पर प्रक्रमण किया जा सकता है। व्यक्ति 'कुत्ता' शब्द के उच्चारण की ध्वनि के आधार पर इसका प्रक्रमण कर सकता है। इन स्तरों पर सूचना का विश्लेषण कमजोर रहता है तथा शीघ्र ही सूचना का ह्रास हो जााता है। सूचना का प्रक्रमण तीसरे एवं गहन स्तर पर उसके अर्थ के अनुरुप किया जाता है।

उदाहरणार्थ, 'कुत्ता' शब्द को उसके जानवर, उसकी विशेषताओं, जैसे–उसके रोएं, चार पैर, एक पूँछ तथा उसके स्तनधारी होने आदि के आधार पर तथा उसकी प्रतिमा अपने मन में लाकर उसे अपने अनुभव से भी जोड सकते हैं। अर्थात्, सूचनाओं को उनके संरचनात्मक तथा ध्वनिक विशेषताओं के आधार पर प्रक्रमण करने पर यह एक निचला स्तर का प्रक्रमण जबकि सूचनाओं को उनके शब्दार्थ के आधार पर कुछ संकेतन करना गहन स्तर का प्रक्रमण है, इससे बनने वाली स्मृति का विस्मरण अपेक्षाकृत कम होता है।

हम किसी सूचना को किस तरह से संकेतित करते हैं, हमारी स्मृति उसी का परिणाम होती है। इस तथ्य का महत्व अधिगम की प्रक्रिया में सर्वाधिक है। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझ सकते हैं कि नया पाठ सीखने पर उसे रठने के बजाय यदि सूचना के अर्थ को समझना तथा उसे दूसरे संप्रत्ययों, तथ्यों एवं उसे अपने जीवन के अनुभवों से जोडना, दीर्घकालिक धारण का सुनिश्चित उपाय है।

दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार

दीर्घकालिक स्मृति भी एकिक नहीं होती है, क्योंकि इसमें भिन्न प्रकार की सूचनाएँ होती हैं। इस दृष्टिकोण से दीर्घकालिक स्मृति को **दो भागों** में बाँटा गया है–स्पष्ट स्मृति (explicit Memory) तथा अस्पष्ट स्मृति (implicit Memory)। स्पष्ट स्मृति वैसे स्मृति को कहा जाता है जिसमें संचित सूचनाओं को व्यक्ति स्पष्ट रुप से चेतन पटल पर ला पाता है तथा शाब्दिक रूप से उसके बारे में बतला पाता है। यही कारण है कि इसे घोषणात्मक स्मृति (declarative memory) भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ– भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री का नाम, भारतवर्ष की राजधानी नई दिल्ली, अपने घर का पता, बिल्ली एक स्तनधारी प्राणी है, इत्यादि। दूसरी ओर, अस्पष्ट स्मृति वैसी स्मृति होती है जिसमें कुछ ऐसी सूचनाएँ संचित होती हैं जिन्हें आसानी से व्यक्ति शब्दों के रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाता है। इसलिए इसे अघोषणात्मक स्मृति या कभी–कभी प्रक्रियात्मक स्मृति भी कहा जाता है। इस तरह की स्मृति में कौशल युक्त पेशीय क्रियाएँ (skilled motor activities), आवृत्तीय कार्य से उत्पन्न आदत तथा क्लासिकी अनुबंधन द्वारा सीखी गयी साधारण अनुक्रियाएँ से संबंद्ध सूचनाएँ सम्मिलित होती हैं जैसे– साइकिल चलाना, गिटार बजाना, रस्सी कूदना, बॉस्केटबॉल खेलना इत्यादि।

स्पष्ट स्मृति को दो **भागों** में बाँटा गया है–प्रासंगिक स्मृति (episodic memory) तथा अर्थगत स्मृति (semantic memory)। यह वर्गीकरण टुलभिंग द्वारा किया गया है।

घटनापरक या प्रासंगिक स्मृति (Episodic Memory) :–

घटनापरक या प्रासंगिक स्मृति में वैसी व्यक्तिगत सूचनाएँ संचित होती हैं, जो अस्थायी रूप से व्यक्ति के साथ घटित होती है, इसलिए सामान्यतया इनका स्वरूप सांवेगिक होता है। अतः इस प्रकार की सूचनाओं द्वारा मूलतः यह ज्ञान प्राप्त होता है कि व्यक्तिगत घटनाएँ कब और कहाँ घटित हुई थीं?इस तरह प्रासंगिक स्मृति एक मानसिक डायरी के समान होती हैं। उदाहरणार्थ–मेरे बचपन के दिन हँसते खेलते बीते थे। कल शाम को चार बजे मैं मित्रों के साथ क्रिकेट खेलने गया हुआ था। एक वर्ष पहले मेरा आप जैसा एक दोस्त था। दस दिन पहले मैं एक मित्र के साथ शॉपिंग करने गया इत्यादि। इन सूचनाओं को भूलना सरल नहीं होता परन्तु बहुत सारी घटनाएँ जीवन में लगातार होती रहती हैं, उन सभी को हम याद नहीं रखते। दुःखद एवं कष्टप्रद अनुभवों को हम उतना नहीं याद रखते जितना सुखद अनुभवों को याद रख पाते हैं।

दीर्घकालिक स्मृति वर्गीकरण

दीर्घकालिक स्मृति का अध्ययन एक रोचक विषय है तथा शोधकर्ताओं ने कई नवीन तथ्यों को उद्घाटित किया है। निम्न विवरण मानव स्मृति की जटिल एवं गत्यामक प्रकृति को प्रदर्शित करते हैं।

क्षणदीप स्मृतियाँ

यह ऐसी घटनाओं की स्मृतियाँ होती हैं जो संवेदात्मक स्वरूप की होती हैं तथा साथ–ही–साथ व्यक्ति को आश्चर्यचकित तथा उद्दीप्त करने वाली होती हैं। क्षणदीप स्मृतियाँ किसी विशेष, तिथि व समय से जुडे ऐसे चित्रों की होती हैं जो हमारी स्मृति में लगभग स्थिर हो जाती है। इसे फ्लैशबल्ब स्मृति (Flashbulb memory) भी कहा जाता है। जब व्यक्ति को किसी ऐसी घटना के बारे में सूचना मिलती है जो अत्यधिक सांवेगिक, आश्चर्यजनक एवं उद्दीप्त करने वाली होती है, तब इस प्रकार की स्मृति का निर्माण होता है। यह ठीक उसी प्रकार की स्मृति होती है, जिस प्रकार आधुनिक कैमरे से फोटो लिये जाने पर चित्र तुरन्त आपके सामने होता है। उदाहरणार्थ, 5 साल पहले बाजार जाते समय कोई अपरिचित व्यक्ति अकारण ही आपको तमाचा लगा दिया हो।

जीवनचरित स्मृति (autobiographical memory)

जीवनचरित स्मृति में व्यक्ति के जीवन से संबंद्ध घटित होने वाली सूचनाओं की स्मृति संचित होती हैं जो पूरे जीवन में समान रूप से वितरित नहीं होती हैं। जीवनचरित स्मृति की शुरूआत जीवन के आरम्भिक वर्षों से ही हो जाता है किन्तु प्रारंभिक बाल्यवस्था विशेषतः प्रथम 4 से 5 वर्ष के आयु की स्मृतियाँ हम नहीं बता पाते हैं, इसे बाल्यवस्था स्मृतिलोप कहते हैं। इसमें संभवतः घटनाओं की सांवेगिकता, नवीनता एवं महत्व का योगदान होता है। जीवनचरित स्मृति जीवन के महत्वपूर्ण अवधि जैसे आरंभिक वयस्कवास्था की अनुभूतियों से संगठित होती है।

निहित स्मृतियाँ

कुछ स्मृतियाँ व्यक्ति की चेतन अभिज्ञा से बाहर रहती हैं। निहित स्मृतियाँ वैसी स्मृतियाँ होती हैं जिनसे व्यक्ति अनभिज्ञ होता है तथा वे स्वचालित रूप से पुनरूद्धत होती हैं। निहित स्मृतियाँ हमारी अभिज्ञा के सीमाओं से बाहर होती हैं। दूसरे शब्दों में, हम नहीं जानते कि हमारे स्मृतिकोष में कोई अनुभव संचित है या नहीं, वरन् निहित स्मृतियाँ हमारे व्यवहारों को प्रभावित करती रहती हैं। इस प्रकार की स्मृति उन व्यक्तियों में पाई गईं, जिन्हें मस्तिष्क में चोटें लगी थीं। उनको कुछ सामान्य शब्दों की एक सूची दिखाये जाने पर कुछ मिनट के पश्चात् पुनः पूछे जाने पर वे सूची के शब्दों को नहीं बता पाए। किंतु दो अक्षरों को देकर उनसे बनने वाले शब्दों के लिए उकसाने पर वे शब्दों का प्रत्याह्यान कर सके। जिन लोगों की स्मृतियाँ सामान्य होती हैं उनमें भी निहित स्मृतियाँ होती हैं।

शब्दार्थ विषयक या अर्थगत स्मृति (Semantic Memory):

शब्दार्थ विषयक या अर्थगत स्मृति में व्यक्ति शब्दों, संकेतों आदि के बारे में एक क्रमबद्ध ज्ञान रखता है। अतः इस प्रकार के ज्ञान में शब्दों, संकेतों के आपसी सम्बन्धों, उनके अर्थों तथा उनमें जोड़–तोड़ करने के नियमों आदि का ज्ञान सम्मिलित होता है। अतः अर्थगत स्मृति सामान्य ज्ञान एवं जागरूकता की स्मृति है। इसी कारण यह एक मानसिक शब्दकोष या विश्वकोश के समान महसूस होती है। उदाहरणार्थ, कार्बनडाइ ऑक्साइड का रासायनिक सूत्र CO_2 होता है, किसी भी अंक में एक से गुणा करने पर उसका गुणनफल वही संख्या प्राप्त होती है, वष्का सबसे बडा दिन जून में होता है आदि। हम इसे सामान्य स्मृति भी कहते हैं।

विस्मरण (Forgetting) :–

विस्मरण स्मृति का एक नकारात्मक या ऋणात्मक पक्ष है। गेल्डार्ड (Geldard; 1963) ने विस्मरण को एक नकारात्मक स्मृति कहा है। विस्मरण एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके कारण हम अपनी पूर्वानुभूतियों को अथवा पूर्व में सीखे गये अनुभवों या पाठों को प्रत्याह्यान या प्रत्याभिज्ञान करने में असमर्थ रहता है। इस असमर्थता का कारण स्मृति चिन्हों का खत्म हो जाना भी हो सकता है या उपर्युक्त पुनः प्राप्ति संकेत की अनुपस्थिति भी हो सकती है। जीवन में में जितना स्मृति का महत्व है, उसकी तुलना में विस्मरण का महत्व कम नहीं आँका जा सकता। यदि विस्मृति न होती, तो

जीवन दु:खों से भर जाता।

विस्मरण का स्वरूप (Nature of Forgetting)

विस्मरण स्मृति का एक नकारात्मक पक्ष है। गेल्डार्ड ने बताया कि जब व्यक्ति पूर्व सीखे गए अनुभवों को किसी कारण से खो देते हैं तो उसे विस्मरण की संज्ञा दी जाती है।

जब भी व्यक्ति किसी विषय या पाठ को सीखते हैं, तो उसे स्मृति चिन्ह के रूप में मस्तिष्क में धारण करते हैं। जब स्मृति चिन्ह कमजोर पड़ जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं तो हम पूर्व सीखे गए अनुभवों को याद नहीं कर पाते हैं और हम कहते हैं कि उसका विस्मरण हो गया है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि विस्मरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्मृति चिन्हों के खत्म हो जाने के कारण पूर्व सीखे गए अनुभवों को व्यक्ति याद नहीं कर पाता है।

अत: विस्मरण को इस प्रकार समझा जा सकता है कि यह किसी विचार या बात को पुन: स्मरण न कर सकना है। इसे स्मृति के विपरीतार्थक के रूप में जान सकते हैं सीखने में वस्तु के साथ जो मानसिक सम्बन्ध जुडा होता है, विस्मृति में वह सम्बन्ध कमजोर हो जाता है।

विस्मरण के स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–विस्मरण के स्वरूप के बारे में मनोवैज्ञानिकों के दो तरह के दृष्टिकोण हैं;

पहला दृष्टिकोण इविंगहास का है जिन्होंने 1885 ई. में स्मरण तथा विस्मरण पर पहला प्रयोगात्मक अध्ययन किया और बताया कि विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया है।इन्होंने अपने अध्ययन में निरर्थक पदों की कई सूचियों को स्वंय सीखा तथा उसकी स्मृति की जाँच भिन्न–भिन्न समय अन्तरालों; जैसे– 20 मिनट, 1 घण्टा, 1 दिन, 2 दिन, 3 दिन, 4 दिन, 5 दिन, 8 दिन तथा 30 दिन पर की। इविंगाहास ने अपने प्रयोग में पाया कि सीखने के बाद जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, वैसे–वैसे निष्क्रिय रूप से मस्तिष्क में बने स्मृति चिन्ह अपने आप ही क्षीण एवं कमजोर पडते जाते हैं और इसके साथ–ही–साथ विस्मरण की मात्रा भी बढती जाती है, हालांकि भूलने की दर में कमी आती जाती है। समय बीतने के साथ विस्मरण की मात्रा तथा दर में हुए परिवर्तन को इविंगहास ने एक विशेष वक्र द्वारा दिखाया है, जिसे विस्मरण वक्र या इविंगहास वक्र कहा जाता है।

दूसरा दृष्टिकोण जेनकिन्सन तथा डेलेनबैक (Jenkins & Dalleback, 1924), मूलर तथा पिलजेकर (Muller & Pilzecker, 1900) और मेल्टन तथा इर्विन (Melton & Irwin, 1940) ने अपने–अपने प्रयोगों में यह स्पष्ट रूप से पाया है कि सीखने के बाद समय का बीतना अपने आप में विस्मरण का कारण नहीं, बल्कि व्यक्ति इस समय अन्तराल में जब कुछ दूसरा कार्य

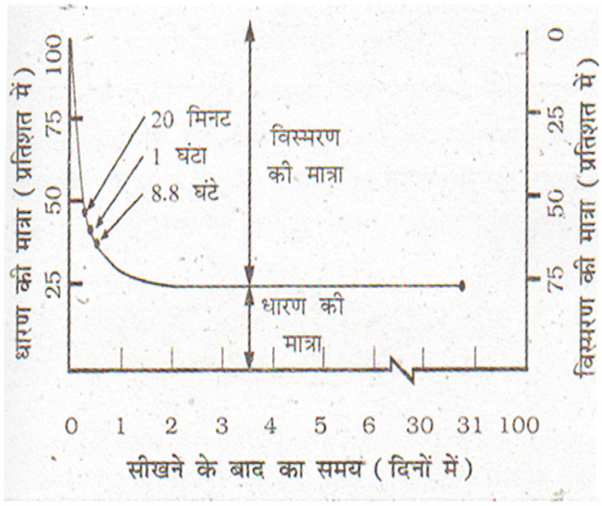

करता है या कुछ नया पाठ सीखता है, तो इसके कारण मौलिक विषय को वह भूल जाता है। अत: विस्मरण निष्क्रिय रूप से समय बीतने के साथ अपने आप नहीं होता है, बल्कि उस बीते हुए समय में जब व्यक्ति सक्रिय होकर किसी पाठ को सीखता है तो इससे विस्मरण होता है।

विस्मरण के कई कारण हैं। विस्मरण की व्याख्या हेतु प्रतिपादित मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन निम्न प्रकार है–

1 कूटसंकेतन असफलता (Encoding Failure)

विस्मरण का कारण सूचनाओं के कूटसंकेतन का ठीक ढंग से नहीं होना हो सकता है। जब सूचनाओं का उचित कूटसंकेतन नहीं होता है, तो ऐसी सूचनाएँ दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश नहीं कर पाती हैं और तब व्यक्ति उनका प्रत्याह्यान नहीं कर पाता है जिसे विस्मरण कहा जाता है।

2 सुदृढीकरण असफलता (Consolidation Failure):-

सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होती है जिसके माध्यम से कूटसंकेतिक सूचनाएँ स्मृति में संचित होती हैं। जब किसी सूचना का किसी कारण से सुदृढ़ीकरण नहीं होता है, तो व्यक्ति में स्थायी स्मृति या दीर्घकालिक स्मृति का निर्माण नहीं हो पाता है और विस्मरण हो जाता है।

3 पुन: प्राप्ति असफलता (Retrieval Failure) :-

टुलभिंग के अनुसार ऐसी सूचनाएँ दीर्घकालीन स्मृति में संचित होती हैं परंतु व्यक्ति उन्हें पहचान कर प्रत्याह्यान नहीं कर पाता है। परंतु जब कुछ संकेत दिए जाते हैं, तो वे उनका प्रत्याह्यान कर पाने में सफल हो जाते हैं। ब्राउन तथा मैकनिल (Brown & McNeil, 1966) ने इसे जीभ–की–नोंक की घटना (tip-of-the-tongue or TOT Phenomenon) कहा है।

4 ह्रास या अनुप्रयोग सिद्धान्त (Decay or Disuse Theory)

यह विस्मरण का एक क्लासिकी सिद्धान्त है। जिसके अनुसार जब किसी सीखे गये पाठ या अनुभूतियों का उपयोग समय बीतने के साथ नहीं होता है तो व्यक्ति धीरे–धीरे उसे भूल जाता है क्योंकि समय बीतने से उनके स्मृति चिन्हों में उत्तरोत्तर ह्रास होता है।

5 बाधा या अवरोध (Interference or Inhibition)

बाधा या अवरोध को विस्मरण का एक प्रमुख कारण माना गया है। बाधा दो प्रकार का होता है– पूर्वलक्षी अवरोध (retroactive inhibition) तथा अग्रलक्षी अवरोध (proactive inhibition)। पूर्वलक्षी अवरोध वैसे अवरोध को कहा जाता है जिसमें किसी मौलिक विषय या पाठ के सीखने के बाद किसी अन्य पाठ या विषय को सीखने से प्रत्याह्यान में उत्पन्न अवरोध से होता है। ऐसे अवरोध या बाधा का प्रभाव यह होता है कि व्यक्ति की धारणा कमजोर पड जाती है और वह मौलिक पाठ या विषय को भूल जाता है।

विषय या पाठ में समानता अधिक होने पर अवरोधक पाठ द्वारा मौलिक विषय के प्रत्याह्यानमें कम बाधा पहुँचती है तथा समानता कम होने पर , विस्मरण की मात्रा बढती जाती है। जब दोनों पाठ बिल्कुल ही असमान हो जाते हैं, तो बाधा नही ंके बराबर होती है। इस तरह की प्राक्कल्पना को स्कैग्स–रॉबिन्सन प्राक्कल्पना (Skaggs-Robinsons hypothesis) कहा जाता है। अग्रलक्षी अवरोध में विस्मरण का कारण वैसा अवरोध होता है जो मौलिक पाठ से पहले सीखे गये पाठ से उत्पन्न होता है और सही प्रत्याह्यान की मात्रा को कम कर देता है।

6 अभिप्रेरित विस्मरण (Motivated Forgetting):-

इसमें व्यक्ति दमन (repression) या गोपन (suppression) के माध्यम से चिन्ता उत्पन्न करने वाले या दोष भाव उत्पन्न करने वाले अपने जिंदगी की अनुभूतियों को भूलकर अपने आप को बचाता है। **फ्रायड** के अनुसार अभिप्रेरित विस्मरण का सारतत्व यह है कि हमलोग इसलिए भूलते हैं क्योंकि हम भूलना चाहते हैं (We forget because we want to forget)।

स्मृति वृद्धि (Memory Improving)

सीखना स्मृति का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। सीखने के प्रशिक्षण द्वारा हम स्मृति में सुधार कर सकते हैं। सीखने में सुधार मुख्य रूप से सीखने की विधियों, तकनीकों, सीखने की स्थितियाँ, वातावरण तथा सीखने वाले की मन की दशा से है। स्मृति सुधार की बहुत सारी युक्तियाँ हैं, जिन्हें स्मृति–सहायक संकेत कहा जाता है।

1. सीखने की इच्छा (Will to learn):–

सीखने वाले की मजबूत इच्छा से प्रभावशाली तथा सफल अधिगम होता है तथा स्मृति में वृद्धि होती है।

2. रुचि तथा अवधान (Interest & Attention) :–

सीखने वाले की रुचि तथा पूर्णतया अवधान स्मृति में वृद्धि करती है।

3. स्मृतिकरण के उचित विधियों का उपयोग करना (use of appropriate methods for memorization):–

सीखने वाले को अपने अनुसार उचित विधियों का उपयोग करना चाहिए। वहाँ स्मृतिकरण के कई विधियाँ हैं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए सभी विधियाँ प्रभावपूर्ण नहीं हैं।

4. समूहीकरण तथा लयबद्धता (Grouping and Rhythm):- समूहीकरण तथा लयबद्धता भी याद करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। उदाहरण– मोबाइल नं.– 8104273705 को यदि हम समूह में बाँट कर (जैसे– 810 427 37

पूर्वलक्षी अवरोध	चरण I	चरण II	परीक्षण चरण
प्रायोगिक प्रतिभागी / समूह	अधिगम I	अधिगम B	प्रत्याह्यान I
नियंत्रित प्रतिभागी / समूह	अधिगम I	आराम (कोई अधिगम नहीं)	प्रत्याह्यान I
अग्रलक्षी अवरोध			
प्रायोगिक प्रतिभागी / समूह	अधिगम I	अधिगम B	प्रत्याह्यान B
नियंत्रित प्रतिभागी / समूह	आराम	अधिगम B (कोई अधिगम नहीं)	प्रत्याह्यान B

पूर्वलक्षी तथा अग्रलक्षी अवरोध के लिए प्रायोगिक अभिकल्प

05) कोशिश करते हैं तो उसे हम आसानी से याद कर पाते हैं। उसी तरह से लयबद्धता भी स्मृतिकरण में योगदान करती है। बच्चे लयबद्धता के माध्यम से आसानी से तथा प्रभावपूर्ण तरीके से सीख सकते हैं।

5. अधिक से अधिक संवेदनों का उपयोग करना (Use of more sensations):– जितना संभव हो उतने संवेदनों का उपयोग करने पर सीखना प्रभावशाली बनता है तथा स्मृतिकरण में वृद्धि होती है।

6. दोहरान तथा अभ्यास (Repetition and practice):- दोहरान तथा अभ्यास भी स्मृतिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दोहरान तथा अभ्यास से सूचना दीर्घकालीन स्मृति में संचित हो जाती है तथा लगातार अभ्यास तथा दोहरान से स्मृति पूर्ण रूप से संचित हो जाती है।

7. SQ4R का उपयोग करना (use of SQ4R):– थॉमस तथा रॉबिन्सन ने 1972 में प्रभावी स्मृति तथा अधिगम के लिए इस तकनीक का उपयोग किया।

a. सर्वेक्षण करना (survey):- इस तकनीक में जो सामग्री आप याद कर रहे हो उसका सर्वेक्षण करने से है। यह तकनीक पाढ याद करने से पहले की तकनीक है।

b. प्रश्न (question):– इस तकनीक के अन्तर्गत सामग्री या प्रत्येक बिन्दु से संबंधित प्रश्न बनाए जाते हैं। यह तकनीक पूर्व ज्ञान के साथ नए सामग्री की तुलना करने में सहायता करता है।

c. पढना (Read):- इस तकनीक के अन्तर्गत सामग्री को पढने से होता है जो कि विषय–वस्तु से संबंधित होती है।

d. सुनाना/व्याख्या करना (Recite) :- इसके अन्तर्गत सामग्री को सुनाने या व्याख्या करने से होता है कि उसे वह कितना याद है।

e. पुनः परीक्षण (Review):- पढने के बाद तथा उसकी व्याख्या करने के बाद उसका पुनः परीक्षण किया जाता है।

f. चिन्तन (Reflect):- इसमें दिया गया सामग्री अर्थपूर्ण या प्रभावशाली है इसका चिन्तन किया जाता है।

8. स्मरणेपकारी का उपयोग (use of mnemonics):– इसका उपयोग स्मृति को विकसित करने के लिए सम्पूर्ण तंत्र को बढाने के उपयोग किया जाता है। यह तकनीक सामान्यतया दृश्य प्रतिमा का उपयोग कर आवश्यक सामग्री को याद करने के लिए उपयोगी साहचर्य बनाता है। विभिन्न Mnemonics तकनीकें निम्न हैं–

1. स्थान विधि (The Method of Loci):. इस तकनीक के अन्तर्गत सामग्री को याद करने के लिए उसे उसके स्थान से संबंधित किया जाता है।

2. Peg word विधि (The peg word method) :. इस विधि के अन्तर्गत सामग्री को लय के माध्यम से उनको अंक प्रदान कर स्मृति में याद रखा जाता है।

3. वर्णन–श्रृंखला विधि (Narrative Chaining Method):. इस तकनीक के अन्तर्गत सामग्री को कहानी से संबंधित कर (जो उसके चारों ओर घटित होती हैं) उसको याद किया जाता है।

4. प्रथम–अक्षर तकनीक (Initial letter strategy):-

सामग्री को उसके प्रथम अक्षर या शब्द से याद रखना तथा साहचर्य स्थापित करना। उदाहरणार्थ– इंद्रधनुष के रंगों को VIBGYOR की तरह याद किया जाता है, जिसमें V= बैंगनी (violet), I = जामुनी (Indigo), B = नीला (Blue), G = हरा (Green), Y = पीला (Yellow),O = नारंगी (Orange)और R = लाल (Red)।

5. कुंजी शब्द विधि (The Key word method) :- यह असमान, अपरिचित तथा कठिन शब्दों तथा पदों के लिए कोई इमेजरी (आकृति) बनाकर याद रखने की तकनीक है। इसके अन्तर्गत तीन चरण जैसे– विकसित करना, प्रतिरूप (इमेज) में बदलना तथा दोहरान करना आदि आते हैं।

6. मुख्य शब्द विधि (Main word method):- मान लीजिए कि आपको अंग्रेजी आती है और आप अन्य किसी विदेशी भाषा को सीखना चाहते हैं, तो अंग्रेजी का कोई शब्द जिसकी ध्वनि उस विदेशी भाषा के शब्द से मिलती–जुलती हो, उसकी पहचान कर लीजिए। यही अंग्रेजी शब्द मुख्य शब्द की तरह कार्य करेगा।

उदाहरणार्थ, आपको स्पेनिश भाषा का शब्द pato याद करना है जिसका अर्थ है बत्तख, तो आप अंग्रेजी का चवज शब्द ले सकते हैं। फिर मुख्य शब्द चवज और याद किए जाने वाले शब्द चंजवए दोनों को एक अंतः क्रिया करते हुए कल्पना कीजिए कि एक पानी के बर्तन (pot) में एक बत्तख (pato) है। विदेशी भाषा को सीखने की यह विधि रटने की विधि से अधिक अच्छी होती है।

स्मृति को सुधारने के अनेक कारकों की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है; जैसे– आपका स्वास्थ्य, आपकी रूचि एवं अभिप्रेरणा, याद की जाने वाली सामग्री से आपका परिचय आदि। इसके साथ–साथ स्मृति सुधार युक्तियों को सामग्री की प्रकृति के अनुसार उपयोग करना भी स्मृति में सुधार करता है।

प्रमुख पद

खंडीयन, संज्ञानात्मक लाघव, संप्रत्यय, नियंत्रण प्रक्रिया, द्वि संकेतन, प्रतिध्वनयात्मक स्मृति, कूट संकेतन, घटनापरक स्मृति, विस्तृत पूर्वाभ्यास, सूचना प्रक्रमण उपागम, अनुरक्षण

पूर्वाभ्यास, असत्य संसूचक, स्मृति सहायक संकेत, आर्थी स्मृति, क्रमिक पुनरूत्पादन, कार्यकारी स्मृति।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- स्मृति में तीन अंतः संबंधित प्रक्रियाएँ, कूट संकेतन, भंडारण एवं पुनरूद्धार सम्मिलित हैं।
- कूट संकेतन का तात्पर्य आने वाली सूचना को इस प्रकार पंजीकृत करना है कि वह स्मृति तंत्र के अनुरूप हो, भंडारण और पुनरूद्धार का तात्पर्य क्रमशः सूचना को एक समय तक रखना तथा फिर पुनः चेतना में लाना है।
- स्मृति का अवस्था मॉडल स्मृति प्रक्रियाओं की तुलना कंप्यूटर से करता है तथा इसके अनुसार स्मृति में आने वाली सूचना का तीन भिन्न अवस्थाओं– संवेदी स्मृति, अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति– में प्रक्रमण होता है।
- स्मृति के प्रक्रमण स्तर दृष्टिकोण के अनुसार सूचना का किसी भी स्तर–संरचनात्मक, ध्वन्यात्मक या आर्थी स्तर पर कूट संकेतन हो सकता है। यदि कोई सूचना आर्थी स्तर पर, जो सबसे गहन स्तर है, पर विश्लेषित एवं संकेतित होती है तो यह धारण क्षमता को बेहतर करती है।
- दीर्घकालिक स्मृति का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। घोषणात्मक एवं प्रक्रियात्मक स्मृति एक मृख्य वर्गीकरण है तथा दूसरा वर्गीकरण है घटनापरक एवं अर्थगत स्मृति
- दीर्घकालिक स्मृति में सामग्री संप्रत्यय, श्रेणियों एवं प्रतिमाओं के रूप में प्रस्तुत होती है तथा श्रेणीबद्ध रूप से संगठित होती है।
- विस्मरण किसी समयावधि तक संचित सामग्री की हानि से संबंधित है। किसी सामग्री को सीखने के तुरंत बाद सबसे अधिक क्षति होती है, बाद में यह क्षति धीमी गति से होती है।
- विस्मरण चिन्हों के ह्यास तथा अवरोध के कारण होता है। पुनरूद्धार के समय पर्याप्त संकेतों के अभाव में भी विस्मरण हो सकता है।
- स्मृति–सहायक संकेत स्मृति में सुधार लाने के लिए होते हैं। कुछ संकेत प्रतिमा पर तो कुछ सीखी जाने वाली सामग्री के संगठन पर बल देते हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न

1. स्मृति पर सर्वप्रथम क्रमबद्ध अध्ययन किसके द्वारा किया गया ?

   अ) कोहलर ब) एबिंगहास
   स) पावलव द) स्कीनर

2. " स्मृति कोई निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर सक्रिय एवं रचनात्मक प्रक्रिया है" किस मनोवैज्ञानिक द्वारा कहा गया है?

   अ) फ्रकड्रिक बार्टलेट ब) एबिंगहास
   स) एटकिन्सन शिफरिन द) वर्दाइमर

3. स्मृति की प्रकिया के तत्व निम्न में से नही हैं –

   अ) कूटसंकेतन ब) उत्पादन
   स) भंडारण द) पुनरूद्धार या पुनः प्राप्ति

4. कार्यकारी स्मृति की व्याख्या करने के लिए बहुतत्व मॉडल किसने बनाया ।

   अ) मिलर ब) विलियम जेम्स
   स) बेडेले द) क्रैक एवं लोकहार्ट

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्मृति को परिभाषित कीजिए ?
2. स्मृति प्रक्रिया के मुख्य तत्व कौन–कौन से हैं ?
3. स्मृति के प्रकार कौन–कौन से हैं ?
4. अल्पकालिक स्मृति में सूचनाओं की संचयन क्षमता कितने समय तक रहती है ?
5. संवेदी स्मृति के प्रकार लिखिए ?
6. अल्पकालिक स्मृति को अन्य कौन से नामों से जाना जाता है ?
7. दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार बताइए ?
8. विस्मरण क्या है ?
9. स्मृति का सूचना संसाधन मॉडल किस मनोवैज्ञानिक ने दिया ?
10. स्मृति सुधार के दो प्रमुख युक्तियाँ लिखिए ?
11. विस्मरण वक्र किस मनोवैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कूटसंकेतन क्या है ?
2. अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति मे क्या अंतर है ?

3. अल्पकालिक स्मृति की विशेषताएँ लिखिए ?

4. संवेदी स्मृति को एक उदाहरण सहित समझाइए ?

5. दृष्टि संवेदी स्मृति एवं श्रवण संवेदी स्मृति में क्या अंतर है ?

6. विस्मरण वक्र को समझाइये ?

7. शब्दार्थ विषयक स्मृति को उदाहरण सहित समझाइए ?

8. स्पष्ट एवं अस्पष्ट स्मृति में अंतर बताइए ?

9. आत्मचरित स्मृति क्या है ?

10. विस्मरण के कोई तीन कारण लिखिए ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्मृति क्या है ? स्मृति के आवश्यक तत्वों का उल्लेख कीजिए ?

2. स्मृति के विभिन्न प्रकारों का सामान्य परिचय उदाहरण सहित दीजिए ?

3. विस्मरण से आप क्या समझते हैं ? विस्मरण के मुख्य कारणों का उल्लेख कीजिए ?

4. संवेदी, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति तंत्र से सूचना का प्रक्रमण किस प्रकार होता है ?

4. संवेदी, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति तंत्र से सूचना का प्रक्रमण किस प्रकार होता है ?

5. स्मृति सुधार की विभिन्न युक्तियों की चर्चा कीजिए ?

6. दीर्घकालिक स्मृति का अर्थ बताइए एवं प्रकारों की विस्तार से चर्चा कीजिए ?

उत्तर

1.	(ब)	2.	(अ)
3.	(ब)	4.	(स)

इकाई– 8

चिन्तन एवं भाषा

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- चिन्तन एवं तर्कना के स्वरूप को समझ सकेगें ।
- चिन्तन के मूल तत्व को समझ सकेंगे ।
- भाषा का स्वरूप, विकास की प्रक्रिया तथा इसके उपयोग को समझ सकेंगे ।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
चिन्तन की परिभाषा तथा स्वरूप
चिन्तन के प्रकार
(1) स्वली चिन्तन
(2) यथार्थवादी चिन्तन
चिन्तन के मूल तत्व
भाशा एवं भाषा का स्वरूप
भाशा के प्रकार, संरचना तथा विकास
भाशा का अर्जन एवं उपयोग
भाशा की उत्पत्ति का सिद्धान्त
भाशा निर्धारक के रूप में चिन्तन
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन की बात में कई बार चिन्तन भाब्द का उपयोग करते हैं । कभी किसी वस्तु/व्यक्ति को याद करने में (मुझे उसका नाम याद नहीं आ रहा), ध्यान देने में, अनिि चतता के पर्यायवाची (मै सोचता/सोचती हूँ आज मेरे रिश्तेदार मेरे यहॉ आएंगे) के रूप में उपयोग करते हैं । चिन्तन का स्वतंत्र अस्तित्व है । चिन्तन का अर्थ विस्तृत है जिसमें अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रम सम्मिलित हैं । चिन्तन प्रायः संगठित और लक्ष्य निर्देशित होता है । खाना बनाने से लेकर गणित की समस्या को हल करने तक दिन– प्रतिदिन की सभी गतिविधियों का एक लक्ष्य होता है । इस अध्याय में चिन्तन एवं भाषा के विकास को समझाया गया है । सबसे पहले चिन्तन के अर्थ, स्वरूप, प्रकार को स्पष्ट किया गया है । चिन्तन किस तरह किया जाता है, इसके मूल तत्वों पर प्रकाश डाला गया है । अंत में भाषा एवं भाषा के स्वरूप, प्रकार, संरचना, विकास तथा भाषा का व्यक्ति के जीवन में उपयोगिता को समझाया गया है ।

चिन्तन की परिभाषा व स्वरूप

चिन्तन मानसिक प्रक्रिया है जो सभी प्राणियो में होती है। मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को भिन्न–भिन्न तरीके से परिभाषित किया है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे वातावरण से मिलने वाली सूचनाओं का मानसिक जोड़ तोड़ बताया है तो कुछ लोगों ने इसे एक ऐसी मध्यस्थ प्रक्रिया माना है जो किसी समस्या तथा उसका समाधान यानी सही अनुक्रिया के मध्य या बीच में होती है।

बेरोन, 1992 के अनुसार, ''चिन्तन में सम्प्रत्ययों, प्रतिज्ञाप्ति तथा प्रतिमाओं का मानसिक जोड़ तोड़ होता है।''

सिलवर मेन, 1978 के अनुसार, ''चिन्तन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो हम लोगों को उद्दीपक तथा घटनाओं के प्रतीकात्मक

प्रतिनिधित्व द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में मदद करती हैं।''

सेन्द्रोक 1995 के अनुसार, ''चिन्तन में मानसिक रूप से सूचनाओं का जोड़ तोड़ सम्मिलित होता है विशेषकर जब हम संम्प्रत्यय का निर्माण करते है, समस्याओं का समाधान करते है, तर्क करते है तथा निर्णय लेते है।''

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें चिन्तन प्रक्रिया के बारे में कुछ ठोस जानकारी प्राप्त होती है, जो निम्नानुसार है।

(I) चिन्तन में प्रतीकों, प्रतिमाओं आदि का मानसिक जोड़ तो होता है। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि चिन्तन में वस्तुओं की वास्तविक उपस्थिति आवश्यक नहीं है। पूर्व ज्ञान के आधार पर हम उन वस्तुओं का कुछ प्रतीक मन में बना लेते है और उसी आधार पर चिन्तन की प्रक्रिया होती है। चूँकि चिन्तन में मानसिक जोड़ तोड़ होता है जिसे बाहर से देखा नही जा सकता है। अतः चिन्तन एक प्रकार का अप्रकट व्यवहार हैं।

(ii) चिन्तन एक मध्यस्य प्रक्रिया है। इसका मतलब यह हुआ कि चिन्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जो उद्दीपक (या कोई समस्या) तथा उसके प्रति की गयी सही अनुक्रिया (अर्थात् उसके समाधान) के बीच में होने वाली प्रक्रिया है। इससे स्पष्ट है कि चिन्तन की प्रक्रियान किसी ने किसी समस्या का समाधान होता है। यही कारण है कि चिन्तन को कुछ मनोवैनिकों ने जैसे विटेकर ने समस्या समाधान व्यवहार कहा है।

चिन्तन के प्रकार– मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को कई भागो में बाँटकर अध्ययन किया है। जिक्बार्डो तथा रूक 1977 ने चिन्तन को निम्नांकित दो भागों में बांटा है।

1. स्वली चिन्तन

2. यथार्थवादी चिन्तन

इन दोनों का विवरण निम्नांकित है :–

1. स्वली चिन्तन– स्वाली चिन्तन वैसे चिन्तन को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति अपनी काल्पनिक विचारो एवं इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है। स्वप्न, स्वप्न चित्र तथा अभिलाषा आदि सभी स्वाली चिन्तन के उदाहरण है। यदि कोई छात्र कल्पना करता है कि पढ़ाई खत्म करने के बाद वह एक बड़ा ऑफिसर बनेगा, उसके पास एक सुन्दर बंगला होगा जिसमें एक चमचमाती कार होगी और उस कार में वह अपने सुन्दर बीवी के साथ बैठकर सैर करेगा तो यह निश्चय ही स्वाली चिन्तन का उदाहरण होगा। इस तरह के चिन्तन की एक खास विशेषता यह है कि इससे किसी समस्या का समाधान नहीं होता है।

2. यथार्थवादी चिन्तन – यथार्थवादी चिन्तन वैसे चिन्तन को कहा जाता है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है और इसके सहारे व्यक्ति किसी समस्या का समाधान कर पाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति कार में बैठकर सफर कर रहा है। कार अचानक रूक जाती है। ऐसी समस्या के उत्पन्न होने पर व्यक्ति तरह–तरह की बातें सोचना प्रारंभ कर देता है। जैसे, कहीं पेट्रोल खत्म नही हो गया है, कही इंजन में कोई खराबी तो नहीं आ गयी है, कहीं टायर तो नहीं कट गया आदि। इस तरह का चिन्तन यथार्थवादी चिन्तन का उदाहरण है।

मनोवैज्ञानिकों ने यथार्थवादी चिन्तन को निम्नांकित तीन भागों में बाँटा है।

(i) अभिसारी चिन्तन
(ii) सर्जनात्मक चिन्तन
(iii) आलोचनात्मक चिन्तन

इन तीनों तरह के चिन्तन का विवरण निम्नांकित है :–

(i) अभिसारी चिन्तन– इस तरह के चिन्तन को निगमनात्मक चिन्तन भी कहा जाता है। अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता है। उदाहरणार्थ, यदि आप से पूछा जाय कि 5 में 2 गुणा करने पर क्या आयेगा तो इसके उत्तर देने में निहित चिन्तन अभिसारी चिन्तन का उदाहरण होगा।

(ii) सर्जनात्मक चिन्तन– इस तरह के चिन्तन को आगमनात्मक चिन्तन कहा जाता है। इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों में अपनी ओर से न तथ्य जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। जब तक व्यक्ति इन नये तथ्यों को अपनी ओर से उसमें नही जोड़ता है अर्थात् इन तथ्यों का सर्जन नहीं करता है, समस्या समाधान नहीं हो पाता है।

उदाहरणार्थ – यदि किसी व्यक्ति से 'कलम' का असाधारण उपयोग बतलाने को कहा जाये तो वह व्यक्ति चिन्तन करके अपनी

ओर से कुछ असाधारण बात कलम के उपयोग के बारे में बतलायेगा। इस तरह के चिन्तन को सर्जनात्मक चिन्तन कहा जाता है। 'कलम' का साधारण उपयोग तो लिखने में होता है अब इसका असाधारण उपयोग क्या हो सकता है? थोड़ा सोचिए! इसी तरह का चिन्तन सर्जनात्मक चिन्तन कहलाता है। ऐसी चिन्तन द्वारा जिस समस्या का समाधान होता है, उसका कोई एक निश्चित उत्तर नहीं होता है।

(iii) आलोचनात्मक चिन्तन– इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने के पहले उसके गुण दोष की परख कर लेता है। हमारे समाज में कुछ व्यक्ति तो ऐसे होते है जिन्हें किसी घटना या वस्तु के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है, उसे वे सही समझकर मान लेते है। तब ऐसा कहा जाता है कि इस तरह के व्यक्ति में आलोचनात्मक चिन्तन की शक्ति कम है। दूसरी तरफ कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जिन्हें कुछ घटना या वस्तु के बारे में कहने पर उसका गुण दोष परखते है और तब उसे सही या गलत मानते है। व्यक्ति में इस तरह के चिन्तन को आलोचनात्मक चिन्तन कहा जाता हैं।

कियाकलाप – 8.1

चिन्तन को समझने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए विद्यार्थियों के सामने कुछ तथ्य अथवा समस्या रखिए । उनसे समस्या समाधान करवाईये तथा चिन्तन क्षमता का आप अवलोकन कीजिए ।

जैसे– '' राम बड़ा होकर एक प्रभावशाली व्यापारी बनेगा '' । यह किस प्रकार का चिन्तन है ।

चिन्तन के मूल तत्व– चिन्तन हमारे पहले से विघामान ज्ञान पर निर्भर करता है। ऐसे ज्ञान का प्रतिनिधित्व मानसिक प्रतिमा या शब्द के रूप में निरूपित होता है। लोग प्रायः मानसिक प्रमिमा या शब्द के माध्यम से सोचते है। मान लीजिए हम रेल मार्ग से या उस स्थान की यात्रा कर रहे है जहाँ हम पहले गए थे। हम मार्ग एवं अन्य जगहों के दृष्टि प्रतिनिधान का उपयोग करेंगे। सर्वप्रथम हम मानसिक प्रतिमा पर विचार करेगे और फिर मानव चिन्तन के आधार के रूप में सम्प्रत्ययों का वर्णन करेंगे।

मानसिक प्रतिमा– चिन्तन में प्रतिमा का अधिक महत्व हे। जब भी हम किसी समस्या का सामाधान करते है तो गत अनुभूतियो कुछ प्रतिमा के रूप में आकर या तो उस समाधान में मदद करती है या बाधा पहुँचाती है।

प्रतिमा किसे कहते है। मार्गन, किंग तथा रॉबिन्सन 1981 के अनुसार, सामान्यतः गत अनुभूतियों की कुछ विशेषताओं के पृथक्करण को प्रतिमा कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि अनुभूतियों की कुछ खास–खास विशेषताओं को जब हम मानसिक रूप से अलग करने मे समर्थ हो जाते है, तो इसे ही हम प्रतिमा कहते है। उदाहरणार्थ, कल पार्टी में अपने मित्र के विचित्र वेश–भूषा को याद को या गुणो को मस्तिक में जब हम लाने में समर्थ हो पाते है, तो उस गुण या विशेषता को ही प्रतिमा की संज्ञा दी जाएगी।

चिन्तन में प्रतिमा के महत्व को दिखवाने के लिए कई प्रयोग किए गए है। इनमे से कुछ तो ऐसे है जिनसे यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि चिन्तन में प्रतिमाओं का काफी महत्व है। प्रतिमा के अभाव में चिन्तन की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से नहीं हो पाती है। दूसरी तरफ, इसके ठीक विपरीत परिणाम भी पाये गए है जिसमें यह दिख लाया गया है कि चिन्तन में प्रतिमा का कोई स्थान नहीं होता है। इस तरह के विचार को प्रतिमाहीन चिन्तन की संज्ञा दी गयी है।

तर्कना– तर्कना एक प्रकार का वास्तविक चिन्तन है। व्यक्ति तर्कना के माध्यम से अपने चिन्तन को क्रमबद्ध बनाता है तथा तर्क वितर्क के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचता है।

जेक्स ड्रेवर (1968) के अनुसार, ''तर्क चिन्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें निष्कर्ष होता है अथवा सामान्य नियमों के आधार पर समस्या समाधान होता है।''

समस्या समाधान के लिए चिन्तन और तर्क की आवश्यकता होती है। तर्क के लिए कल्पना की भी आवश्यकता होती है। तर्क शक्ति का विकास क्रमशः होता है तथा इसमें व्यक्तिक भिन्नता पाई जाती है। तर्क में कई सोपान होते हैं।

तर्कना के प्रकार– मनोवैज्ञानिकों ने तर्कना के निम्नांकित चार प्रकार बतलाए है :–

(i) निगमनात्मक तर्कना– निगमनात्मक तर्कना वैसी तर्कना को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति पहले से ज्ञात नियमों एवं तथ्यों के आधार पर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश

करता है। इस ढ़ंग की तर्कना मानव एवं पशु दोनो के ही द्वारा की जाती है। निगमनात्मक तर्कना इस तरह के न्याय वाक्यों के आधार पर निकाले गऐ परिणाम से स्पष्ट रूप से सम्मिलित होते है :–

सभी मनुष्य मरणशील है।
मोहन एक मनुष्य है।
मोहन मरणशील है।

(ii) आगमनात्मक तर्कना– आगमनात्मक तर्कना वैसी तर्कना को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति दिए तथ्यों में अपनी ओर से नये तथ्य को जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। जब तक व्यक्ति इन नए तथ्यों को अपनी ओर से उसमें नही जोड़ता, अर्थात् इन तथ्ये का सर्जन नहीं करता, समस्या का समाधान नहीं हो पाता है। रूक के अनुसार, ''आगमनात्मक चिन्तन में चिन्तक अपनी कल्पना के आधार पर कुछ ऐसी चीजों को जोड़ता है जो प्रस्तुत आँकड़ो से सीधे ज्ञात कर नहीं लिए जा सकते है।''

(iii) आलोचनात्मक तर्कना– इस प्रकार के तर्कना में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना के बारे में सोचते समय या किसी समस्या का समाधान करते समय प्रत्येक उपाय के गुण एवं दोष की परख कर लेता हे। वह प्रत्येक विचार की प्रभावशीलता को ठीक ढ़ंग से जाँच करके ही एक अन्तिम निर्णय लेता है। दूसरों द्वारा किसी तथ्य या विचार को दिए जाने पर भी उसे वह हू–ब–हू स्वीकार नहीं करता। उसके गुण–दोष की परख के बाद ही वह किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है।

(iv) सादृश्यवाची तर्कना– इस तरह की तर्कना में उपमा के आधार पर तर्क वितर्क करते हुए चिन्तक किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। जैसे मान लिया जाए शिक्षक छात्र से यह प्रश्न पूछते है कि रानी लक्ष्मी बाई राणा प्रताप के समान एक वीरांगना कैसे थी? इस समस्या के समाधान के लिए छात्र यह सोच सकता है कि रानी लक्ष्मी बाई ने अंग्रेजो से हार नहीं मानी थी और ठीक उसी तरह राणा प्रताप ने भी सम्राट अकबर से हार स्वीकार करना अपने मन के खिलाफ समझा था। सचमुच राणा प्रताप, जैसे वीर पुरूष के समान ही रानी लक्ष्मी बाई भी एक मशहूर वीरांगना थी। इस तरह के चिन्तन को सादृश्यवाची तर्कना कहा जाता है।

निर्णयन– निर्णयन एक तरह का समस्या समाधान व्यवहार होता है जिसमें व्यक्ति के सामने कई विकल्प होते है जिनमें से उसे किसी एक को चुनना होता है। निर्णय प्रक्रिया की कुछ परिभाषाएं मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस प्रकार दी गयी है।

सैन्ट्रोक (2000) के अनुसार, ''निर्णयन में विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है और उनमें से कुछ को चुन लिया जाता है।''

मार्गन, किंग, विस्प एवं स्कौपलर 1986 के अनुसार, ''निर्णयन एक तरह का समस्या समाधान है। जिसमें हम लोगों को कई विकल्प दिये जाते है जिसमें से हम लोगो को चुनना होता है।''

निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कना हमें निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करते है। निर्णयन लेने में हम ज्ञान एवं उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालते है, धारणा बनाते है घटनाओं और वस्तुओं का मूल्यांकन करते है। कभी–कभी निर्णय स्वचालित होते है और इसके लिए व्यक्ति की तरफ से किसी चेतन प्रयास की आवश्यकता नही होती है तथा ये आदत वश हो जाते है। उदाहरण के लिए लाल बत्ती देखने पर ब्रेक लगाना किन्तु उपन्यास या साहित्यिक पुस्तक के मूल्यांकन में आके पूर्व ज्ञान एवं अनुभवो के सन्दर्भ की आवश्यकता होती है।

समस्या समाधान– समस्या समाधान एक सज्ञानात्मक व्यवहार है। समस्या समाधान उस समय आवश्यक हो जाता है जब व्यक्ति किसी लक्ष्य पर पहुँचना चाहता है परन्तु लक्ष्य आसानी से उपलब्ध नहीं होता है। जब लक्ष्य आसानी से उपलब्ध हो जाता है तो कोई समस्या नही उत्पन्न होती है और तब समस्या समाधान का प्रश्न ही नही उठता है। जैसे हम कुछ लिखना चाहते है, परन्तु कलम या पेन्सिल उपलब्ध नहीं है, तो यह व्यक्ति के लिए समस्या होगी परन्तु यदि उसके पास कलम उपलब्ध है तो कोई समस्या नही होगी। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि समस्या समाधान एक ऐसी परिस्थिति होती है जिसमें लक्ष्य तक पहुँचने में कुछ चीजें बाधा उत्पन्न करती है।

बेरान (2001) के अनुसार, ''समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमे से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है ताकि वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकें।''

मैटलिन 1983 के अनुसार समस्या समाधान के तीन महत्वपूर्ण पहलू है।

(i) मौलिक अवस्था– मौलिक अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या के सामने आने पर प्रारंभ में उत्पन्न होती है।

(ii) लक्ष्य अवस्था– लक्ष्य अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो लक्ष्य पर पहुँचने अर्थात् समस्या समाधान होने के बाद उत्पन्न होती है।

(iii) नियम– नियम से तात्पर्य उन कार्य विधि से होता है जिसे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुँचने में अपनाता है।

जैसे, मान लिया जाय कि आपको तीन किलो मीटर की दूरी तय कर सब्जी लाने जाना है। इस उदाहरण में समस्या की मौलिक अवस्था यह चिन्तन हो सकता है कि अभी हम तीन किलोमीटर उस स्थान से दूर है, जहाँ हमें अभी पहुँचना है परन्तु जाने का साधन भी कुछ नहीं है लक्ष्य अवस्था में यह हो सकता है कि हम आखिर सब्जी बाजार पहुँच गये। नियम में कई तरह की कार्य विधियाँ हो सकती है – जैसे पैदल चलकर आना, दूसरे की गाड़ी में लिफ्ट लेकर आना आदि।

कुछ समस्याएँ आसान होती है जिनका समाधान आसनी से हो जाता है। परन्तु कुछ समस्या काफी जटिल होती है जिनका समाधान आसानी से नहीं हो पाता है। फलतः इनके समाधान के लिए व्यक्ति को कुछ विशेष तरह के उपाय ढूँढना पड़ता है।

कियाकलाप – 8.2

वर्णो को पुनः कम में रखते हुए भाब्द बनाइए ।

BOWINAR

INLREANG

VATEMOTI

BLEMPRO

उत्तर अध्याय के अन्त में दिए गए है ।

समस्या समाधान की विधियाँ या उपाय– किसी समस्या को समाधान करने के लिए व्यक्ति कई तरह की विधियों या उपायों को अपनाता है। इनमें से कुछ विधि ऐसी है जिसमें समय तो अधिक लगता है परन्तु निम्नांकित दो विधियाँ है जो काफी महत्वपूर्ण है

(क) यादृच्छिक अन्वेषण विधि

(ख) स्वतः शोध अन्वेषण विधि

इनका वर्णन निम्नांकित–

1. यादृच्छिक अन्वेषण विधि– इस विधि में व्यक्ति समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न एवं त्रुटि उपायों का सहारा लेता है। दूसरे शब्दो में, समस्या के समाधान के लिए वह एक तरह का यादृच्छिक अन्वेषण करता है जो दो प्रकार का होता है – अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण तथा क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण।

2. स्वतः शोध अन्वेषण विधि– इस विधि में व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिए सभी विकल्पो को नही ढूँढता है बल्कि सिर्फ उन्ही विकल्पों का चयन करके समस्या समाधान करने की कोशिश करता है जो उन्हें संगत प्रतीत होते है।

इसके तहत् आने वाली तीन प्रविधियों का वर्णन निम्नांकित है –

(i) साधन साध्य विश्लेषण

(ii) पश्चगामी अन्वेषण

(iii) योजग विधि

अन्तः में स्पष्ट हुआ कि समस्या समाधान की कई विधियाँ है जिनका उपयोग करके व्यक्ति समस्या का समाधान करता है तथा समस्या की मौलिक अवस्था तथा लक्ष्य अवस्था की बीच की दूरी को कम करता है।

भाषा एवं भाषा का स्वरूप–

भाषा प्रतीकों की एक व्यवस्था है जिसका उपयोग हम एक दूसरे से संचार के समय करते है।

हरलाक के अनुसार भाषा से तात्पर्य विचारों के तथा अनूभूतियों का अर्थ व्यक्त करने वाले उन साधनों से है जिनसे संज्ञान या विचारो के आदान प्रदान के सभी पक्ष, जैसे– लिखना, बोलना, संकेत, चेहरे की अभिव्यक्ति, हाव–भाव, मूक अभिनय एवं कला इत्यादि सम्मिलिति है।''

स्टाट के अनुसार व्यापक अर्थो में भाषा का आश्य निःसन्देह ऐसे साधन से है जिसके द्वारा अर्थ एवं भाव का लोगो के बीच सम्प्रेषण होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भाषा, वाणी द्वारा व्यक्त

(अथवा लिखित) एवं लोगो की इच्छानुसार चुने गये प्रतीकों एवं चिन्हों की वह व्यवस्था है जिससे मनुष्य समुदाय अपने भावों, विचारो तथा व्यवहार का परस्पर आदान प्रदान करते हुए एक–दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया या संप्रेषण करते है।

भाषा के प्रकार –

अंतक्रिया करने के लिए तीन प्रकार से भाषा का वर्गीकरण किया जा सकता है –

1. **वाचिक भाषा**– भाषा के इस रूप में व्यक्ति, शब्दो, वाक्यो, वाणी अन्य वाचिक रूपो में अपनी बात, विचार, भावना, संदेश या सूचना को व्यक्त करता है।

2. **सांकेतिक भाषा**– यदि कोई व्यक्ति अपनी बात शब्दो या वाक्यो में कहने के लिए शारीरिक संकेतों एवं मंगिमाओं का प्रयोग करता है, तो उसे सांकेतिक भाषा कहते है।

3. **आलेखिय भाषा**– यह वह भाषा रूप है जिसमें व्यक्ति अपनी बात, भावनाएँ इच्छाएँ या सूचनाएँ लिखकर प्रस्तुत करता है।

भाषा की संरचना :–

भाषा की संरचना एवं नियम को निर्धारित करने वाले चार प्रमुख तत्व है –

1. ध्वनिग्राम

2. रूपग्राम

3. वाक्य–विन्यास

4. अर्थ विज्ञान

बोले जाने वाली भाषा की सबसे छोटी इकाई को ध्वनिग्राम कहा जाता है। जैसे, 't' एवं 'k' की आवज ध्वनिग्राम के उदाहरण है। ध्वनिग्राम अपने आप में अर्थहीन होते हैं। अतः उनकी भूमिका चिन्तन में नही के बराबर होती है। तब ध्वनिग्राम अपने को आपस में शब्द, उपसर्ग या प्रत्यय बनाने के लिए संयोजित कर लिया जाता है, तो इसे रूपग्राम कहा जाता है। जैसे 'CAT', 'BAT'आदि रूपग्राम के उदाहरण है जिनमें तीन तीन ध्वनिग्राम संयोजित है। इस तरह रूपग्राम भाषा की सबसे छोटी इकाई है।

रूपग्राम को संयाजित करके जटिल शब्द वाक्य बनाये जाते है। वाक्य की दो संरचना होती है :– सतही संरचना तथा गहरी संरचना।

वाक्य की सतही संरचना से तात्पर्य लिखे गये या बोले जाने वाले आक्षरिक शब्द से होता है जबकि गहरी संरचना से तात्पर्य वाक्य के अन्तर्निहित अर्थ से होता है। एक ही गहरी संरचना को कई सतही संरचनाओं से अभिव्यक्त किया जाता है।

जिस तरह ध्वनिग्रामों एवं रूप ग्रामों को संयोजित करने का नियम होता है, उसी तरह से वाक्य या उनके अर्थो को संरचित करने के लिए कुछ नियम होते है। इन नियमों को व्याकरण कहा जाता है जिस के दो पहलू होते हैं –वाक्य विन्यास नियम तथा अर्थ विज्ञान।

वाक्य–विन्यास नियम का ऐसा तंत्र है जो यह निर्धारित करता है कि व्यक्ति किस तरह से शब्दो का उपयोग व्याकरणीय वाक्यो के निर्माण में करता है। अर्थविज्ञान यह बतलाता है कि व्यक्ति रूपग्रामों एवं वाक्यो से अर्थ किस तरह निकालता है।

भाषा का विकास :–

बच्चो में भाषा के विकास से पूर्व उनमें कुछ ऐसे व्यवहार देखने को मिलते है जिन्हे भाषा विकास का प्रारंभिक रूप माना जाता है। इनमें क्रन्दन बलवलाना और हाव–भाव प्रमुख हैं। शुरू में बच्चो में इन्ही विशेषताओ का प्रदर्शन होता है एवं उनमे भाषा विकास की नींव पड़ती है। इन्हे पूर्व भाषागत अवस्था कहा जाता है।

नवजात शिशुओं में क्रन्दन या रोना शिशुओं द्वारा उत्पन्न प्रथम ध्वनि है। समय के पश्चात् क्रंदन के स्वरूप में अंतर आने लगता है और क्रन्दन के साथ हाव–भाव तथा शरीरिक गतियाँ भी प्रदर्शित होने लगती है। बच्चो में संप्रेषण का यह एक प्रारंभिक रूप है। क्रंदन अनेक प्रकार का हो सकता है। क्रंदन के प्रकार से माता–पिता बच्चो के रोने के कारणों का भी अनुमान लगाते है।

जब बच्चे छः माह की आयु के हो जाते है तो बलवलाने लगते है। इसे मानव वाणी का प्रथम लक्षण माना जा सकता है। इसी के साथ बच्चे वाणी ध्वनियों का प्रदर्शन करने लगते हैं। यह लक्षण लगभग पाँचवे माह तक दिखाई पड़ने लगते है। वे मा, मू,

दा, दी आदि ध्वनियाँ प्रायः उच्चारित करते है। ऐसा करना उन्हे अच्छा भी लगता है। इसी कारण वे इसकी पुनरावृति भी करते रहते है। इसे आत्म अनुकरण भी कहा जाता है। 18–20 माह की आयु तक पहुँचने पर बच्चे दो शब्द की अवस्था में प्रवेश करते है और दो शब्दो का प्रयोग एक साथ प्रारंभ कर देते है। दो शब्दो वाली भाषा में तार वाली भाषा की विशेषता पाई जाती है। ढाई साल की उम्र में बच्चे का भाषा विकास सुनी जाने वाली भाषा के नियमों पर केंद्रित हो जाता है।

भाषा का अर्जन :–

व्यवहारवादियों के अनुसार भाषा का विकास अधिगम के सिद्धांतो जैसे – साहचर्य, अनुकरण तथा पुनर्बलन पर आधारित है। इस प्रकार के व्यवहार प्रायः देखने को मिलते है जब बच्चे माता–पिता या पालनकर्ता की भाषा के लिए समुचित ध्वनिया उत्पन्न करते है तथा ऐसा किए जाने के लिए पुनर्बलित किए जाते है। रूपायतन का सिद्धांत क्रमिक रूप से वांछित अनुक्रिया के समीप ले जाता है जिससे बच्चा उतना ही अच्छा बोलता है जितना की एक व्यस्क बोल सकता है। उच्चारण एवं भाषा शैली में क्षेत्रीय विभिन्नता देखने को मिलती है जिसका कारण दिये गए प्रतिमान पुनर्बलन में भिन्नता होती है। स्किनर का अधिगम पर बल देना यह स्पष्ट करता है कि शिशु सुनी हुई भाषा को अर्जित कैसे कर लेते है और वे अपने शब्द कोश में नए शब्दो को कैसे जोड़ते है। चामस्की व्याकरण सीखने की अंतर्निहित तत्परता पर बल देते है। उन्होने भाषा विकास की जन्म–जात प्रतिज्ञप्ति का प्रतिपादन किया है। इसके अनुसार बिना पढ़ाये बच्चे जिस दर से शब्दो तथा व्याकरण को अर्जित कर लेते है, उसकी व्याख्या मात्र अधिगम के सिद्धात के आधार पर नही की जा सकती। ऐसा भी देखा गया है कि कई बार बच्चे ऐसे वाक्य भी बनाते है जिन्हे उन्होने नही सुना होता बच्चो में भाषा विकास की एक क्रांतिक अवधि होती हैं। इस समय यदि सफल अधिगम होगा तो वह होगा। संपूर्ण संसार में बच्चे भाषा विकास की एवं जैसी अवस्था से गुजरते है। चौमस्की के अनुसार भाषा का विकास शारीरिक परिपक्वता की तरह है जो उपयुक्त देखभाल करने पर बच्चो में स्वतः होता है। बच्चो में सर्वभाषा व्याकरण पहले से व्याप्त होती है जिसका अर्थ यह है कि वे जिस भाषा को सुनते है उसके व्याकरण को सरलता से सीख लेते है।

भाषा का उपयोग :–

भाषा का उपयोग प्रायः संप्रेषण के सामाजिक रूप से उपयुक्त तरीकों की जानकारी रखना सम्मिलित है। भाषा का उपयोग करते समय हमारे विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक आशय होते है। इस उद्देश्य से भाषा का उपयोग व्याकरण की दृष्टि से सही तथा अर्थपूर्ण पूर्ण होने के साथ–साथ सही तथा सदर्भानुसार उपयुक्त होना आवश्यक है। प्रायः बच्चो में यह पाया गया कि उन्हे अपने आपको अभिव्यक्त करने में कठिनता होती है। जब वे अपनी भाषा में विनम्रता या अनुरोध प्रकट करना चाहते है तो माँग या निर्देश का संप्रेषण होता है। बच्चो को धारा प्रवाह बोलने तथा सुनने में कठिनता का सामना करना पड़ता है।

भाषा की उत्पति का सिद्धात :–

रूसी मनोवैज्ञनिक लिव वाइगाट्स्की के अनुसार भाषा एवं चिंतन की उत्पति अलग अलग होती है तथा यह विकास समानांतर एवं विभिन्न चरणो में होता है।

वाइगाट्सकी के अनुसार भाषा विकास की अवस्थाएं इस प्रकार है। प्रथम, अवौदधिक अथवा चिंतनशून्य वाक् सहज अवस्था (Naive Stape) में विकासित होती है। इसमें शब्दो के प्रतीकात्मक आशय सीखे जाते है। दूसरी अवस्था आत्मकेंद्रिक भाषा की होती है जहाँ बच्चे बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी बातो को कहते है, जिन्हे वे कर रहे होत है, भले ही कोई सुन न रहा हो। इसके बाद आंतरिक भाषा की तीसरी अवस्था आती है, जिसमें बच्चे ध्वनिरहित वाणी का उपयोग करते हुए विचारों में स्वेच्छया परिवर्तन करने के योग्य हो जाते है।

चिंतन की प्रथम अवस्था में वस्तुओ को वर्गो या ढेरों में संगठित किया जाता है। यह वर्गीकरण उनमें दिखने वाली समानताओं एवं विभिन्नताओं पर आधारित होता है। इस नियम का आधार कोई नियम एवं तर्क नही होता। दूसरी अवस्था में रचना के रूप में चिंतन है, जिसमें बच्चे वस्तुओ के अलग–अलग अवयवो के अपरिवर्तनीय मूर्त तथा वास्तविक संबंधो का प्रत्यदीकरण करते है। अतिम अवस्था संप्रत्यात्मक चिंतन की होती है, जिसमे बच्चे अमूर्त तत्वो के बीच जुडाव देख सकते है। तथा उनका विश्लेषण कर सकते है।

वाइगाट्स्की के अनुसार, जब बच्चे एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर जाते है, तो तीन चीजे होती है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था के संधिकाल में मौलिक संरचनाए नष्ट हो जाती है तथा नई संरचनाओं का निर्माण होता है। उनका यह भी मानना था कि अंतिम अवस्था में भाषा एवं चिंतन का विकास एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से होता है। संप्रत्यात्मक चिंतन का विकास तथा

आंतरिक भाषा, दोनो ही एक दूसरे पर निर्भर करते है। चिंतन बिना भाषा के भी प्रयुक्त होता है, विशेषकर जब चिंतन अवाचिक होता है : जैसे चाक्षुष या गति से जुडा होता है भाषा बिना चिंतन के भी प्रयुक्त होती है, जब हम अपनी भावनाओं या कुशल क्षेत्र को व्यक्त करते है –

''आप कैसे है?' बहुत अच्छा, में सकुशल हूँ, जब दो प्रकार्य एक दूसरे में व्यापत रहते है तो दोनों का साथ साथ उपयोग किया जा सकता है, जिससे शाब्दिक चिंतन एवं तार्किक भाषा उत्पन्न हो सके।

भाषा निर्धारक के रूप में चिंतन

स्विट्जरलैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे का मत है कि चिंतन मात्रा भाषा का निर्धारण ही नही करती वरन इससे पहले ही उपस्थित रहता है। पियाजे का तर्क था कि बच्चे चिंतन की सहायता से आंतरिक छवि का निर्माण करते है। जैसे जब बच्चे किसी को कुछ करते दखते है तो बाद में उसकी नकल करते हैं। इस समय चिंतन उपस्थित होता है परन्तु भाषा उपस्थित/प्रयुक्त नही होती। भाषा चिंतन के वाहको में से एक है। जब प्रक्रियाओ को आत्मसात कर लिया जाता है या वे अंतरीकृत हो जाती है तो भाषा बच्चों के प्रतीकात्मक चिंतन का विस्तार करती है, परंतु भाषा चिंतन के मौलिक विकास के लिए आवश्यक नही है।

पियाजे का मत था कि यद्यपि भाषा बच्चों को सिखाई जा सकती है, तथापि शब्दो की समझ के लिए इसके पीछे छिपे संप्रत्ययों की जानकारी चिंतन आवश्यक है। अतः भाषा की समझ के लिए चिंतन आधारभूत और आवश्यक है।

प्रमुख पद

चिन्तन, स्वली चिन्तन, अभिसारी चिन्तन, सर्जनात्मक चिन्तन, मानसिक प्रतिमा, सादृश्यवाची तर्कना, निर्णयन, यादृच्छिक अन्वेशण, स्वतः शोध अन्वेशण ।

सार संक्षेप

- चिन्तन एक ऐसी मानसिक प्रकिया है जो सभी प्राणियों में पायी जाती है , जिसके माध्यम से हम सूचनाओं का प्रहस्तन करते हैं
- चिन्तन सदैव लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है
- चिन्तन के मुख्यतः दो प्रकार हैं – स्वली चिन्तन तथा यथार्थवादी चिन्तन
- चिन्तन के मूल तत्व मानसिक प्रतिमा, तर्कना, निर्णयन तथा समस्या समाधान है ।
- तर्कना भी समस्या समाधान की तरह लक्ष्य निर्देशित होती है , इसमें निष्कर्ष निकालना होता है और यह निगमनात्मक, आगमनात्मक, आलोचनात्मक तथा सदुश्यवाची होते है।
- निर्णय लेने में हम निष्कर्ष निकालते हैं, तम बनाते हैं, वस्तुओं के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं ।
- समस्या समाधान एक संज्ञानात्मक व्यवहार है, जिसके तीन महत्वपूर्ण पहलू हैं –
- मौलिक अवस्था, लक्ष्य अवस्था और नियम ।
- समस्या समाधान की दो विधियॉ है – यादृच्छिक अन्वेशण विधि तथा स्वतः शोध अन्वेषण विधि है ।
- भाषा प्रतीकों की एक व्यवस्था है, जिसका उपयोग हम एक – दूसरे से संचार के समय करते हैं ।
- वचिक भाषा, सांकेतिक भाशा तथा आलेखिय भाषा, – यह भाषा के मुख्य प्रकार है ।
- व्यवहारवादियों के अनुसार भाषा का विकास अधिगम के सिद्धान्तों जैसे – साहचर्य, अनुकरण और पुनर्बलन पर आधारित है ।

बहुविकल्पी प्रश्न

1. निम्न में से कौन चिन्तन में हमेशा सम्मिलित नहीं होता है ?

   अ) भाषा ब) सम्प्रत्यय

   स) प्रतिमा द) प्रतीक

2. स्वली चिन्तन में अभिव्यक्ति होती है –

   अ) अभिप्रेरणा की

   ब) भाषा की

   स) काल्पनिक विचार तथा इच्छाओं की

   द) वास्तविक स्थिति की

3. निम्नलिखित में से कौन यथार्थवादी चिन्तन का उदाहरण नही है –

   अ) अभिसारी चिन्तन ब) सर्जनात्मक चिन्तन

   स) स्वली चिन्तन द) आलोचनात्मक चिन्तन

4. श्याम प्रत्येक वस्तु को उसके गुण – दोषों के बारे में चिन्तन करने के पश्चात् ही खरीदता है , यह उदाहरण है –

अ) अपसारी चिन्तन ब) जटिल चिन्तन

स) स्वली चिन्तन द) आलोचनात्मक चिन्तन

5. यदि राम से कहा जाए कि 10 में से 4 घटाने पर क्या उत्तर आएगा ? राम इस समस्या को हल करने के लिए चिन्तन का सहारा लेता है ।

उपर्युक्त उदाहरण में निहित चिन्तन का उदाहरण है –

अ) अपसरण चिन्तन ब) अभिसारी चिन्तन

स) सर्जनात्मक चिन्तन द) आलोचनात्मक चिन्तन

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. चिन्तन क्या है ?
2. चिन्तन के प्रकार बताइये ।
3. समस्या समाधान की विधियों के नाम बताइये
4. भाषा की संरचना तथा नियम को निर्धारित करने वाले मुख्य तत्व कौन से है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वली तथा यथार्थवादी चिन्तन में अन्तर बताइये । (कोई दो)
2. तर्कना क्या है ? इसके प्रकार को संक्षेप में बताइये ।
3. भाषा के प्रकार समझाइये ।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. चिन्तन के स्वरूप की व्याख्या करते हुए चिन्तन के मूल तत्वों को वर्णित कीजिए ।
2. समस्या समाधान से आप क्या समझते हैं तथा इसकी प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए
3. भाषा का स्वरूप समझाते हुए भाषा के विकास तथा उपयोगिता पर प्रकाश डालिए

परियोजना विचार

- चिन्तन के स्वरूप तथा प्रकारों को जानकर उन्हें दैनिक जीवन के चिन्तन में समाविष्ट कर चिन्तन सुगम बनाइये ।
- अपने माता – पिता, अध्यापक किस तरह से समस्या समाधान करते हैं , चर्चा कीजिए । समस्या समाधान की विधियों का उपयोग कर समाधान शीघ्र व उत्तम निकालने का प्रयास करे ।
- भाषाई विकास हेतु नित्य – नवीन शब्दों को व्याकरण कोश से सीखें ।

क्रियाकलाप – 8.2 की समस्याओं का उत्तर

RAINBOW

LEARNING

MOTIVATE

PROBLEM

उत्तर 1. (अ) 2. (स) 3. (स) 4. (स) 5. (अ)

इकाई–9

अभिप्रेरणा

इस अध्याय को पढने के बाद आप

- मानव अभिप्रेरक के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- कुछ महत्वपूर्ण अभिप्रकों के स्वरूप के वर्णन को जान सकेंगे,

विषय वस्तु

प्रस्तावना
अभिप्रेरणा का स्वरूप
अभिप्रकों के प्रकार
जैविक अभिप्रेरक, मनोसामाजिक अभिप्रेरक
मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न

प्रस्तावना

दैनिक जीवन से संबंधित ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जो मानव जीवन में अभिप्रेरणा की भूमिका को समझने में मददगार सिद्ध हो सकते हैं, जैसे– भोजन क्यों करते हैं ? व्यक्ति क्यों किसी समूह विशेष का सदस्य बनना चाहता है ?क्यों संगीता कक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के लिए दिन–रात मेहनत कर रही है ? क्यों सागर राज्य स्तरीय टीम में भाग लेना चाहता है, जिसके लिए वह क्रिकेट अकादमी से गहन प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा है ? क्यों एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर आक्रमण करता है इत्यादि उदाहरण यह प्रदर्शित करते हैं कि प्रत्येक व्यवहार के पीछे कोई ने कोई अभिप्रेरक कार्य करता है। अभिप्रेरणा एवं सम्बन्धित व्यवहार का कोई न कोई लक्ष्य या उद्‌देश्य होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राणी विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ तब तक करता है जब तक लक्ष्य प्राप्ति नहीं हो जाती है। यह अध्याय आपको अभिप्रेरणा से सम्बन्धित संप्रत्ययों एवं अभिप्रेरण के प्रकारों को समझने में मददगार होगा।

दिन–प्रतिदिन की जिन्दगी में हम लोग अनेकों प्रकार के कार्य करते हैं। हम इन कार्यों को क्यों करते हैं ? षायद इसलिए करते हैं क्योंकि इसके पीछे कोई–न–कोई अभिप्रेरण अवश्य होता है। अभिप्रेरणा का सामान्य अर्थ ऐसी अवस्था से है, जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। उदाहरणस्वरूप, आप किसी रेस्टोरेंट में खाने के लिए जाते हैं तो खाने का स्वाद या उससे मिलने वाली पौष्टिकता आपको अभिप्रेरित कर सकती है।

अभिप्रेरणा का अर्थ

अभिप्रेरणा का संप्रत्यय इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि व्यवहार में 'गति' कैसे आती है। अंग्रेजी भाषा में Motivation लैटिन शब्द Movere से बना है, जिसका सन्दर्भ क्रियाकलाप की गति से है। हमारे दैनिक जीवन के बहुत–से व्यवहारों की व्याख्या भी अभिप्रेरकों के आधार पर की जा सकती हैं आप विद्यालय या महाविद्यालय क्यों जाते हैं? इस व्यवहार के कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि आप ज्ञान अर्जित करना चाहते हैं या मित्र बनाना चाहते हैं, या फिर, आपको एक अच्छी नौकरी पाने के लिए एक डिप्लोमा या डिग्री की आवश्यकता है, या आप अपने माता–पिता को प्रसन्न करना चाहते हैं इत्यादि। अभिप्रेरणा व्यवहार के निर्धारकों में से एक है। मूल प्रवृत्तियाँ, अंतर्नोद आवश्यकताएँ, लक्ष्य या उत्प्रेरक, अभिप्रेरणा के विस्तृत दायरे में आते हैं।

मनोविज्ञान में अभिप्रेरणा का तात्पर्य व्यक्ति की एक ऐसी अवस्था से है, जिस अवस्था के उत्पन्न होने पर वह बैचेनी का अनुभव करता है और इस बैचेनी को दूर करने के लिए विशेष प्रकार की क्रिया करता है। व्यक्ति की यह अवस्था आन्तरिक होती

है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति किसी–न–किसी प्रकार की आवश्यकता या कमी (अभाव) या इच्छा से होती है।

व्यक्ति जब किसी तरह की आवश्यकता या कमी का अनुभव करता है या किसी प्रकार की इच्छापूर्ति चाहता है तब वह एक खास ढंग का व्यवहार यानि प्रतिक्रिया करता है। उदाहरण के लिए, व्यक्ति में प्यास की उत्पत्ति उसकी आन्तरिक अवस्था में परिवर्तन के कारण होती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति बैचेनी का अनुभव करता है। इस बैचेनी को दूर करने के लिए, अर्थात् शारीरिक सन्तुलन स्थापित करने के लिए उसे पानी की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह पानी की तलाश कर उसका उपभोग करता है। वह किसी अन्य वस्तु की तलाश नहीं करता, क्योंकि अन्य वस्तु उसकी प्यास को शान्त करने की क्षमता नहीं रखती।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति का व्यवहार चयनात्मक अर्थात् खास दिशा में निर्देशित होता है अतएव, हम कह सकते हैं कि प्रेरणात्मक व्यवहार चयनात्मक और लक्ष्य–निर्देशित होता है। प्रेरणात्मक व्यवहार में एक और विशेषता पाई जाती है, जो किसी प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति होने अथवा उद्देश्य को प्राप्त करने की अवस्था तक चलती रहती है और आवश्यकता की पूर्ति होने पर वह क्रिया समाप्त हो जाती है तथा व्यक्ति की बैचेनी भी दूर हो जाती है।

मॉर्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर (1986) के अनुसार, ''अभिप्रेरणा से तात्पर्य एक प्रेरक (driving) तथा कर्षण (pulling) बल से होता है, जो खास लक्ष्य की ओर व्यवहार को निरन्तर ले जाता है।''

बेरोन, बर्न तथा कैन्टोविज (1980) के अनुसार, ''मनोविज्ञान में हम लोग अभिप्रेरण को एक काल्पनिक आन्तरिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जो व्यवहार करने के लिए शक्ति प्रदान करता है तथा एक खास उद्देश्य की ओर व्यवहार को ले जाता है।''

इन मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर अभिप्रेरण के स्वरूप की निम्नांकित विशेषताएं पाई जाती हैं–

1. अभिप्रेरण व्यक्ति की एक आन्तरिक अवस्था को कहा जा सकता है। यह आन्तरिक अवस्था काल्पनिक होती है।
2. अभिप्रेरण में जो आन्तरिक अवस्था होती है उससे व्यक्ति में कुछ क्रियाएँ (activities)उत्पन्न होती हैं।
3. अभिप्रेरण में उत्पन्न क्रियाएँ एक निश्चित दिशा में यानि उद्देश्य की प्राप्ति की ओर होती हैं।
4. अभिप्रेरित व्यवहार (Motivated behaviour) उत्पन्न होने के बाद उद्देश्य प्राप्ति तक वह जारी रहता है।

इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझ सकते हैं– मान लीजिए कि आपको भूख लगी है और आप किसी रेस्टोरेंट में भोजन खाकर अपनी भूख को मिटाते हैं। यहाँ भूख व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था है जिसे बाहर से देखा नहीं जा सकता (पहला कारक)। इसे आवश्यकता (need) की संज्ञा दी जाती है। यह आन्तरिक अवस्था व्यक्ति में कुछ विशेष क्रियाएँ जैसे– रेस्टोरेंट में जाकर भोजन के बारे में पूछताछ करना आदि उत्पन्न करता है (दूसरा कारक)। इस तनाव एवं क्रियाशीलता की अवस्था को प्रणोद (drive) की संज्ञा दी जाती है। व्यक्ति द्वारा किए गए ये सभी क्रियाएँ कुछ ऐसी होती हैं जो एक निश्चित दिशा में एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ले जाता है (तीसरा कारक)। इस उदाहरण में निश्चित लक्ष्य भोजन की प्राप्ति है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने प्रोत्साहन (incentive) की संज्ञा दी है। व्यक्ति में क्रियाशीलता की अवस्था तब तक पायी जाती है, जब तक कि उसे भोजन प्राप्त नहीं हो जाता है।

मूलभूत अभिप्रेरणात्मक संप्रत्यय (Basic Motivational Concepts)

अभिप्रेरण की व्याख्या अधिक स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणात्मक चक्र (motivational cycle) के संप्रत्यय का प्रतिपादन किया है। इस चक्र के मुख्य तीन तत्व हैं– आवश्यकता (need), प्रणोद (drive) तथा प्रोत्साहन या लक्ष्य(incentive or goal)।

1. **आवश्यकता (Need)** :– कमी या अति की शारीरिक अवस्था को आवश्यकता कहा जाता है। आवश्यकता से तात्पर्य व्यक्ति में आन्तरिक या बाह्य कारणों से उत्पन्न अवस्था से है, जिसकी अनुभूति अभाव के रूप में होती है। जैसे– भोजन या पानी की आवश्यकता का अनुभव शरीर में भोजन या जल की कमी होने पर होता है। इसी प्रकार काम, निद्रा, किसी संकट से बचना, ज्ञानोपार्जन आदि की आवश्यकताएँ भी किसी प्रकार के अभाव की स्थिति के द्योतक होते हैं। यह अभिप्रेरणात्मक चक्र की पहली अवस्था होती है क्योंकि किसी भी अभिप्रेरण की उत्पत्ति में सबसे पहले आवश्यकता ही उत्पन्न होती है।

2. **प्रणोद (Drive)** :–प्रणोद वैसे तनाव या क्रियाशीलता की अवस्था को कहा जाता है जो किसी आवश्यकता द्वारा उत्पन्न

होता है। प्रणोद वस्तुतः प्रेरणा का एक अंग है। प्रेरक में दो चीजों का समावेश होता है– बल या प्रणोदन तथा व्यवहार की लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसरित होने की प्रवृत्ति।

जब किसी प्रणोदन के फलस्वरूप व्यक्ति का व्यवहार लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होता है, तब ऐसे व्यवहार को ही प्रेरित व्यवहार की संज्ञा दी जाती है।

3. प्रोत्साहन या लक्ष्य (incentive or goal) :–

प्रोत्साहन या लक्ष्य अभिप्रेरणात्मक चक्र का तीसरा कदम है। लक्ष्य या प्रोत्साहन वातावरण की वह वस्तु है, जो व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करती है तथा जिसकी प्राप्ति से व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति तथा प्रणोद में कमी आ जाती है। जैसे– प्यासे व्यक्ति के लिए जल एक प्रोत्साहन होता है जिसके पीने से प्यास समाप्त हो जाती है एवं क्रियाशीलता तथा तनाव की स्थिति भी कम हो जाती है।

किसी वस्तु को लक्ष्य या प्रोत्साहन कहलाने के लिए यह भी आवश्यक है कि वह आवश्यकता से सम्बन्धित हो।

प्रोत्साहन या लक्ष्य दो प्रकार के होते हैं– धनात्मक तथा ऋणात्मक। धनात्मक लक्ष्य वैसे लक्ष्य को कहा जाता है, जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि उसे प्राप्त करने से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया आदि धनात्मक लक्ष्य के उदाहरण हैं। ऋणात्मक लक्ष्य वैसे लक्ष्य को कहा जाता है, जिनसे व्यक्ति दूर रहना चाहता है, क्योंकि इससे दूर रहने से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती है; जैसे– दण्ड, आँखों पर सीधी पडने वाली तीव्र रोशनी, अत्यधिक गर्मी तथा अत्यधिक ठंड आदि।

अभिप्रेरणात्मक चक्र (Motivational Cycle)

मनोवैज्ञानिक आवश्यकता के संप्रत्यय का उपयोग व्यवहार की अभिप्रेरणात्मक विशिष्टताओं का वर्णन करने के लिए करते हैं। किसी आवश्यक वस्तु का अभाव या न्यूनता ही आवश्यकता है।

आवश्यकता अन्तर्नोद को जन्म देती है। किसी आवश्यकता के कारण जो तनाव उत्पन्न होता है, वही अन्तर्नोद है। इसके कारण यादृच्छिक क्रियाकलाप के द्वारा लक्ष्य प्राप्त हो जाता है, तो अन्तर्नोद समाप्त हो जाता है तथा प्राणी भी क्रियाशील नहीं रहता है। प्राणी पुनः सन्तुलित दशा में लौट जाता है।

अभिप्रेरणा के प्रकार (Kinds of Motives) :–

अभिप्रेरण के दो मुख्य सामान्य प्रकार होते हैं– जैविक अभिप्रेरण (biological motives) तथा मनोसामाजिक अभिप्रेरण (psychosocial motives)। जैविक अभिप्रेरकों को शरीर क्रियात्मक अभिप्रेरक भी कहते हैं, क्योंकि उनका संचालन मुख्यतः शरीर के शरीरक्रियात्मक तंत्र पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, मनोसामाजिक अभिप्रेरक प्राथमिक रूप से विभिन्न पर्यावरणी कारकों के साथ व्यक्ति की अंतः क्रिया द्वारा सीखे गए होते हैं। फिर भी, दोनों प्रकार के अभिप्रेरक परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। अर्थात् कुछ परिस्तिथियों में जैविक कारक कुछ अभिप्रेरकों को उत्पन्न करते हैं, जबकि कुछ अन्य परिस्थितियों में मनोसामाजिक कारक अभिप्रेरक को उत्पन्न कर सकते हैं। अतः अभिप्रेरक अपने आप में पूर्णतः जैविक अथवा मनोसामाजिक नहीं होता, बल्कि वे व्यक्ति में विभिन्न मिश्रणों में उद्दीप्त होते हैं।

1. जैविक अभिप्रेरक (Biological Motives)

जैविक अभिप्रेरक वैसे अभिप्रेरक होते हैं जो जन्मजात होते हैं और जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक होते हैं तथा इन अभिप्रेरकों के बिना व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता है। इन अभिप्रेरकों को शारीरिक अभिप्रेरक भी कहा जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने जैसे शेरीफ ने कुछ न्यूनतम कसौटी या विशेषताओं का उल्लेख किया है जिनके होने पर किसी भी अभिप्रेरक को शारीरिक या जैविक अभिप्रेरक की श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐसी विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

(i) अभिप्रेरक की अभिव्यक्ति में एक ही प्रजाति के सभी सदस्यों में समरूपता हो।

(ii) अभिप्रेरक प्राणी में जैविक माँग अर्थात् क्षुब्ध आन्तरिक सन्तुलन के प्रति एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करे या करता हो।

(iii) अभिप्रेरक अर्जित न हो।

(iv) जैविक माँग अर्थात् क्षुब्ध आन्तरिक सन्तुलन के प्रति की गई प्रतिक्रिया से प्राणी में एक उत्तेजित अवस्था उत्पन्न होती हो।

जैविक अभिप्रेरक में पाँच प्रमुख अभिप्रेरक हैं, जो निम्न प्रकार हैं– भूख, प्यास, नींद, काम या यौन तथा मलमूत्र त्याग। ये सभी

अभिप्रेरक शरीर के भीतर एक संतुलित शारीरिक अवस्था बनाये रखते हैं जिन्हें मनोवैज्ञाानिकों ने समस्थिति (homeostati) कहा है। जब किसी कारक से इस समस्थिति में क्षुब्धता या असंतुलन उत्पन्न होता है, तो इससे व्यक्ति में जैविक अभिप्रेरक की उत्पत्ति होती है।

1. भूख (Hunger)

व्यक्ति को भूख लगने पर भोजन की आवश्यकता होती है। यह व्यक्ति को भोजन प्राप्त करने और उसे खाने के लिए अभिप्रेरित करती है तथा भोजन वह तत्व होता है जो भूख प्रणोद को सन्तुष्ट करता है। भूख की उत्पत्ति आमाशय की मांसपेशियों के संकुचन से होती है। जब आमाशय खाली होता है, तो इसमें संकुचन तेजी से होता है, फलस्वरूप व्यक्ति को पेट में दर्द महसूस होता है और इसके साथ भूख का अनुभव होता है। इस तरह के दर्द को भूख–दर्द भी कहा जाता है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने **भूख का स्थानीय उद्दीपक** सिद्धान्त कहा है। मनोवैज्ञानिकों ने भूख अभिप्रेरक के दो मुख्य शारीरिक आधार बतलाया है, पहला, हाइपोथैलेमस का दो क्षेत्र ऐसा होता है जिससे भोजन करने का व्यवहार का नियमन होता है तथा इस तरह से भूख प्रणोद को प्रभावित करता है। ये दो क्षेत्र हैं– लेटरल हाइपोथैलेमस तथा वेन्ट्रोमेडीयल हाइपोथैलेमस। लेटरल हाइपोथैलेमस एक फीडिंग केन्द्र के रूप में कार्य करता है, जो भोजन के व्यवहार को उत्तेजित करता है तथा वेन्ट्रोमेडियल हाइपोथैलेमस एक तुष्टि केन्द्र के रूप में कार्य करता है और जब यह सक्रिय होता है, तो प्राणी भोजन करना बंद करता है। दूसरा, जब व्यक्ति में चीनी (sugar) की मात्रा कम हो जाती है, तो इससे व्यक्ति को भूख का अनुभव होता है। जब व्यक्ति लगातार कई घंटो से भोजन नहीं करता है, तो इससे ईधन की आपूर्ति स्वभावतः कम हो जाती है और यकृत के चयापचयी क्रियाओं में परिवर्तन होता है जिसकी सूचना मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस को होती है और इसके फलस्वरूप व्यक्ति को भूख का अनुभव होता है।

एनोरेक्सिया नरवोसा (Anorexia nervosa) तथा वुलिमिया नरवोसा (Bulimia nervosa) दो खाने से सम्बन्ध विकृतियाँ हैं। ऐनोरेक्सिया नरवोसा एक ऐसी विकृति है जिसमें व्यक्ति में मोटा हो जाने का असंगत डर बना होता है। फलतः वह खाना लगभग बंद कर देता है जिससे उसके शरीर का वजनजरूरत से ज्यादा कम हो जाता है। वुलिमिया नरवोसा में व्यक्ति में बार–बार खाने की असाधारण इच्छा होती है जिसके कारण वह बहुत अधिक खाता है और शरीर का वजन जरूरत से ज्यादा बढ जाता है।

2. प्यास (Thirst)

प्यास एक जन्मजात अभिप्रेरक है। जब हम कई घंटे पानी से वंचित होते हैं तो मुँह के भीतर गीलेपन में अत्यधिक कमी हाने पर अर्थात् मुँह सूख जाने पर प्यास लगती है। प्यास की व्याख्या शारीरिक क्रियाओं के रूप में करने के लिए एक विशेष सिद्धान्त जिसे डबल–डिप्लेसन सिद्धान्त (Double-Depletion theory) कहा गया है, भी प्रतिपादित किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार प्यास दो शारीरिक क्रियाओं का परिणाम है– एक है कोशिकाओं में पानी की कमी हो जाना (cellular dehydration) तथा रक्त की मात्रा में कमी हो जाना (hypovolemi)। जब शरीर से अत्यधिक पानी किसी कारण से निकल जाता है या जरूरत के अनुसार उसे पानी नहीं मिल पाता है, तो शरीर की कोशिकाओं का भीतरी भाग भी सूखने लगता है। ऐसी स्थिति में हाइपोथैलेमस में एक विशेष प्रकार की तंत्रिका कोशिका जिसे ऑस्मोरिसेप्टर या नमक रिसेप्टर कहा जााता है, उत्तेजित होकर मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों को स्नायु प्रवाह भेजकर इस बात की सूचना देता है कि शरीर में पानी की कमी हो गयी है जिससे व्यक्ति को प्यास का अनुभव होता है। शरीर की कोशिकाओं में पानी की कमी की स्थिति को कोशिकीय निर्जलीकरण (cellular dehydration) कहा जाता है। शरीर में पानी की कमी हो जाने से शरीर में खून की मात्रा में कमी हो जाती है जिससे रक्तचाप (blood pressure) में कमी आ जाती है। रक्तचाप में इस कमी को ह्यदय एवं वृक्क में मौजूद वैरोरिसेप्टर द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं। रक्तचाप में कमी होने से वृक्क से एक विशेष प्रकार का तरल पदार्थ जिसे रेनिन कहा जाता है, निकलता है जिसके खून में मिलने से एक विशेष पदार्थ जिसे एनगियोटेनसिनण्कहा जाता है, बनता है। एनगियोटेनसिन बनने से व्यक्ति में प्यास का अनुभव होता है और वह पानी पीना चाहता है।

3. यौन या काम (Sex)

यौन अभिप्रेरक एक तीसरा जैविक अभिप्रेरण है। इसे अंशतः जैविक तथा अंशतः सामाजिक अभिप्रेरक कहा गया है। यह दैहिक अवस्थाओं पर आधृत होते हैं तथा इसमें अन्य व्यक्ति सम्मिलित होता है तथा यह व्यक्ति के सांवेगिक पहलू का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। यही कारण है कि इसे जैव–सामाजिक अभिप्रेरक कहा है।

यह एक जैविक अभिप्रेरक के रूप में भी अन्य जैविक अभिप्रेरकों से इस अर्थ में भिन्न है कि यह जीवन के अस्तित्व को संपोषित करने के लिए अन्य जैविक अभिप्रेरकों के समान आवश्यक नहीं है। यौन अभिप्रेरक में शरीर में किसी तत्व की कमी

नहीं होती है तथा यौन अभिप्रेरक की उत्पत्ति वातावरण में उपस्थित संवेदी उद्दीपकों से अधिक होती है जबकि अन्य जैविक अभिप्रेरकों में ऐसा नहीं के बराबर होता है।

यौन अभिप्रेरक का सम्बन्ध यौन ग्रन्थि या गोनाड्स से होता है। पुरूषों के यौन ग्रन्थि को अण्ड ग्रन्थि तथा महिलाओं के यौन ग्रन्थि को अण्डाशय या डिम्ब ग्रन्थि कहा जाता है। मानव शरीर में यौन ग्रन्थि तरूणावस्था से सक्रिय हो जाता है जो लडकियों में 11 से 13 तथा लडकों में 12 से 14 साल की अवधि सामान्यतः होती है। पुरूष तथा महिला यौन ग्रन्थियों से हार्मोन निकलते हैं। स्त्री हार्मोन्स में एस्ट्रोजन्स प्रमुख हैं तथा पुरूष हार्मोन्स में टेस्टोस्ट्रोन मुख्य हैं। स्त्री हार्मोन्स तथा पुरूष हार्मोन्स दोनों में ही अर्थात् स्त्री तथा पुरूष में भी पाए जाते हैं। अन्तर सिर्फ मात्रा का होता है। स्त्री में स्त्री हार्मोन्स पुरूष की अपेक्षा अधिक, उसी तरह पुरूष में पुरूष हार्मोन्स स्त्री की अपेक्षा अधिक पाया जाता है।

यौन हारमोन्स केन्द्रीय तंत्रिका के साथ अंतः क्रिया करते हैं। केन्द्रीय तंत्रिका का भाग विशेषकर हाइपोथैलेमस अग्रवर्ती पिट्यूटरी ग्रंथि को उत्तेजित करता है जिससे एक ऐसा हारमोन्स निकलता है जो यौन ग्रंथि तथा एड्रीनल ग्रंथि दोनों को की प्रभावित करता है जिससे फिर यौन हारमोन्स का स्त्राव होने लगता है। इसके बाद यौन हारमोन्स खून में मिलकर पुनः हाइपोथैलेमस में पहुँचते हैं जिसके परिणामस्वरूप यौन उत्तेजना में संलिप्त तंत्रिका नेटवर्क उत्तेजित हा जाते हैं। हाइपोथैलेमस का विशेष क्षेत्र जो इस नेटवर्क को उत्तेजित करने में अहम् भूमिका निभाता है, उसे **प्रीऔपटिक क्षेत्र** कहा जाता है।

1. नींद (sleep)

प्राणी के लिए नींद चौथा महत्वपूर्ण जन्मजात अभिप्रेरक है। नींद दो प्रकार का होता है–

(i) तीव्र आँख गतिक नींद (Rapid eye movement sleep or REM sleep)

(ii) अतीव्र आँख गतिक नींद (Non-rapid eye movement sleep or Non-REM sleep)

तीव्र आँख गतिक नींद में व्यक्ति को गहरी नींद नहीं आती है और वह प्रायः भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वप्न देखा करता है। इस तरह की नींद में व्यक्ति आधा सोता है तथा आधा जागता है तथा नेत्र गोलक में तीव्र गति होते पायी जाती है। सामान्य नींद का 20ःनींद ऐसा ही होता है। तीव्र आँख गतिक नींद को स्वप्न नींद (dream sleep) भी कहा जाता है। तीव्र आँख गतिक नींद की दो विशेषताएँ होती हैं– उम्र बीतने के साथ REM नींद का प्रतिशत व्यक्ति में घटता जाता है। बच्चों में कुल नींद का करीब 50 ः नींद REM नींद होता है, परन्तु यह वयस्कों में घटकर मात्र 20% हो जाता है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह केवल स्तनपायी प्राणियों में होता है। अतीव्र आँख गतिक नींद में व्यक्ति गहरी नींद में सोता है तथा व्यक्ति में संवेदी प्रक्रियाएँ बहुत कम होती हैं। इस तरह के नींद में श्वसन गति धीमी हो जाती है, ह्ृदय गति धीमी हो जाती है तथा रक्त चाप भी कम हो जाता है। तीव्र आँख गतिक नींद में ये सारी प्रक्रियाएँ उलट जाती हैं।

मनोसामाजिक अभिप्रेरक (Psychosocial motive)

मनोसामाजिक अभिप्ररकों को अर्जित अभिप्रेरक भी कहा जाता है जो व्यक्ति में जन्म से तो मौजूद नहीं होते हैं परन्तु व्यक्ति जिसे अपने जीवन काल में सामाजिक रूप से अपने को श्रेष्ठ बनाए रखने के लिए सीखता है। ये अभिप्रेरक कुछ ऐसे होते हैं जिसके बिना व्यक्ति जैविक रूप से तो जिन्दा रह सकता है परन्तु सामाजिक रूप से उसका जीवित रहना संभव नहीं है। ऐसे अभिप्रेरकों को सामाजिक इसलिए कहा जाता है क्योंकि व्यक्ति उन्हें सामाजिक परिस्थितियों जैसे परिवार, पास–पडौस, स्कूल, कॉलेज के साथियों आदि के बीच रहकर सीखता है। प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरक निम्नांकित हैं–

संबंधन अभिप्रेरक (affiliation motive) :–

समाज में सम्बन्धन की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है, क्योंकि बिना सम्बन्धन के व्यक्ति समुदाय में नहीं रह सकता। प्रतिदिन हमें दूसरों के साथ की या मित्रों की आवश्यकता होती है या हम दूसरों के साथ किसी प्रकार का संबंध बनाना चाहते हैं। कोई भी सदैव अकेले नहीं रहना चाहता। जैसे ही लोग परस्पर आपस में कुछ समानताएँ देखते हैं, वे एक समूह बना लेते हैं। समूह का निर्माण अथवा सामूहिकता मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अक्सर लोग दूसरों के निकट पहुँचने, उनकी सहायता प्राप्त करने तथा उनके समूह का सदस्य बनने के लिए घोर प्रयास करते हैं। दूसरों को चाहना तथा भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से उनके निकट आने की चाह को संबंधन कहते हैं। इसमें सामाजिक संपर्क की अभिप्रेरणा अंतर्निहित है। संबंधन की आवश्यकता उस समय उद्दीप्त होती है, जब लोग अपने को खतरे में या असहाय महसूस करते हैं और उससमय भी जब वे प्रसन्न होते हैं। जिन व्यक्तियों में यह आवश्यकता प्रबल होती है वे दूसरों का साथ खोजते हैं तथा दूसरों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखते हैं।

शक्ति अभिप्रेरक (Power motive) :–

शक्ति अभिप्रेरक एक अन्य सामाजिक अभिप्रेरक है। दूसरों के संवेग या व्यवहार पर चेतन या अचेतन रूप से इच्छित

प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता को सामाजिक सत्ता की संज्ञा दी जाती है। शक्ति अभिप्रेरक के विभिन्न लक्ष्य हैं–प्रभाव डालना, नियंत्रण करना, सम्मत कराना, नेतृत्व करना तथा दूसरों को मोहित कर लेना और सबसे अधिक महत्वपूर्ण दूसरों की दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाना। वैसे लोग जिनमें शक्ति अभिप्रेरक अधिक होता है, इस अभिप्रेरक की अभिव्यक्ति निम्नांकित ढंग से करते हैं– भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रतियोगिता खेल–कूद में अधिक भाग लेना, निम्न सामाजिक स्तर के लोगों के प्रति अधिक आवेगशील तथा आक्रमणशील व्यवहार दिखलाना, किसी संस्थान में ऐसा पद ग्रहण करना जहाँ से वे आसानी से दूसरों पर नियंत्रण रख सके, अनेक प्रकार की सामग्रियाँ इकट्ठा करना ताकि दूसरे लोग जब उनके घर आये तो उन सभी सामानों को देखकर उसे अधिक धनी होने का अंदाज आसानी से कर सके, खास–खास पेशा जैसे शिक्षण, व्यापार आदि में अधिक जाना ताकि उन्हें बहुतसे लोगों पर नियंत्रण करने का मौका मिल सके, किसी राजनैतिक दल के नेता के रूप में, अपने आप को आकर्षक तथा अनुशासित करके रखना तथा कम लोकप्रिय लोगों से सम्बन्ध रखना क्योंकि ऐसे लोगों को नियंत्रित करना काफी आसान होता है।

उपलब्धि अभिप्रेरक (Achievement motive)

उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य श्रेष्ठता के एक खास स्तर प्राप्त करने की इच्छा से होता है। कुछ विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक या श्रेणी पाने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं या, दूसरों के साथ स्पर्द्धा करते हैं क्योंकि अच्छे अंक या श्रेणी उनके लिए उच्च शिक्षा और बेहतर नौकरी का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। उत्कृष्टता के मापदंड को प्राप्त करने की यह आवश्यकता उपलब्धि अभिप्रेरक कहलाती है। उपलब्धि की आवश्यकता, जिसे n-Ach भी कहते हैं, व्यवहारों का ऊर्जन एवं निर्देशन करती है तथा परिस्थितियों के प्रत्यक्षण को प्रभावित करती है। सामाजिक विकास के शुरू के वर्षों में बच्चे उपलब्धि अभिप्रेरक को माता–पिता तथा सामाजिक सांस्कृतिक कारकों से अर्जित करते हैं। उच्च उपलब्धि अभिप्रेरक वाले व्यक्ति ऐसे कृत्यों को वरीयता देते हैं जो मध्यम कठिनाई स्तर तथा चुनौती वाले हों। उनमें अपने निष्पादन के संबंध में जानकारी या पुनर्भरण प्राप्त करने की इच्छा सामान्य से अधिक होती है।

क्रियाकलाप 9.1

स्वयं को तथा दूसरों को प्रेरित करने के कुछ उपाय :

1. अल्कालिक लक्ष्य निर्धारित करें (कुछ दिनों में, एक सप्ताह, एक माह आदि)
2. जो भी कार्य करे योजनाबद्ध तथा व्यवस्थित ढ़ंग से करें ।
3. लक्ष्य प्राप्ति पर अपने सहयोगी या मित्र को पुरस्कृत कीजिए। जैसे कलम या अन्य कोई वस्तु जिसकी उसे चाह हो, पुरस्कृत कर अभिप्रेरित करें ।

मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम

अभिप्रेरणा का आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त अब्राहम एच. मैस्लो (Abraham H. maslow, 1968 : 1970) द्वारा दिया गया है। उन्होंने मानव व्यवहार को आवश्यकताओं के एक पदानुक्रम में व्यवस्थित किया गया है। उनके सिद्धान्त को ''आत्म–सिद्धि का सिद्धान्त'' कहते हैं और यह सिद्धान्त अपने सैद्धान्तिक एवं अनुप्रयुक्त मूल्यों के कारण अत्यंत लोकप्रिय है। मैस्लो का मॉडल एक पिरामिड के रूप में समझा सकता है, जिसके पदानुक्रम के सबसे निचले स्तर में मूल शरीरक्रियात्मक या जैविक आवश्यकताएँ जो जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हैं; जैसे– भूख, प्यास, काम तथा नींद इत्यादि। इन आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर व्यक्ति में खतरे से बचने के लिए सुरक्षा की आवश्यकता होती हैं, इससे तात्पर्य भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रकार के खतरों से संबंधित सुरक्षा से है। इसके पश्चात् स्नेह की आवश्यकता जिसमें दूसरे व्यक्तियों का उनसे प्रेम करना तथा उनका प्रेम प्राप्त करना आता है। इस आवश्यकता के पूरे होने पर व्यक्ति आत्म सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति चाहता है, जिसमें व्यक्ति समाज में दूसरों से सम्मान प्राप्त करने की ओर अग्रसर होता है। पदानुक्रम में सबसे ऊपर आत्म–सिद्धि की आवश्यकता आती है, जो व्यक्ति को अपनी सम्भाव्यताओं को पूर्ण रूप से विकसित करने के अभिप्रेरण में परिलक्षित होती है। आत्म–सिद्धि व्यक्ति आत्म जागरूक, समाज के प्रति अनुक्रियाशील, सर्जनात्मक, स्वतः स्फूर्त तथा नवीनता एवं चुनौती से मुक्त होता है। ऐसे व्यक्ति हास्य भावना से परिपूर्ण तथा गहरे अंतर्वैयक्तिक संबंध बनाने की क्षमता होती है।

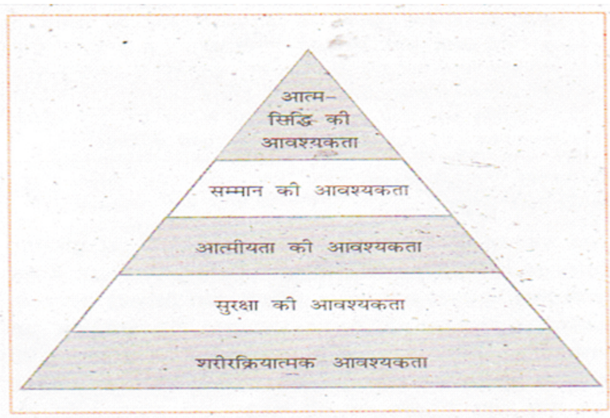

मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम

पदानुक्रम में जब तक निचले स्तर की आवश्यकताओं की

पूर्ति नहीं होती, तब तक व्यक्ति ऊपरी स्तर की आवश्यकताओं पर नहीं पहुँच पाता है।

प्रमुख पद

मूल प्रवृत्तियाँ, अंतर्नोद आवश्यकताएँ, लक्ष्य या उत्प्रेरक, जैविक आवश्यकताएँ (भूख, प्यास, काम, नींद), मनोसामाजिक आवश्यकताएँ, आवश्यकताओं का पदानुक्रम (शरीरक्रियात्मक, सुरक्षा, स्नेह, सम्मान तथा आत्म–सिद्धि की आवश्यकता)।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- किसी विशेष लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट सतत व्यवहार की प्रक्रिया, जो किन्हीं अंतर्नोद शक्तियों का नतीजा होती है, को अभिप्रेरणा कहते हैं।
- अभिप्रेरणाएँ दो प्रकार की होती हैं – जैविक तथा मनोसामाजिक।
- जैविक अभिप्रेरणा में फोकस, अभिप्रेरणा के सहज या जन्मजात, जैविक कारकों; जैसे– हार्मोन, तंत्रिका–संचारक, मस्तिष्क संरचना अधश्चेतक, उपवल्कुटीय तंत्र इत्यादि पर केंद्रित होता है। जैविक अभिप्रेरणा के उदाहरण हैं, भूख, प्यास, काम तथा नींद।
- मनोसामाजिक अभिप्रेरण उन अभिप्रकों की व्याख्या करती है जो प्रमुखतः व्यक्ति के उसके सामाजिक पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं। मनोसामाजिक अभिप्रकों के उदाहरण , संबंधन की आवश्यकता, उपलब्धि की आवश्यकता तथा शक्ति की आवश्यकता है।
- मैस्लो ने विभिन्न मानव आवश्यकताओं को आरोही पदानुक्रम में व्यवस्थित किया है, जो मूल शरीरक्रियात्मक आवश्यकताओं से प्रारंभ होकर, फिर सुरक्षा की आवश्यकताएँ, प्रेम तथा आत्मीयता की आवश्यकताएँ, सम्मान की आवश्यकताएँ और अंत में सबसे ऊपर आत्म–सिद्धि की आवश्यकताओं तक विस्तृत है।

बहुविकल्पी प्रश्न

1. अंग्रेजी भाशा का Motivation शब्द किस लैटिन शब्द से बना है ?

   अ) Movere ब) Move

   स) Motive द) Movers

2. निम्न में से अभिप्रेरणा का मूल तत्व नही है –

   अ) आवश्यकता ब) प्रणोद

   स) उपलब्धि द) प्रोत्साहन / लक्ष्य

अतिलघत्तुरात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा को परिभाषित कीजिए ?
2. क्या अभिप्रेरणा के अभाव में कोई व्यवहार संभव है ?
3. आवश्यकता क्या है ?
4. अन्तर्नोद क्या है ?
5. जन्मजात / जैविक प्रेरक कौन–कौन से हैं ?
6. मनोसामाजिक अभिप्रेरक कौन– कौन से हैं?
7. किस मनावैज्ञानिक ने सर्वप्रथम उपलब्धि अभिप्रेरक को एक मनोजन्य आवश्यकता के रूप में प्रतिपादित किया ?
8. अभिप्रेरणा चक्र के मुख्य–मुख्य संकेत कौन से हैं?
9. अभिप्रेरणा का पदानुक्रमिक प्रारूप किस मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रतिपादित किया गया ?
10. अभिप्रेरण व्यवहार के कोई दो लक्षण बताइये ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा के स्वरूप को समझाइये ?
2. जैविक अभिप्रेरक किसे कहते हैं ?
3. जैविक एवं मनोसामाजिक अभिप्रेरकों में क्या अंतर है ?
4. भूख अभिप्रेरक को जैविक आधार को समझाइए ?
5. प्यास अभिप्रेरक के जैविक आधार क्या हैं ?
6. मैस्लो द्वारा वर्णित सोपान कौन–कौन से हैं ?
7. उपलब्धि अभिप्रेरक को एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट कीजिए ?
8. अभिप्रेरणा का मानव जीवन में क्या महत्व है ?
9. सम्बन्धन अभिप्रेरक को उदाहरण सहित समझाइये ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा चक्र से सम्बन्धित सभी मूल संप्रत्ययों की व्याख्या उदाहरण सहित कीजिए?
2. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते हैं ?अभिप्रेरित व्यवहार की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ?
3. जैविक कारकों का अर्थ समझाते हुए विस्तार से चर्चा कीजिए ?
4. मनोसामाजिक प्रेरकों पर एक निबन्ध लिखिए ?
5. मैस्लो के आवश्यकता पदानुक्रम के पीछे क्या दर्शन है ? उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से व्याख्या कीजिए ?
6. किशोरों के जीवन को सम्बन्धन अभिप्रेरक, शक्ति अभिप्रेरक एवं उपलब्धि अभिप्रेरक किस प्रकार प्रभावित करते हैं, समझाइये ?

उत्तर– **1. (अ) 2. (स)**

इकाई –10

संवेग

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप –

- संवेग के अर्थ तथा स्वरूप को जान सकेगें ।
- संवेग के विभिन्न आधारों को समझ सकेंगे ।
- संवेगों को वर्गीकृत कर सकारात्मक संवेगों तथा नकारात्मक संवेगों के रूप में भली भॉति जान सकेगें।

विषय वस्तु

प्रस्तावना
संवेग का अर्थ तथा स्वरूप
संवेग के शारीरिक आधार
संवेग के दैहिक माप
पॉलीग्राफ तथा झूठ की पहचान
संवेगों के संज्ञानात्मक आधार
संवेगों के सांस्कृतिक आधार
संवेगों का वर्गीकरण
सकारात्मक संवेग
नकारात्मक संवेग
प्रमुख पद
महत्वपूर्ण बिन्दु
बहुविकल्पी प्रश्न
अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न
लघुत्तरातमक प्रश्न
निबन्धात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

प्रस्तावना

मनोविज्ञान के तीन पौराणिक क्षेत्र है । संज्ञान, संकल्प – शक्ति तथा संवेग। इनमें से संवेग को क्रिया का मुख्य स्त्रोत माना जाता है। संवेग एक ऐसा पद है, जिसका अर्थ हम सभी समझते हैं। खुशी, आशावादी, क्रोध, भय, डर हमारे जीवन के प्रमुख संवेग में से हैं। जैसे – सीता बहुत प्रयास के बाद भी परीक्षा में सफल न हो तो संभव है वह दु:खी तथा निराशावादी हो जाए। इसी प्रकार राहुल प्रथम प्रयास में ही परीक्षा में सफल हो जाए तो वह आशावादी तथा प्रफुल्लित हो जाएगा। यह अध्याय आपको संवेग का अर्थ तथा स्वरूप समझने में मदद करेगा। यहॉ संवेग के शारीकि आधार, संज्ञानात्मक आधार तथा सांस्कृतिक आधारों को समझाया गया है। इसके साथ ही इस अध्याय में हम सकारात्मक संवेगों तथा नकारात्मक संवेगों की चर्चा भी करेंगे ।

संवेग का अर्थ तथा स्वरूप

संवेग एक ऐसा पद है जिसका अर्थ हम सभी समझते है। क्रोध, भय, डर, खुशी हमारे जीवन के प्रमुख संवेग मे से है। मनोवैज्ञानिकों ने संवेग को परिभाषित करने की कोशिश तो अवश्य की है परन्तु चूँकि यह अवस्था एक जटिल अवस्था होती है, अत: मनोवैज्ञानिकों के बीच भी इसकी परिभाषा के बारे में पूर्ण सहमति नहीं है।

'संवेग' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर 'Emotion' है जो लैटिन शब्द 'Emovere' से बना है और जिसका अर्थ उत्तेजित करना होता है इस शाब्दिक अर्थ को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था का दूसरा नाम है। इसी अर्थ में गेल्डार्ड ने कहा है, ''संवेग क्रियाओं का उत्तेजक है।''

इंगलिश तथा इंगलिश के अनुसार, ''संवेग एक जटिल भाव की अवस्था है जिसमे कुछ खास खास शारीरिक एवं ग्रन्थीय क्रियाएँ होती है।''

बेरोन, बर्न तथा कैन्टोविज के अनुसार, ''संवेग से तात्पर्य

एक ऐसे आत्मनिष्ट भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरक उत्तेजन पैदा होती है और फिर जिसमें कुछ खास खास व्यवहार होते है।''

सैन्ट्रोक के अनुसार, ''हम लोग संवेग को भाव जिसमें दैहिक उत्तेजन, चेतन अनुभूति तथा व्यवहारात्मक अभिव्यक्ति सम्मिलित होते है, के रूप में परिभाषित करते है।''

इन परिभाषाओं के आधार पर संवेग के संबंध में कुछ पहलुओं को जाना जा सकता है जो कि इस प्रकार से है।

1. संवेग एक जटिल अवस्था है।

2. संवेग का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू उसमें होने वाली आंगिक प्रतिक्रियाएँ है।

3. संवेग में कुछ अभिव्यंजक व्यवहार भी होते है।

4. संवेग मे किसी न किसी तरह का आत्मनिष्ठ भाव अवश्य भी होता है।

संवेग के शारीरिक आधार

इसका तात्पर्य संवेग में उत्पन्न होने वाले आंतरिक दैहिक अवस्थाओं से होता है। बिना इन दैहिक परिवर्तनों के व्यक्ति मे संवेग की तीव्रता नही उत्पन्न होगी। सचमुच में व्यक्ति जिसे संवेग के रूप मे महसूस करता है, वह इन्हीं दैहिक परिवर्तनों का परिणाम होता है। ह्रदय की गति, नाड़ी की गति, श्वसन गति, रक्त चाप, आदि में परिवर्तन संवेग मे होने वाले कुछ प्रमुख दैहिक परिवर्तनों के उदा है।

विलियम जेम्स का विचार था कि पर्यावरण की कोई भी घटना दैहिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है जिसके बाद संवेग की अनुभूति होती है। अतः जब कोई बच्चा भालू देखता है (घटना), तब वह भागना प्रांरभ कर देता है (दैहिक प्रतिक्रिया) और तब उसे डर महसूस होता है (संवेग) लैंग नाम के एक और मनोवैज्ञानिक ने भी इसी तरह का विचार दिया था, इसीलिए इस सिद्धान्त को जेम्स लैंग सिद्धान्त कहा जाता है। इसके विपरीत कैनन तथा बार्ड ने कहा कि किसी उद्धीपक विशेष की उपस्थिति से कॉर्टेक्स शारीरिक परिवर्तन तथा संवेग दोनो उत्पन्न करता हैं आपातकालीन प्रतिक्रिया तथा संवेगों के अनुभव एक के बाद एक या क्रमशः उत्पन्न न होकर साथ–साथ घटित है।

मस्तिष्क के केन्द्र में स्थित लिंबिक व्यवस्था की संवेगो में भूमिका कई अध्ययनों से स्पष्ट होती है। ऐसा पाया गया है कि मस्तिष्क के उच्च केन्द्र संवेगो की अभिव्यक्तियों को दबा सकते है या रोक सकते है। यह पाया गया है कि मस्तिष्क का बायाँ गोलर्द्ध सकारात्मक संवेगो के लिए उत्तरदायी होता है एवं दाहिना गोलर्द्ध ऋणात्मक सवेगों के लिए। इसीलिए मस्तिष्क के बाएँ भाग मे किसी आघात के कारण अवसाद, भय तथा निराशा की स्थिति उत्पन्न होती है। जबकि यदि क्षति दाहिने गोलार्ध में हो तो तटस्थता या सुख के आवेग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मस्तिष्क मे होने वाली रासायनिक प्रक्रिया संावेगिक अनुभव से जुड़ी है।

संवेगों मे स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की भूमिका भी होती है। कल्पना कीजिए कि आप रात मे एक सुनसान सड़क पर टहल रहे है। अचानक किसी अंधेरे कोने से निकाल कर कोई व्यक्ति आपके सामने आ जाता है। ऐसी भयावह स्थिति मे कतिपय परिवर्तन दिखाई देते है। जो सहानुंकपी तंत्रिका तंत्र प्रणाली की सक्रियता को बताते है। आमाशय तथा ऑतों को जाने वाली रक्त वाहिकाओं मे संकुचन होता है और भोजन पचने की क्रिया रूक जाती है। पैनक्रीज से ग्लूकोजेन नामक हार्मेन निकलता है जो यकृत को उद्धीपत करता है जिससे वह संचित चीनी का रक्त नलिकाओं मे प्रवाहित कर सके। एड्रीनल एपिने फ्राइन नामक हार्मोन का स्त्राव करती है। साँस गहरी एवं तेज चलने लगती है। दिल की धड़कन बढ़ जाती है, जिससे रक्त संचार भी बढ़ जाता है। ऑख की पुतलियाँ फैल जाती है तथा पसीने की ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती है (पसीना छूटने लगता है) गर्दन तथा कंधे की पेशियों में तेजी से तनाव आ जाता है तथा त्वचा के नीचे स्थित पेशियॉ संकुचित होने लगती है। जब भय उत्पन्न करने वाली स्थिति समाप्त हो जाती है तो परानुकंपी तंत्रिका तंत्र से संबंधित दूसरी तरह के दैहिक परिवर्तन उत्पन्न होने लगते है।

संवेग के दैहिक माप

संवेगों तथा मानव शरीर मे होने वाले परिवर्तनो का मापन किया जा सकता है। इस तरह के एक उपकरण को पॉलीग्राफ कहते है। इसकी सहायता से प्रयोज्य के तंत्रिका तंत्र मे होने वाले परिवर्तनों को मापा जा सकता है।

पॉलीग्राफ तथा झूठ की पहचान

झूठ की पहचान करने वाले परीक्षण मे परीक्षार्थी से प्रारंभ में बहुत से तटस्थ किस्म के प्रश्न पूछे जाते है ताकि आधार भूमि तैयार की जा सके। ये साधारण प्रश्न होते है। इसके बाद ऐसे प्रश्न पूछे जाते है जिनमें अपराध से संबंधित जानकारी होती है, जिसे केवल अपराध करने वाली ही जानता है। दुर्भाग्य से पॉलीग्राफ झूठ जानने का विश्वसनीय परीक्षण नहीं है। यह

परीक्षण इस मान्यता पर कार्य करता है कि पाली ग्राफ द्वारा झूठ की पहचान की जा सकती है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि अन्य बहुत से कारक जैसे– उल्लास, पीड़ा, चिन्ता आदि भी दैहिक उद्वेलन मे बदलाव ला सकते है। इनमें वैयक्तिक भिन्नता भी पाई जाती है। इस परीक्षण में भी झूठ बोल सकते है। इन बातों के बावजूद इसका उपयोग झूठ को पहचानने के लिए किया जाता है।

संवेगों के संज्ञानात्मक आधार

संज्ञानात्मक आधार पर तात्पर्य है कि व्यक्ति किसी उद्दीपक या परिस्थिति को किस ढंग से प्रत्यक्षण करता है, उसकी व्याख्या करता है तथा उसे समझता है क्योंकि इन सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अनुकूल ही वह किसी संवेग की अनुभूति करता है। जैसे यदि आप रात में घर पर अकेले है, और किसी तेज हवा से खिड़की या दरवाजा दिवाल से टकराकर आवाज करना शुरू कर दे, तो आप यह सोचकर डर जाते है कि लगता है कोई चोर दरवाजा तोड़कर घर मे प्रवेश करने की कोशिश कर रहा है। यहाँ डर संवेग की उत्पति का कारण परिस्थिति की एक विशेष संज्ञानात्मक व्यख्या है।

संवेगों के सांस्कृतिक आधार

संवेगों के शारीरिक तथा संज्ञानात्मक आधार के अलावा सांस्कृतिक आधार पर महत्वपूर्ण आधार है। अधिकांश मूल संवेग सहज या जन्मजात होते है और उन्हें सीखना नही पड़ता। अधिकांशतः मनोवैज्ञानिक यह विश्वास करते है कि संवेगों, विशेषकर चेहरे की अभिव्यक्तियों के प्रबल जैतिक सबंधं (बंधन) होते है। उदाहरण के लिए, वे बालक जो जन्म से दृष्टिहीन है तथा जिन्होंने दूसरो को मुस्कराते हुए या दूसरों का चेहरा भी नही देखा है वे भी उसी प्रकार मुस्कराते हैं या माथे पर बल डालते है जिस प्रकार कि सामान्य दृष्टि वाले बालक।

विभिन्न सस्कृतियों की तुलना करने से यह स्पष्ट होता है कि संवेगों मे अधिगम की प्रमुख भूमिका होती है। यह दो प्रकार से होता है। प्रथम, सांस्कृतिक अधिगम संवेगों के अनुभव की अपेक्षा संवेगों की अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावित करता है उदाहरण के लिए, कुछ संस्कृतियों मे युक्त सांवेगिक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित किया जाता है जबकि कुछ दूसरी सांस्कृतियॉ, मॉडलिंग तथा प्रबलन के द्वारा व्यक्ति को सार्वजनिक रूप से अपने संवेगों को सीमित रूप से प्रकट करना सिखाती है।

द्वितीय, अधिगम उन उद्दीपकों पर बहुत अधिक निर्भर करता है जो सांवेगिक प्रतिक्रियाएँ जनित करते है। यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि वे व्यक्ति जो लिफ्ट, मोटर गाड़ी इत्यादि के प्रति अत्याधिक भय (दुर्भीति) प्रदर्शित करते है, उन्होंने यह भय मॉडल, प्राचीन अनुबंधन या परिहार अनुबन्धन के द्वारा सीखे होते है।

सकारात्मक संवेगः

खुशी

खुशी एक मानसिक एवं भावनात्मक स्थिति है जब व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वस्थ होता है। लेजारस ज्ञानात्मक भावना विचारक है के अनुसार खुशी वह संवेग है ''जो एक उचित लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा मे उचित प्रगति का परिणाम है। अतः अगर आपका लक्ष्य परिक्षा मे सर्वश्रेष्ण अंक प्राप्त करना है तो इस लक्ष्य की और अग्रसर करने वाला हर एक चरण आपको खुशी की अनुभूति कराएगा। क्या खुशी के साथ जुड़े जैविक घटक है? अध्ययनों से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह पाया गया कि जब मस्तिष्क मे नोरपईनफ्राईन नाम का एक न्यूरोट्रांसमीटर पाया जाता है। मस्तिष्क मे मोरपाईनफ्राईन का उँचा स्तर होने से अत्यधिक खुशी की अनुभूति होती हैं, एवं इसके निम्न स्तर से विषाद की अनुभूति होती है।

परानुभूति

परानूभूति यह समझ पाने की क्षमता है कि अन्य व्यक्ति कैसा महसूस कर रहा है। परानुभूति का अर्थ वस्तुओं एवं परिस्थितियों को दूसरे के नजरिये दृष्टिकोण से देखना जिससे हम यह समझ सके की दूसरा व्यक्ति कैसा महसूस कर रहा है। किसी को परानूभूति देना तब आसान हो जाता है जब हमे पूर्व मे वैसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा हो। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति परिक्षा मे फेल हो जाता है उस परिस्थिति मे परानूभुति देना तब आसान हो जाएगा जब हमारे भी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा हो।

आशावादी

यह एक संवेग है साथ ही साथ यह एक व्याख्यात्मक शैली है।

शेयर एवं कारवर के अनुसार आशावादिता एक प्रत्याशा है कि जीवन में जब कोई समस्या का सामना करना पड़े तब यह आशा करना कि बुरा होने की बजाय कुछ अच्छा ही होगा। अतः आशावादिता एक सकारात्मक दृष्टिकोण को निरूपित करने के लिए प्रयोग किया जाता है कि किसी की क्षमता से परेह कुछ

अच्छा होगा। जैसे यदि किसी परीक्षा के लिए हम खूब तैयारी करते है परंतु परिक्षा की तारीख आगे बढ़ जाती है तो एक आशावादी व्यक्ति यह सोचता है कि ऐसा होने से वह परीक्षा की ओर बेहतर तैयारी करेगा। क्या आशावादीता का कोई जैविक आधार है? हमारे मस्तिष्क मे इन्ड्रोफिल्स नाम का न्यूरोट्रासमीटर पाया जाता है। इसके दो प्रमुख गुण है दर्द संवेदन के संचरण को रोकना तथा वे उत्साह प्रदान करना। लीयोनिल टाईगर के अनुसार हम जैविक रूप से अनुकूलित है कि हम सकारात्मक संवेगों को महसूस करते है बजाय इसके कि हमे क्षति का सामना करना पड़ता है। बहुत से व्यक्ति सिद्धातवादियों के अनुसार आशावादिता एक व्यक्ति गुण है। ना कि एक संवेग। इनके अनुसार आशावाद एक सहज स्वभाव है। अतः कुछ लोग स्वभाव से या तो आशावादी होते है या निराशावादी होते है।

आभार

आभार एक संवेग है जिसके द्वारा हम जो कुछ हमारे पास है उसके लिए प्रशंसा व्यक्त करता है। रावर्ट इम्मोन्स के अनुसार आभार व्यक्ति करने के दो मुख्य घटक है–

पहला हम समर्थन करते है कि इस संसार मे हमे अच्छी चीजे है जो हमे प्राप्त हेती है। दूसरा हम इस बात को समर्थन प्रदान करते है कि इन अच्छाईयों का श्रोत हमसे बाहर है। हम इस बात की पहचान करते है दूसरे लोग या आध्यात्मिक ताकतों के हमे बहुत सारे उपहार प्रदान किये जिनके कारण हममे एवं हमारे जीवन मे अच्छाईयॉ विधमान है। क्योकि आभार व्यक्त करना न सिर्फ हमे प्रोत्साहित करता है बल्कि दूसरो के लिए कुछ अच्छा करने के लिए प्रेरित करता है। यह हम मे, मद्दगार, परोपकार एवं दयालुता जैसे गुण पैदा करते है।

नकारात्मक संवेग

क्रोध

क्रोध एक निषेधात्मक संवेग हैं। यह मन को कहीं और खींच ले जाता है, या दूसरे शब्दों में क्रोध की दशा ने व्यक्ति का नियंत्रण अपने व्यवहरात्मक कार्यो पर नही रहता क्रोध का प्रमुख स्त्रोत अभिप्रेरकों का कुंठित होना है। किन्तु क्रोध कोई प्रतिवर्त नही है, बल्कि यह हमारी सोच का परिणाम है। न तो यह स्वाचालित है और न ही नियन्त्रण के परे है, और न ही यह दूसरों के द्वारा उत्पन्न होता है। यह व्यक्ति के द्वारा चयनित विकल्प के द्वारा उत्पन्न होता है। क्योंकि क्रोध आपके अपने चिन्तन के द्वारा उत्पन्न होता है इसलिए उसका नियन्त्रण भी आपके विचारों के द्वारा ही किया जा सकता है। क्रोध प्रबन्धन में कुछ महत्वपूर्ण बिंदु हैः

– अपने विचारों की शक्ति को पहचानें।

– जान लीजिए कि आप, अकेले आप ही इसे नियंत्रित कर सकते है।

– ऐसा 'आत्म संवाद' ना कीजिए जो आपको जला कर रख दे। निषेधात्मक भावनाओं को बढ़ा कर अतिरजिंत मत कीजिए।

– दूसरों के व्यवहारों के पीछे इरादों तथा गुप्त अभिप्रेरकों का आरोपण मत कीजिए।

– दूसरों व्यक्तियों तथा घटनाओं के संबंध में अतार्किक विश्वासों को मत पनपने दीजिए।

– अपने क्रोध को व्यक्त करने के लिए रचनात्मक तरीके ढूढ़िए। अपने क्रोध की अभिव्यक्ति की मात्रा तथा अवधि को नियंत्रित कीजिए।

भय

भय एक प्राथमिक संवेग है। इसकी अनुभूति व्यक्ति को कभी कभी होती रहती है। इसे नकारात्मक संवेग माना जाता है। इसकी उत्पति संकट की अनुभूति या आंशका होने पर होती है। भय की दशा मे व्यक्ति या प्राणी खतरे से दूर होना चाहता है। इसमे अनेक प्रकार के व्यवहार प्रदर्शित हो सकते है। जैसे, डर कर भागना, रोना, चिल्लाना या कभी–कभी बेहोश भी हो जाता है। ह्रदय, श्वसन एवं रक्त चाप मे काफी अधिक वृद्धि हो जाती है। भय की दशा मे प्राणी स्वयं की रक्षा के लिए सुरक्षित स्थान की तरफ जाना चाहता है।

भय की अनुभूति अनेक कारणों से होती है। बच्चे, वयस्कों या बुजुर्गो मे भय की अनुभूति के कारण अलग अलग भी हो सकते है। प्रायः देखा जाता है कि छोटे बच्चे तीव्र ध्वनि एंव अपरिचित या विचित्र वस्तुओं से अधिक भय अनुभव करते है (फ्रीडमैन, 1969)। इसके विपरीत वयस्क या प्रौढ़ व्यक्ति संकट की परिस्थितियों मे भय का अनुभव अधिक करते है। भय के प्रादुर्भाव तथा उसकी अनुभूति पर व्यक्ति की आयु, अनुभव, लिंग, व्यक्तित्व तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। भय यदि व्यक्ति के व्यवहार में स्थाई रूप से स्थापित हो जाता है तो इसका उसके समायोजन एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

दुशचिन्ता

दुशचिन्ता की गणना नकारात्मक संवेग के रूप में की जाती है। इसकी उत्पति के स्त्रोत या तो संज्ञानात्मक या

काल्पनिक और कभी कभी दोनों प्रकार के होते है। चिन्ता का तात्पर्य, अपेक्षाकृत अधिक व्यापक एवं सामान्यकृत व्यथा या दुःख या अंशका से है। दुशचिन्ता के कारण कभी कभी स्पष्ट रहते है और कभी कभी कारण स्पष्ट नहीं होते है। दुशचिन्ता व्यक्ति के लिए अभिप्रेरणा का भी कार्य करती है। चिन्ता जब काफी व्यापक रूप धारणा कर लेती है तब उसे 'मुक्त प्रभावी दुश्चिन्ता ' का नाम दिया जाता है। दीर्घकालिक तनावों तथा द्वन्द्वों से भी चिन्ता का प्रादुर्भाव होता है। यदि वास्तविक कारणों से इसकी उत्पति होती है तो उसे वस्तुनिष्ठ दुश्चिन्ता कहते है। इसके विपरीत अचेतन द्वन्द्वों से मनोस्नायुविकृत दुशचिन्ता उत्पन्न होती है। हिलगार्ड आदि (1975) के अनुसार, दुशचिन्ता प्रायः शरीरिक कष्ट, अचेतन द्वन्द्व एवं कुष्ठा तथा आत्मसम्मान की हानि की अंशका से उत्पन्न होती है और ऐसा हो जाने पर व्यक्ति या तो इससे छुटकारा पाना चाहता है या इसे कम करना चाहता है। दुश्चिन्ता की दशा में तनाव से मुक्ति के लिए सुरक्षात्मक प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है।

प्रमुख पद

संवेग , दैहिक उत्तेजन , सहानुकंपी , तंत्रिका तंत्र , संकुचन , पॉलीग्राफ , मॉडलिंग , परानुभूति , न्यूरोट्रांसमीटर , दुश्चिन्ता ।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- संवेग एक जटिल अवस्था होती है । इसमें व्यक्ति कुछ आंगिक प्रतिक्रियाएं तथा अभिव्यंजक व्यवहार करता है एवं इसमें कुछ आत्मनिष्ठ भाव होते हैं ।
- संवेगों के नियमन में केन्द्रिय तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।
- मस्तिष्क का बायॉ गोलार्द्ध सकारात्मक संवेगों के लिए उत्तरदायी होता है तथा दाहिना गोलार्द्ध ऋणात्मक संवेगों के लिए
- संवेगों तथा मानव शरीर में होने वाले परिवर्तनों का मापन किया जा सकता है । उपकरणों की सूची में पॉलीग्राफ परीक्षण को भी सम्मिलित किया गया है जिससे व्यक्ति के झूठ की पहचान की जा सकती है ।
- संवेग के संज्ञानात्मक आधार से तात्पर्य है कि व्यक्ति किसी उद्धीपक या परिस्थिति को किस ढंग से प्रत्यक्षण करता है तथा उसकी व्याख्या करता है ।
- विभिन्न संस्कृतियों की तुलना करने से मनोवैज्ञानिकों को स्पष्ट हुआ है कि संवेगों में अधिगम की प्रमुख भूमिका होती है ।
- संवेग मुख्यतः दो तरह के होते हैं :– सकारात्मक संवेग – खुशी, परानुभूति , आशावादी, आभार तथा नकारात्मक संवेग – क्रोध, भय, दुश्चिन्ता है ।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न

1. संवेग शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर Emotion है जो लैटिन के किस शब्द से बना है ।

अ) Emocation
ब) Emovere
स) Emoverse
द) Emoveration

2. व्यक्ति भालू या शेर को देखता है, भाग जाता है, इसलिए डर जाता है "यह कथन निम्नलिखित में से किस सिद्धान्त की ओर इशारा करता है ?

अ) कैनन – बार्ड सिद्धान्त
ब) जेम्स लांजे सिद्धान्त
स) स्कैकटर सिंगर सिद्धान्त
द) संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धान्त

3. पॉलीग्राफ उपकरण का उपयोग किया जाता है ।

अ) बुद्धि की पहचान हेतु
ब) अभिक्षमता की पहचान हेतु
स) अभिवृति की पहचान हेतु
द) झूठ की पहचान हेतु

4. मस्तिष्क का कौनसा भाग सकारात्मक संवेगों के लिए उत्तरदायी है ?

अ) दायॉ गोलार्द्ध   ब) लिम्बिक तंत्र
स) बायॉ गोलार्द्ध   द) लघु मस्तिष्क

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न :–

1. संवेग का अर्थ बताईये ।
2. Emovere का शाब्दिक अर्थ बताईये ।
3. झूठ पहचान यंत्र का नाम बताईये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :–

1. संवेग के शारीरिक आधार से आप क्या समझते हैं ?

2. किस सिद्धान्त के अनुसार सांवेगिक व्यवहार तथा सांवेगिक अनुभूति एक साथ होते हैं ? समझााइये ।

3. परानुभूति से आप क्या समझते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कृति संवेगों की अभिव्यक्ति को कैसे प्रभावित करती है ?
2. संवेग का अर्थ समझाते हुए सकारात्मक संवेग तथा नकारात्मक संवेग की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए

परियोजना

- विद्यार्थियों द्वारा पॉलिग्राफ परीक्षण का उपयोग कर झूठ की पहचान का परीक्षण किया जाए
- विभिन्न संस्कृति में संवेगों की अभिव्यक्ति का अवलोकन किया जाए ।

उत्तर 1. (ब) 2. (ब) 3. (द) 4. (स)

शब्दावली

तंत्रिका कोशिका	–	Neuron
केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र	–	Central Nervous System
अधिगम	–	Learning
अनअनुबन्धित उद्धीपक	–	Unconditional Stimulus
अनअनुबन्धित अनुकिया	–	Unconditional Response
अनुबंधित उद्धीपक	–	Conditional Stimulus
अनुबंधित अनुक्रिया	–	Conditional Response
स्वायत्त तंत्रिका तंत्र	–	Autonomic Nervous System
परानुभूति	–	Empathy
संज्ञानात्मक आधार	–	Cognitive Base
दायॉगोलार्द्ध	–	Right Hemisphere
बायॉगोलार्द्ध	–	Left Hemisphere
स्वलीचिन्तन	–	Autistic Thinking
सर्जनात्मकचिन्तन	–	Creative Thinking
मानसिकप्रतिमा	–	Mental Image